मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओी देसाओी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदावाद — ९

पहली आवृत्ति — ३०००: १९४७
दूसरी आवृत्ति — ५०००

डेढ़ रुपया

जून, १९५२

प्रकाशकका निवेदन

राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीके बारेमें गांधीजीके विचारोंको प्रकट करनेवाले अुनके आज तकके लेखों और भाषणोंका यह संग्रह प्रकाशित करते हुअे हमें आनन्द होता है। जैसा कि गांधीजीने अपने 'दो बोल' में कहा है, यह "बड़े मौक़ेसे प्रकाशित" हो रहा है। अिस कथनमें हमारे प्रान्तके राष्ट्रभाषा-प्रचारके कामका अितिहास समाया हुआ है; खासकर पिछले १० सालोंका।

गांधीजीके विचारोंका अभ्यास करनेवाले जानते होंगे कि अुनके शिक्षण-सम्बन्धी ग्रन्थ 'सच्ची शिक्षा'* में राष्ट्रभाषाका अेक अलग खण्ड दिया गया है। यह ग्रन्थ (मूल गुजराती) सन् १९२८ में छपा था। राष्ट्रभाषाकी रचनाके सिलसिलेमें तीव्र मतभेदोंका जन्म देशमें अुन्हीं दिनों हो रहा था, लेकिन हमारे यहाँ (गुजरातमें) अुसका कोअी असर नहीं हुआ था। अिसलिअे अुसके बारेमें होनेवाली फ़ज़ूलकी बहसोंको कम करके अुस पुस्तकके अिस खण्डकी रचना की गअी थी। बादमें जैसे-जैसे राष्ट्रभाषाके कामका और पद्धतिका विकास होता गया, और अुसके मुताबिक़ काम किया जाने लगा, वैसे-वैसे हमारे यहाँ भी मतभेद और चर्चा बढ़ने लगी। (यह दूसरी बात है कि राष्ट्रीय जीवनके दूसरे क्षेत्रोंकी धारायें भी अिस हालतको पैदा करनेमें कारण बनी थीं।) यही नहीं, बल्कि आज राष्ट्रभाषाके निर्माण-कार्यके रूपमें पूरी राष्ट्रभाषाके प्रचारका काम हमारे यहाँ शुरू हो चुका है। अिसलिअे यह सोचकर कि अिस ज्वलन्त प्रश्न पर गांधीजीके विचार अेक साथ पढ़ने और सोचनेको मिल जायँ तो

---

* अिस पुस्तकका हिन्दी संस्करण नवजीवन कार्यालयसे प्रकाशित हो चुका है। क़ीमत २-८-०; डाकखर्च ०-११-०।

दो बोल

भाअी जीवणजीने राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी मेरे लेखों और भाषणोंका संग्रह बड़े मौक़ेसे प्रकाशित किया है। सब लेख तो नहीं पढ़ सका हूं, लेकिन शुरूके कोअी २० पन्ने पढ़ गया हूं। सन् १९१७ में मैंने पहला भाषण* किया था। तबसे आगे अुत्तरोत्तर मैंने जो विचार

---

*सन् १९१७ में भड़ौंचमें हुअी दूसरी गुजरात शिक्षा-परिषद्के सभापतिके नाते दिये गये अपने भाषणमें गांधीजीने 'हिन्दी' भाषाकी व्याख्या नीचे लिखे ढंगसे की है (देखिये पृष्ठ ५-६)। अुस परसे यह साफ़ हो जायगा कि अुन्होंने 'हिन्दी' शब्दका अिस्तेमाल आजके 'हिन्दुस्तानी' शब्दके पर्यायकी तरह किया है—

"हिंदी भाषा मैं अुसे कहता हूं, जिसे अुत्तरमें हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं, और जो देवनागरी या अुर्दू लिपिमें लिखी जाती है . . . ।

"दलील यह की जाती है कि हिन्दी और अुर्दू दो अलग भाषायें हैं। यह दलील वास्तविक नहीं। हिन्दुस्तानके अुत्तरी हिस्सेमें मुसलमान और हिन्दू दोनों अेक ही भाषा बोलते हैं। भेद सिर्फ़ पढ़े-लिखोंने पैदा किया है। . . . अुत्तरी हिन्दुस्तानमें जिस भाषाको वहांका जन-समाज बोलता है, अुसे आप चाहे अुर्दू कहें, चाहे हिन्दी, बात अेक ही है। अुर्दू लिपिमें लिखकर अुसे अुर्दू नामसे पहचानिये, और अुन्हीं वाक्योंको नागरीमें लिखकर अुसे हिन्दी कह लीजिये।

"अब रहा सवाल लिपिका। फिलहाल मुसलमान लड़के जरूर ही अुर्दू लिपिमें लिखेंगे। हिन्दू ज्यादातर देवनागरीमें लिखेंगे। . . . आखिर जब हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच

प्रकट किये हैं, वे ही आज भी हैं। फ़र्क़ सिर्फ़ अितना ही है कि आज वे विचार दृढ़ बने हैं, और अुन्होंने अधिक स्पष्ट रूप धारण किया है। हिन्दी और अुर्दूको मैंने अेक साथ जाना है। हिन्दुस्तानी शब्दका अिस्तेमाल भी खुलकर किया है। सन् १९१८ में अिन्दौरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें मैंने जो कुछ कहा था, वही आज भी कह रहा हूँ*। हिन्दुस्तानीका मतलब अुर्दू नहीं; बल्कि हिन्दी और अुर्दूकी

शंकाकी थोड़ी भी दृष्टि न रहेगी, जब अविश्वासके सब कारण दूर हो चुकेंगे, तब जिस लिपिमें शक्ति रहेगी, वह लिपि ज्यादा लिखी जायगी, और वह राष्ट्रीय लिपि बनेगी।"

* अिन्दौर-सम्मेलनके व्याख्यानमें से वह भाग नीचे दिया गया है (देखिये पृष्ठ ११-१२) —

"हिन्दी भाषा वह भाषा है, जिसको अुत्तरमें हिन्दू व मुसलमान बोलते हैं, और जो नागरी अथवा फ़ारसी लिपिमें लिखी जाती है। यह हिन्दी अेकदम संस्कृतमयी नहीं है, न वह अेकदम फ़ारसी शब्दोंसे लदी हुअी है। . . . भाषा वही श्रेष्ठ है, जिसको जनसमूह सहजमें समझ ले। देहाती बोली सब समझते हैं। भाषाका मूल करोड़ों मनुष्यरूपी हिमालयमें मिलेगा, और अुसमें ही रहेगा। हिमालयमें से निकलती हुअी गंगाजी अनन्त काल तक बहती रहेंगी। अैसा ही देहाती हिन्दीका गौरव रहेगा। और जैसे छोटीसी पहाड़ीसे निकलता हुआ झरना सूख जाता है, वैसी ही संस्कृतमयी तथा फ़ारसीमयी हिन्दीकी दशा होगी।

"हिन्दू-मुसलमानोंके बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। अैसी ही कृत्रिमता हिन्दी व अुर्दू भाषाके भेदमें है। हिन्दुओंकी बोलीसे फ़ारसी शब्दोंका सर्वथा त्याग और मुसलमानोंकी बोलीसे संस्कृतका सर्वथा त्याग अनावश्यक है।

वह खूबसूरत मिलावट है, जिसे अुत्तरी हिन्दुस्तानके लोग समझ सकें, और जो नागरी या अुर्दू लिपिमें लिखी जाती हो। यह पूरी राष्ट्रभाषा है, बाक़ी अधूरी। पूरी राष्ट्रभाषा सीखनेवालोंको आज तो दोनों लिपियाँ सीखनी चाहियें और दोनों रूप जानने चाहियें। राष्ट्र-प्रेमका निश्चय ही यह तक़ाज़ा है। जो अिसे जानेगा वह कमायेगा, और न जाननेवाला खोयेगा।

मोहनदास करमचंद गांधी

महाबलेश्वर, १-५-'४५

दोनोंका स्वाभाविक संगम गंगा-जमुनाके संगम-सा शोभित और अचल रहेगा। मुझे अुम्मीद है कि हम हिन्दी-अुर्दूके झगड़ेमें पड़कर अपना बल क्षीण नहीं करेंगे।

“लिपिकी कुछ तकलीफ़ ज़रूर है। मुसलमान भाअी अरबी लिपिमें ही लिखेंगे; हिन्दू बहुत करके नागरी लिपिमें लिखेंगे। राष्ट्रमें दोनोंको स्थान मिलना चाहिये। अमलदारोंको दोनों लिपियोंका ज्ञान अवश्य होना चाहिये। अिसमें कुछ कठिनाअी नहीं है। अन्तमें जिस लिपिमें ज्यादा सरलता होगी, अुसकी विजय होगी। व्यवहारके लिअे अेक भाषा होनी चाहिये, अिसमें कुछ सन्देह नहीं है।”

और, २१-१-१९२० के ‘यंग अिण्डिया’ में ‘अपील टु मद्रास’ नामके लेखमें गांधीजीने राष्ट्रभाषाकी नीचे लिखे ढंग पर व्याख्या की थी (देखिये पृष्ठ १७) —

“मैं सोच-समझकर अिस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि राष्ट्रका कारबार चलानेके लिअे या विचार-विनिमयके लिअे हिन्दुस्तानीको छोड़कर दूसरी कोअी भाषा शायद ही राष्ट्रीय माध्यम बन सके। (हिन्दुस्तानी यानी हिन्दी और अुर्दूके मिलापसे पैदा होनेवाली भाषा।)”

अनुक्रमणिका

भाग पहला

भाग दूसरा

राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी

भाग पहला

१
राष्ट्रीय भाषाका विचार

"हरअेक पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानीको अपनी भाषाका, हिन्दूको संस्कृतका, मुसलमानको अरबीका, पारसीको पर्शियनका और सबको हिन्दीका ज्ञान होना चाहिये। कुछ हिन्दुओंको अरबी और कुछ मुसलमान और पारसियोंको संस्कृत सीखनी चाहिये। अुत्तर और पश्चिममें रहनेवाले हिन्दुस्तानीको तामिल सीखनी चाहिये। सारे हिन्दुस्तानके लिअे तो हिन्दी ही होनी चाहिये। अुसे अुर्दू या नागरी लिपिमें लिखनेकी छूट रहनी चाहिये। हिन्दू-मुसलमानोंके विचारोंको ठीक रखनेके लिअे बहुतेरे हिन्दुस्तानियोंका दोनों लिपि जानना ज़रूरी है। अैसा होने पर हम अपने आपसके व्यवहारमें से अंग्रेज़ीको निकाल बाहर कर सकेंगे।"

'हिन्दस्वराज' (१९०९), पृष्ठ १२४

जिस तरह शिक्षाके वाहन या माध्यमका विचार करना पड़ा है,* अुसी तरह हमारे लिअे **राष्ट्रीय भाषाका विचार** करना अुचित है। यदि अंग्रेजीको राष्ट्रीय भाषा बनना है, तो अुसे अनिवार्य स्थान मिलना चाहिये।

क्या अंग्रेजी राष्ट्रीय भाषा हो सकती है? कुछ स्वदेशाभिमानी विद्वान् कहते हैं कि यह सवाल ही अज्ञान दशाका सूचक है कि क्या अंग्रेजी राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिये? अंग्रेजी राष्ट्रीय भाषा बन चुकी है। हमारे

---

* यह हिस्सा सन् १९१७ में भड़ौंचमें हुअी दूसरी गुजरात शिक्षा-परिषद्में सभापति-पदसे दिये गये भाषणसे लिया है। पूरे भाषणके लिअे देखिये नवजीवन द्वारा प्रकाशित 'सच्ची शिक्षा', ले० — गांधीजी। कीमत २-८-०; डाकखर्च ०-११-० ।

माननीय वाअिसराय महोदयने जो भाषण किया है, अुसमें तो अुन्होंने सिर्फ़ आशा ही प्रकट की है। अुनका अुत्साह अुन्हें अूपर बताअी हद तक नहीं ले जाता। वाअिसराय साहब मानते हैं कि अिस देशमें अंग्रेज़ी भाषाका दिन-ब-दिन फैलाव होगा, वह हमारे घरोंमें प्रवेश करेगी, और अन्तमें राष्ट्रीय भाषाकी अुच्च पदवी प्राप्त करेगी। अिस वक़्त अूपर-अूपरसे सोचने पर अिस विचारको समर्थन मिलता है। अपने पढ़े-लिखे समाजकी हालतको देखते हुअे अैसा आभास होता है कि अंग्रेज़ीके अभावमें हमारा कारबार रुक जायगा। फिर भी अगर गहरे पैठकर सोचेंगे, तो पता चलेगा कि अंग्रेज़ी राष्ट्रीय भाषा नहीं बन सकती, न बननी चाहिये।

तो अब हम यह सोचें कि राष्ट्रीय भाषाके क्या-क्या लक्षण होने चाहियें।

१. अमलदारोंके लिअे वह भाषा सरल होनी चाहिये।

२. अुस भाषाके द्वारा भारतवर्षका आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार हो सकना चाहिये।

३. यह ज़रूरी है कि भारतवर्षके बहुतसे लोग अुस भाषाको बोलते हों।

४. राष्ट्रके लिअे वह भाषा आसान होनी चाहिये।

५. अुस भाषाका विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्पस्थायी स्थिति पर ज़ोर नहीं देना चाहिये।

अंग्रेज़ी भाषामें अिनमें से अेक भी लक्षण नहीं।

पहला लक्षण अखीरमें देना चाहिये था। लेकिन मैंने अुसे पहला स्थान दिया है, क्योंकि अैसा आभास होता है, मानो अंग्रेज़ी भाषामें यह लक्षण है। ज्यादा विचार करने पर हम देखेंगे कि आज भी अमलदारोंके लिअे यह भाषा सरल नहीं है। यहांके शासन-विधानकी कल्पना यह है कि अंग्रेज़ लोग कम होते जायेंगे, और सो भी अिस हद तक कि आखिरमें अेक वाअिसराय और अँगुलियों पर गिने जानेवाले कुछ अंग्रेज़ अमलदार ही यहाँ रह जायेंगे। बड़ी तादाद आज भी हिन्दुस्तानियोंकी ही है, और वह बढ़ती ही जायगी। अिन लोगोंके लिअे हिन्दुस्तानकी किसी भी भाषाके मुक़ाबले अंग्रेज़ी मुश्किल है, अिस बातको तो सभी कोअी क़बूल करेंगे।

दूसरे लक्षण पर विचार करनेसे हमें पता चलता है कि जब तक अंग्रेज़ी भाषाको हमारा जनसमाज बोलने न लग जाय, जब तक यह मुमकिन न हो, तब तक हमारा धार्मिक व्यवहार अंग्रेज़ीमें चल ही नहीं सकता। समाजमें अंग्रेज़ीका अिस हद तक फैल जाना नामुमकिन मालूम होता है।

तीसरा लक्षण अंग्रेज़ीमें हो ही नहीं सकता, क्योंकि वह भारतवर्षके बहुजनसमाजकी भाषा नहीं।

चौथा लक्षण भी अंग्रेज़ीमें नहीं, क्योंकि सारे राष्ट्रके लिअे वह अुतनी आसान नहीं।

पाँचवें लक्षणका विचार करनेसे हमें पता चलता है कि आज अंग्रेज़ी भाषाको जो सत्ता प्राप्त है, वह क्षणिक है। चिरस्थायी स्थिति तो यह है कि हिन्दुस्तानमें जनताके राष्ट्रीय कामोंमें अंग्रेज़ी भाषाकी ज़रूरत कम ही रहेगी। हाँ, अंग्रेज़ी साम्राज्यके व्यवहारमें अुसकी ज़रूरत होगी। यह दूसरी बात है कि वह साम्राज्यके राज्य-व्यवहारकी ('डिप्लोमसी' की) भाषा होगी। अुस व्यवहारके लिअे अंग्रेज़ीकी ज़रूरत रहेगी। हम कहीं भी अंग्रेज़ी भाषाका द्वेष नहीं करते। हमारा आग्रह तो यही है कि हम अुसे अुसकी मर्यादासे बाहर बढ़ने देना नहीं चाहते। साम्राज्यकी भाषा तो अंग्रेज़ी ही रहेगी, और अिस कारण हम अपने मालवीयजी, शास्त्रीजी और बैनरजी वग़ैराको अुसे सीखनेके लिअे बाध्य करेंगे। और, यह विश्वास रखेंगे कि वे दूसरे देशोंमें हिन्दुस्तानकी कीर्ति फैलायेंगे। किन्तु राष्ट्रकी भाषा अंग्रेज़ी नहीं हो सकती। अंग्रेज़ीको राष्ट्रभाषा बनाना देशमें 'अेस्पेरेण्टो' को दाख़िल करना है। अंग्रेज़ीको राष्ट्रीय भाषा बनानेकी कल्पना हमारी निर्बलताकी निशानी है। अेस्पेरेण्टोका प्रयास निरे अज्ञानका सूचक होगा।

तो फिर किस भाषामें ये पाँच लक्षण मिलते हैं? हमें यह क़बूल कर ही लेना होगा कि हिन्दी भाषामें ये सब लक्षण हैं।

हिन्दी भाषा मैं अुसे कहता हूँ, जिसे अुत्तरमें हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं, और जो देवनागरी या अुर्दू लिपिमें लिखी जाती है। अिस व्याख्याके ख़िलाफ़ थोड़ा विरोध पाया गया है।

दलील यह की जाती है कि हिन्दी और अुर्दू दो अलग भाषायें हैं। यह दलील वास्तविक नहीं। हिन्दुस्तानके अुत्तरी हिस्सेमें मुसलमान और हिन्दू दोनों अेक ही भाषा वोलते हैं। भेद सिर्फ़ पढ़े-लिखोंने पैदा किया है। यानी पढ़े-लिखे हिन्दू हिन्दीको केवल संस्कृतमय वना डालते हैं। नतीजा यह होता है कि कअी मुसलमान अुसे समझ नहीं पाते। लखनअूके मुसलमान भाअी फ़ारसीमय अुर्दू वोलकर अुसे अैसी शकल दे देते हैं कि हिन्दू समझ न सकें। ये दोनों परभाषा हैं, और आम जनताके वीच अिनकी कोअी जगह नहीं। मैं अुत्तरमें रहा हूँ, हिन्दुओं और मुसलमानोंके साथ खूब मिला हूँ, और हिन्दी भाषाका मेरा अपना ज्ञान बहुत कम होने पर भी अुनके साथ व्यवहार करनेमें मुझे ज़रा भी अड़चन नहीं हुअी है। अुत्तरी हिन्दुस्तानमें जिस भाषाको वहाँका जनसमाज वोलता है, अुसे आप चाहे अुर्दू कहें, चाहे हिन्दी, वात अेक ही है। अुर्दू लिपिमें लिखकर अुसे अुर्दूके नामसे पहचानिये, और अुन्हीं वाक्योंको नागरीमें लिखकर अुसे हिन्दी कह लीजिये।

अव रहा सवाल लिपिका। फिलहाल मुसलमान लड़के ज़रूर ही अुर्दू लिपिमें लिखेंगे। हिन्दू ज़्यादातर देवनागरीमें लिखेंगे। 'ज़्यादातर' शब्दका प्रयोग अिसलिअे कर रहा हूँ कि हज़ारों हिन्दू आज भी अपनी हिन्दी अुर्दू लिपिमें लिखते हैं, और कुछ तो अैसे हैं, जो देवनागरी लिपि जानते भी नहीं। आख़िर जव हिन्दुओं और मुसलमानोंके वीच शंकाकी थोड़ी भी दृष्टि न रहेगी, जव अविश्वासके सव कारण दूर हो चुकेंगे, तव जिस लिपिमें शक्ति रहेगी, वह लिपि ज़्यादा लिखी जायगी और वह राष्ट्रीय लिपि वनेगी। अिस वीच जिन मुसलमान और हिन्दू भाअियोंको अुर्दू लिपिमें अर्ज़ी लिखनेकी अिच्छा होगी, अुनकी अर्ज़ी राष्ट्रके स्थानमें क़वूल की जायगी — की जानी चाहिये।

पाँच लक्षण धारण करनेमें हिन्दीकी होड़ करनेवाली दूसरी कोअी भाषा नहीं। हिन्दीके वादका स्थान वंगलाको प्राप्त है। तिस पर भी वंगाली भाअी वंगालके वाहर तो हिन्दीका ही अुपयोग करते हैं। हिन्दी

बोलनेवाला जहाँ जाता है, वहाँ हिन्दीका ही अुपयोग करता है, और अुससे किसीको आश्चर्य नहीं होता। हिन्दी बोलनेवाले धर्म-प्रचारक और अुर्दूके मौलवी सारे हिन्दुस्तानमें अपने व्याख्यान हिन्दीमें ही देते हैं, और अनपढ़ जनता भी अुसे समझ लेती है। अनपढ़ गुजराती भी अुत्तरमें जाकर हिन्दीका थोड़ा बहुत अिस्तेमाल कर लेता है, जब कि अुत्तरका भैया बम्बअीके सेठकी दरवानगीरी करता हुआ भी गुजराती बोलनेसे अिनकार करता है, और सेठ भैयाके साथ टूटी-फूटी हिन्दीमें बोलना शुरू कर देता है। मैंने देखा है कि ठेठ द्राविड़ प्रान्तोंमें भी हिन्दीकी ध्वनि सुनाअी पड़ती है। यह कहना ठीक नहीं कि मद्रासमें तो सब काम अंग्रेज़ीसे चलता है। मैंने तो वहाँ भी अपना काम हिन्दीमें किया है। सैकड़ों मद्रासी मुसाफ़िरोंको मैंने दूसरे लोगोंके साथ हिन्दीमें बोलते सुना है। फिर, मद्रासके मुसलमान भाअी तो ठीक-ठीक हिन्दी बोलना जानते हैं। यहाँ यह याद रखना चाहिये कि सारे हिन्दुस्तानके मुसलमान अुर्दू बोलते हैं, और सब प्रान्तोंमें अुनकी संख्या कोअी छोटी नहीं है।

अिस प्रकार राष्ट्रीय भाषाके नाते हिन्दी भाषाका निर्माण हो चुका है। हमने बहुत बरस पहले राष्ट्रीय भाषाके रूपमें अुसका अुपयोग किया है। अुर्दूकी अुत्पत्ति भी हिन्दीकी अिस शक्तिमें समाअी हुअी है।

मुसलमान बादशाह फ़ारसी या अरबीको राष्ट्रीय भाषा नहीं बना सके। अुन्होंने हिन्दी व्याकरणको माना, और अुर्दू लिपिका अुपयोग करके फ़ारसी शब्दोंका ज़्यादा अिस्तेमाल किया। लेकिन आम जनताके साथ वे अपने व्यवहारको परदेशी भाषाके ज़रिये न चला सके। अंग्रेज़ हाकिमोंसे यह बात छिपी नहीं है। जिन्हें फ़ौजी जातियोंका अनुभव है, वे जानते हैं कि सिपाही जमातके लिअे हिन्दी या अुर्दूमें संकेत रखने पड़े हैं।

अिस तरह हम यह जानते हैं कि राष्ट्रीय भाषा तो हिन्दी ही हो सकती है। फिर भी मद्रासके पढ़े-लिखे लोगोंके लिअे यह सवाल मुश्किल तो है।

दक्षिणी, गुजराती, सिन्धी और बंगालीके लिअे तो यह बहुत आसान है। वे कुछ ही महीनोंमें हिन्दी पर अच्छा प्रभुत्व प्राप्त करके राष्ट्रका कारबार अुसमें चला सकते हैं। तामिल भाअियोंके लिअे यह अितना आसान नहीं। तामिल आदि द्राविड़ विभागकी भाषायें हैं, और अुनकी रचना व व्याकरण संस्कृतसे बिलकुल ही भिन्न है। संस्कृत भाषाओं और द्राविड़ भाषाओंके बीच अेक शब्दोंकी अेकताको छोड़कर दूसरी कोअी अेकता पाअी नहीं जाती। लेकिन यह कठिनाअी आजकलके पढ़े-लिखे लोगोंके लिअे ही है। अुनके स्वदेशाभिमान पर आधार रखकर हमें अुनसे यह आशा रखनेका अधिकार है कि वे विशेष प्रयास करके हिन्दी सीख लेंगे। यदि हिन्दीको अुसका पद प्राप्त हो जाय, तो भविष्यमें हरअेक मद्रासी पाठशालामें हिन्दीका प्रवेश हो जाय, और मद्रासको दूसरे प्रान्तोंके विशेष परिचयमें आनेका अवसर मिल जाय। अंग्रेज़ी भाषा द्राविड़ जनतामें प्रवेश नहीं कर सकी है। किन्तु हिन्दीको प्रवेश करनेमें समय नहीं लगेगा। तेलगुवाले तो आज भी अिस दिशामें कोशिश कर रहे हैं। कौनसी भाषा राष्ट्रीय भाषा हो सकती है, अिसके बारेमें यह परिषद् किसी अेक निश्चय पर पहुँच सके, तो फिर अिस कामको पूरा करनेके लिअे अुपाय सोचनेकी ज़रूरत पैदा होगी। जो अुपाय मातृभाषाके लिअे सुझाये हैं, वे ही आवश्यक फेरफारके साथ राष्ट्रीय भाषाको भी लागू किये जा सकते हैं। खासकर गुजरातीको शिक्षाका माध्यम बनानेकी कोशिश तो मुख्यतः हमींको करनी होगी। लेकिन राष्ट्रीय भाषाके आन्दोलनमें तो सारा देश हाथ बँटायेगा।'

२
हिन्दी साहित्य सम्मेलन*

युवराज, सभापति, भाअियो और बहनो,

हमारे पूजनीय और स्वार्थत्यागी नेता पं० मदनमोहनजी मालवीय नहीं आ सके। मैंने अुनसे प्रार्थना की थी कि जहाँ तक बने सम्मेलनमें अुपस्थित रहियेगा। अुन्होंने वचन दिया था कि वे ज़रूर आयेंगे। पंडितजी सम्मेलनमें तो अुपस्थित नहीं हुअे, पर अुन्होंने अेक पत्र भेज दिया है। मैं अुम्मीद करता था कि यदि पंडितजी नहीं आयेंगे, तो अुनका पत्र अवश्य आयेगा, और अुसे मैं आप लोगोंके सामने अुपस्थित कर सकूंगा। यह पत्र मुझे आज मिला है। मैंने स्वागतकारिणी सभाको हिन्दीके विषयमें विद्वानोंसे दो प्रश्नों पर सम्मति लेनेके लिअे कहा था, अुन्हींका अुत्तर पंडितजीने अपने पत्रमें दिया है।

(मालवीयजीका पत्र पढ़कर गांधीजीने अिस प्रकार कहा —)

भाअियो और बहनो,

मैं दिलगीर हूँ कि जो व्याख्यान सम्मेलनमें देनेका मेरा अिरादा था, वह आपके सामने नहीं रख सका हूँ। मैं बड़ी झंझटोंमें पड़ा हूँ। मेरी अिस समय बड़ी दुर्दशा है। अिससे मैं यह काम नहीं कर सका। पर मैंने वादा किया था कि आअूंगा, आ गया; जो चीज़ सामने रखनेका अिरादा था, नहीं रख सका।

यह भाषाका विषय बड़ा भारी और बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यदि सब नेता सब काम छोड़कर केवल अिसी विषय पर लगे रहें, तो बस है। यदि हम लोग भाषाके प्रश्नको गौण समझेंगे या अिधरसे मन हटा लेंगे, तो अिस

---

* यह भाषण अिन्दौरमें हुअे हिन्दी साहित्य सम्मेलनके आठवें अधिवेशनके समय (सन् १९१८) सभापति-पदसे दिया गया था।

समय लोगोंमें जो प्रवृत्ति चल रही है, लोगोंके हृदयोंमें जो भाव अुत्पन्न हो रहा है, वह निष्फल हो जायगा।

भाषा माताके समान है। माता पर हमारा जो प्रेम होना चाहिये, वह हम लोगोंमें नहीं है। मुझे तो अैसे सम्मेलनसे भी वास्तविक प्रेम नहीं है। तीन दिनका जलसा होगा। तीन दिन कह सुनकर हमें जो करना होगा, अुसे हम भूल जायेंगे। सभापतिके भाषणमें तेज नहीं है; जिस वस्तुकी आवश्यकता है, वह अुसमें नहीं है। अिससे भारी कंगालियत मैं नहीं जान सकता। हम पर और हमारी प्रजाके अूपर अेक बड़ा आक्षेप यह है कि हमारी भाषामें तेज नहीं है। जिनमें विज्ञान नहीं है, अुनमें तेज नहीं है। जब हममें तेज आयेगा तभी हमारी प्रजामें और हमारी भाषामें तेज आयेगा। विदेशी भाषा द्वारा आप जो स्वातंत्र्य चाहते हैं, वह नहीं मिल सकता, क्योंकि अुसमें हम योग्य नहीं हैं। प्रसन्नताकी बात है कि अिन्दौरमें सब कार्य हिन्दीमें होता है। पर क्षमा कीजियेगा, प्रधानमंत्री साहबका जो पत्र आया है, वह अंग्रेज़ीमें है। अिन्दौरकी प्रजा यह बात नहीं जानती होगी, पर मैं अुसे बतलाता हूँ कि यहाँ अदालतोंमें प्रजाकी अर्जियाँ हिन्दीमें ली जाती हैं, पर न्यायाधीशोंके फ़ैसले और वकील-बैरिस्टरोंकी बहस अंग्रेज़ीमें होती है। मैं पूछता हूँ कि अिन्दौरमें अैसा क्यों होता है? हाँ, यह ठीक है, मैं यह मानता हूँ कि अंग्रेज़ी राज्यमें यह आन्दोलन सफल नहीं हो सकता, पर देशी राज्योंमें तो सफल होना ही चाहिये। शिक्षित वर्ग, जैसा कि माननीय पंडितजीने अपने पत्रमें दिखाया है, अंग्रेज़ीके मोहमें फँस गया है, और अपनी राष्ट्रीय मातृभाषासे अुसे असन्तोष हो गया है। पहली मातासे जो दूध मिलता है, अुसमें ज़हर और पानी मिला हुआ है, और दूसरी मातासे शुद्ध दूध मिलता है। बिना अिस शुद्ध दूधके मिले हमारी अुन्नति होना असम्भव है। पर जो अन्धा है, वह देख नहीं सकता; और गुलाम नहीं जानता कि अपनी बेड़ियाँ किस तरह तोड़े। पचास वर्षोंसे हम अंग्रेज़ीके मोहमें फँसे हैं। हमारी प्रजा अज्ञानमें डूबी रही है। सम्मेलनको अिस ओर विशेष रूपसे खयाल रखना चाहिये। हमें अैसा अुद्योग करना चाहिये कि अेक वर्षमें राजकीय सभाओंमें, कांग्रेसमें,

प्रान्तीय सभाओंमें और अन्य सभा-समाज और सम्मेलनोंमें अंग्रेजीका अेक भी शब्द सुनाअी न पड़े। हम अंग्रेजीका व्यवहार बिलकुल त्याग दें। अंग्रेजी सर्वव्यापक भाषा है, पर यदि अंग्रेज सर्वव्यापक न रहेंगे, तो अंग्रेजी भी सर्वव्यापक न रहेगी। अब हमें अपनी मातृभाषाको और नष्ट करके अुसका खून नहीं करना चाहिये। जैसे अंग्रेज अपनी मादरी जबान अंग्रेजीमें ही बोलते और सर्वथा अुसे ही व्यवहारमें लाते हैं, वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिन्दीको भारतकी राष्ट्रभाषा बननेका गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। अिसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिये। अब मैं अपना लिखा हुआ भाषण पढ़ता हूँ।

श्रीमान सभापति महाशय, प्यारे प्रतिनिधिगण, बहनो और भाअियो !

आपने मुझे अिस सम्मेलनका सभापतित्व देकर कृतार्थ किया है। हिन्दी साहित्यकी दृष्टिसे मेरी योग्यता अिस स्थानके लिअे कुछ भी नहीं है, यह मैं खूब जानता हूँ। मेरा हिन्दी भाषाका असीम प्रेम ही मुझे यह स्थान दिलानेका कारण हो सकता है। मैं अुम्मीद करता हूँ कि प्रेमकी परीक्षामें मैं हमेशा अुत्तीर्ण होअूंगा।

साहित्यका प्रदेश भाषाकी भूमि जानने पर ही निश्चित हो सकता है। यदि हिन्दी भाषाकी भूमि सिर्फ़ अुत्तर प्रान्तकी होगी, तो साहित्यका प्रदेश संकुचित रहेगा। यदि हिन्दी भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी, तो साहित्यका विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। जैसे भाषक वैसी भाषा। भाषा-सागरमें स्नान करनेके लिअे पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-अुत्तरसे पुनीत महात्मा आयेंगे, तो सागरका महत्त्व स्नान करनेवालोंके अनुरूप होना चहिये। अिसलिअे साहित्य-दृष्टिसे भी हिन्दी भाषाका स्थान विचारणीय है।

हिन्दी भाषाकी व्याख्याका थोड़ासा खयाल करना आवश्यक है। मैं कअी बार व्याख्या कर चुका हूँ कि हिन्दी भाषा वह भाषा है, जिसको अुत्तरमें हिन्दू व मुसलमान बोलते हैं, और जो नागरी अथवा फ़ारसी लिपिमें लिखी जाती है। यह हिन्दी अेकदम संस्कृतमयी नहीं है, न वह अेकदम फ़ारसी शब्दोंसे लदी हुअी है। देहाती बोलीमें जो माधुर्य मैं देखता हूँ, वह

न लखनअूके मुसलमान भाअियोंकी बोलीमें, न प्रयागके पंडितोंकी बोलीमें पाया जाता है। भाषा वही श्रेष्ठ है, जिसको जनसमूह सहजमें समझ ले। देहाती बोली सब समझते हैं। भाषाका मूल करोड़ों मनुष्यरूपी हिमालयमें मिलेगा, और अुसमें ही रहेगा। हिमालयमें से निकलती हुअी गंगाजी अनन्त काल तक बहती रहेंगी। अैसा ही देहाती हिन्दीका गौरव रहेगा। और जैसे छोटीसी पहाड़ीसे निकलता हुआ झरना सूख जाता है, वैसी ही संस्कृतमयी तथा फ़ारसीमयी हिन्दीकी दशा होगी।

हिन्दु-मुसलमानोंके बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। अैसी ही कृत्रिमता हिन्दी व अुर्दू भाषाके भेदमें है। हिन्दुओंकी बोलीसे फ़ारसी शब्दोंका सर्वथा त्याग और मुसलमानोंकी बोलीसे संस्कृतका सर्वथा त्याग अनावश्यक है। दोनोंका स्वाभाविक संगम गंगा-जमुनाके संगम-सा शोभित और अचल रहेगा। मुझे अुम्मीद है कि हम हिन्दी-अुर्दूके झगड़ेमें पड़कर अपना बल क्षीण नहीं करेंगे। लिपिकी कुछ तकलीफ़ ज़रूर है। मुसलमान भाअी अरबी लिपिमें ही लिखेंगे; हिन्दू बहुत करके नागरी लिपिमें लिखेंगे। राष्ट्रमें दोनोंको स्थान मिलना चाहिये। अमलदारोंको दोनों लिपियोंका ज्ञान अवश्य होना चाहिये। अिसमें कुछ कठिनाअी नहीं है। अन्तमें जिस लिपिमें ज़्यादा सरलता होगी, अुसकी विजय होगी। भारतवर्षमें परस्पर व्यवहारके लिअे अेक भाषा होनी चाहिये, अिसमें कुछ सन्देह नहीं है। यदि हम हिन्दी-अुर्दूका झगड़ा भूल जायँ, तो हम जानते हैं कि मुसलमान भाअियोंकी तो अुर्दू ही राष्ट्रीय भाषा है। अिस बातसे यह सहजमें सिद्ध होता है कि हिन्दी या अुर्दू मुग़लोंके ज़मानेसे राष्ट्रीय भाषा बनती जाती थी।

आज भी हिन्दीसे स्पर्धा करनेवाली दूसरी कोअी भाषा नहीं है। हिन्दी-अुर्दूका झगड़ा छोड़नेसे राष्ट्रीय भाषाका सवाल सरल हो जाता है। हिन्दुओंको फ़ारसी शब्द थोड़े बहुत जानने पड़ेंगे। अिसलामी भाअियोंको संस्कृत शब्दोंका ज्ञान सम्पादन करना पड़ेगा। अैसे लेन-देनसे अिसलामी भाषाका बल बढ़ जायगा, और हिन्दू-मुसलमानोंकी अेकताका अेक बड़ा साधन

हमारे हाथमें आ जायगा। अंग्रेज़ी भाषाका मोह दूर करनेके लिअे अितना अधिक परिश्रम करना पड़ेगा कि हमें लाज़िम है कि हम हिन्दी-अुर्दूका झगड़ा न अुठावें। लिपिकी तकरार भी हमको न करनी चाहिये।

अंग्रेज़ी भाषा राष्ट्रीय भाषा क्यों नहीं हो सकती, अंग्रेज़ी भाषाका बोझ प्रजाके अूपर रखनेसे क्या हानि होती है, हमारी शिक्षाका माध्यम आज तक अंग्रेज़ी होनेसे प्रजा कैसी कुचल दी गअी है, हमारी जातीय भाषा क्यों कंगाल हो रही है, अिन सब बातों पर मैं अपनी राय भागलपुर और भड़ौंचके व्याख्यानोंमें दे चुका हूं, अिसीलिअे यहां मैं फिर नहीं देना चाहता। अिन दोनों व्याख्यानोंमें से भाषा-सम्बन्धी भाग मैं अिस व्याख्यानके परिशिष्टरूपमें रख दूंगा। हक़ीक़तमें, अिस बातमें सन्देह नहीं हो सकता कि हमारे कविवर सर रवीन्द्रनाथ टागोर, विदुषी बेसेण्ट, लोकमान्य तिलक और अन्यान्य प्रतिष्ठित और आप्त व्यक्तियोंका मन्तव्य अिस विषयमें अैसा ही है। कार्यकी सिद्धिमें कठिनाअियां तो होंगी ही, किन्तु अुनका अुपाय करना अिस सभा पर निर्भर है। लोकमान्य तिलक महाराजने अपना अभिप्राय कार्य करके बता दिया है। अुन्होंने 'केसरी' में और 'मराठा' में हिन्दी-विभाग शुरू कर दिया है। भारतरत्न पंडित मदनमोहन मालवीयजीका अभिप्राय भी हिन्दुस्तानमें अज्ञात नहीं है। तो भी हमें मालूम है कि हमारे कअी विद्वान नेताओंका अभिप्राय है कि कुछ वर्षों तक तो अेक अंग्रेज़ी ही राष्ट्रीय भाषा रहेगी। अिन नेताओंसे हम विनयपूर्वक कहेंगे कि अंग्रेज़ीके अिस मोहसे प्रजा पीड़ित हो रही है। अंग्रेज़ी शिक्षा पानेवालोंके ज्ञानका लाभ प्रजाको बहुत ही कम मिलता है, और अंग्रेज़ी शिक्षितवर्ग और आम लोगोंके बीच बड़ा दरियाव आ पड़ा है।

कहना आवश्यक नहीं है कि मैं अंग्रेज़ी भाषासे द्वेष नहीं करता हूं। अंग्रेज़ी-साहित्य-भण्डारसे मैंने भी बहुत रत्नोंका अुपयोग किया है। अंग्रेज़ी भाषाकी मारफ़त हमको विज्ञान आदिका खूब ज्ञान लेना है। अंग्रेज़ीका ज्ञान भारतवासियोंके लिअे कितना आवश्यक है। लेकिन अिस भाषाको अुसका अुचित स्थान देना अेक बात है, अुसकी जड़ पूजा करना दूसरी बात है।

हिन्दी-अुर्दू राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिये, अिस बातको सिर्फ़ स्वीकार करनेसे हमारा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता है, तो फिर किस प्रकार हम सिद्धि पा सकेंगे? जिन विद्वद्‌गणोंने अिस मंडपको सुशोभित किया है, वे भी अपनी वक्तृतासे हमको अिस विषयमें ज़रूर कुछ सुनायेंगे। मैं सिर्फ़ भाषा-प्रचारके बारेमें कुछ कहूँगा। भाषा-प्रचारके लिअे 'हिन्दी-शिक्षक' होना चाहिये। हिन्दी-बंगाली सीखनेवालोंके लिअे अेक छोटी-सी पुस्तक मैंने देखी है। वैसी मराठीमें भी है। अन्य भाषा-भाषियोंके लिअे अैसी कितावें देखनेमें नहीं आअी हैं। यह काम करना जैसा सरल है, वैसा ही आवश्यक है। मुझे अुम्मीद है कि यह सम्मेलन अिस कार्यको शीघ्रतासे अपने हाथमें लेगा। अैसी पुस्तकें विद्वान और अनुभवी लेखकोंके द्वारा लिखवानी चाहिये।

सबसे कष्टदायी मामला द्राविड़ भाषाओंके लिअे है। वहाँ तो कुछ प्रयत्न ही नहीं हुआ है। हिन्दी-भाषा सिखानेवाले शिक्षकोंको तैयार करना चाहिये। अैसे शिक्षकोंकी बड़ी ही कमी है। अैसे अेक शिक्षक प्रयागजीसे आपके लोकप्रिय मंत्री भाअी पुरुषोत्तमदासजी टण्डनके द्वारा मुझे मिले हैं।

हिन्दी भाषाका अेक भी सम्पूर्ण व्याकरण मेरे देखनेमें नहीं आया है। जो हैं, सो अंग्रेज़ीमें विलायती पादरियोंके बनाये हुअे हैं। अैसा अेक व्याकरण डॉ० केलॉगका रचा हुआ है। हिन्दुस्तानकी अन्यान्य भाषाओंका मुक़ाबला करनेवाला व्याकरण हमारी भाषामें होना चाहिये। हिन्दी-प्रेमी विद्वानोंसे मेरी नम्र विनती है कि वे अिस त्रुटिको दूर करें। हमारी राष्ट्रीय सभाओंमें हिन्दी भाषाका ही अिस्तेमाल होना आवश्यक है। कांग्रेसके कार्य-कर्त्ताओं और प्रतिनिधियों द्वारा यह प्रयत्न होना चाहिये। मेरा अभिप्राय है कि यह सभा अैसी प्रार्थना आगामी कांग्रेसमें अुसके कर्मचारियोंके सम्मुख अुपस्थित करे।

हमारी क़ानूनी सभाओंमें भी राष्ट्रीय भाषा द्वारा कार्य चलना चाहिये। जब तक अैसा नहीं होता, तब तक प्रजाको राजनीतिक कार्योंमें ठीक तालीम नहीं मिलती है। हमारे हिन्दी अख़बार अिस कार्यको थोड़ासा करते तो

हैं, लेकिन प्रजाको तालीम अनुवादसे नहीं मिल सकती है। हमारी अदालतमें ज़रूर राष्ट्रीय भाषा और प्रान्तीय भाषाका प्रचार होना चाहिये। न्यायाधीशोंकी मारफ़त जो तालीम हमको सहज ही मिल सकती है, अुस तालीमसे आज प्रजा वंचित रहती है।

भाषाकी जैसी सेवा हमारे राजा-महाराजा लोग कर सकते हैं, वैसी अंग्रेज़ सरकार नहीं कर सकती। महाराजा होलकरकी कौन्सिलमें, कचहरीमें, और हरअेक काममें हिन्दीका और प्रान्तीय बोलीका ही प्रयोग होना चाहिये। अुनके अुत्तेजनसे भाषा और बहुत ही बढ़ सकती है। अिस राज्यकी पाठशालाओंमें शुरूसे आखिर तक सब तालीम मादरी ज़बानमें देनेका प्रयोग होना चाहिये। हमारे राजा-महाराजाओंसे भाषाकी बड़ी भारी सेवा हो सकती है। मैं अुम्मीद रखता हूँ कि होलकर महाराजा और अुनके अधिकारीवर्ग अिस महान् कार्यको अुत्साहसे अुठा लेंगे।

अैसे सम्मेलनसे हमारा सब कार्य सफल होगा, अैसी समझ भ्रम ही है। जब हम प्रतिदिन अिसी कार्यकी धुनमें लगे रहेंगे, तभी अिस कार्यकी सिद्धि हो सकेगी। सैकड़ों स्वार्थ-त्यागी विद्वान जब अिस कार्यको अपनायेंगे तभी सिद्धि सम्भव है।

मुझे खेद तो यह है कि जिन प्रान्तोंकी मातृभाषा हिन्दी है, वहाँ भी अुस भाषाकी अुन्नति करनेका अुत्साह नहीं दिखाअी देता है। अुन प्रान्तोंमें हमारे शिक्षित-वर्ग आपसमें पत्र-व्यवहार और बातचीत अंग्रेज़ीमें करते हैं। अेक भाअी लिखते हैं कि हमारे अखबार चलानेवाले अपना व्यवहार अंग्रेज़ीकी मारफ़त करते हैं, अपने हिसाब-किताब वे अंग्रेज़ीमें ही रखते हैं। फ्रांसमें रहनेवाले अंग्रेज अपना सब व्यवहार अंग्रेज़ी ही में रखते हैं। हम अपने देशमें अपने महत् कार्य विदेशी भाषामें करते हैं। मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम (हिन्दी) भाषाको राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओंको अुनका योग्य स्थान नहीं देते, तब तक स्वराज्यकी सब बातें निरर्थक हैं। अिस सम्मेलन द्वारा भारतवर्षके अिस बड़े प्रश्नका निराकरण हो जाय, अैसी मेरी आशा और प्रभु-प्रति प्रार्थना है।

३

कांग्रेसमें 'हिन्दुस्तानी'

मद्रास शब्दका अुपयोग में अुसके प्रचलित अर्थमें, यानी समूचे मद्रास प्रान्त और सभी द्राविड़ भाषा बोलनेवाले लोगोंके अर्थमें करता हूँ।*

मैं देखता हूँ कि अबकी कांग्रेसका सारा काम खासकर हिन्दुस्तानीमें होनेकी वजहसे श्रीमती अेनी बेसण्ट नाराज़ हुअी हैं, और वे अिस आश्चर्य-जनक परिणाम पर पहुँची हैं कि अिससे कांग्रेस राष्ट्रीय न रहकर अेक प्रांतीय सभा बन गअी है। मेरे दिलमें श्रीमती बेसण्टके लिअे और अुनकी भारत-सेवाके लिअे बहुत अिज़्ज़त है। हिन्दुस्तानके लिअे स्वराज्यके विचारको जितना अुन्होंने लोकप्रिय बनाया, अुतना दूसरे किसीने नहीं बनाया। हममें से जो अुत्तम हैं, और अुमरमें छोटे हैं, वे भी अुनके अुद्यम, अुनकी लगन और अुनकी संगठन-शक्तिको पा नहीं सकते; अुन्होंने यह सब हिन्दुस्तानकी सेवाके लिअे दे डाला है। अपनी प्रौढ़ अुमरका अुत्तम अंश अुन्होंने हिन्दुस्तानकी सेवामें खर्च किया है, और अिसके कारण वे शायद लोकमान्य तिलकके बादकी, दूसरे नम्बरकी, लोकप्रियता प्राप्त कर सकी हैं, जो अुचित ही है। लेकिन आजकल चूंकि ज़्यादातर पढ़े-लिखे हिन्दु-स्तानियोंको अुनके विचार पसन्द नहीं पड़ते हैं, अिसलिअे अुनकी लोक-मान्यता कुछ कम हुअी है। और, अुनके अिस विचारसे कि हिन्दुस्तानीके अिस्तेमालसे कांग्रेस अेक प्रान्तीय सभा बन गअी है, सार्वजनिक रीतिसे अपना मतभेद प्रकट करते हुअे मुझे दुःख होता है। मेरी नम्र सम्मतिमें यह अेक गम्भीर भूल है, और अिसकी ओर सबका ध्यान खींचना मेरा फ़र्ज़ हो जाता है।

---

* २१-१-१९२० के 'यंग अिण्डिया' में छपा 'अपील टु मद्रास' लेख।

कांग्रेसमें 'हिन्दुस्तानी'

सन् १९१५से मैं, अेकके सिवा, कांग्रेसकी सभी बैठकोंमें शामिल हुआ हूँ। अुसके कारबारको अंग्रेजीके बदले हिन्दुस्तानीमें चलानेकी अुपयोगिताके विचारसे मैंने अुनका खास तौरसे अभ्यास किया है। मैंने सैकड़ों प्रतिनिधियों और हजारों प्रेक्षकोंसे अिसकी चर्चा की है; लोकमान्य तिलक और श्रीमती बेसण्ट सहित सभी लोकसेवकोंकी अपेक्षा मैं शायद सारे देशमें ज्यादा घूमा-फिरा हूँ, और पढ़े-लिखों व अनपढ़ोंको मिलाकर सबसे ज्यादा लोगोंसे मिला हूँ; और मैं सोच-समझकर अिस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि राष्ट्रका कारबार चलानेके लिअे या विचार-विनिमयके लिअे हिन्दुस्तानीको छोड़कर दूसरी कोअी भाषा शायद ही राष्ट्रीय माध्यम बन सके। (हिन्दुस्तानी यानी हिन्दी और अुर्दूके मिलापसे पैदा होनेवाली भाषा।) साथ ही व्यापक अनुभवके आधार पर मेरी यह पक्की राय बनी है कि पिछले दो सालोंको छोड़कर बाकी सब सालोंमें कांग्रेसका क़रीब-क़रीब सारा ही काम अंग्रेजीमें चलानेसे राष्ट्रको बहुत नुकसान अुठाना पड़ा है। अिसके अलावा, मैं यह भी कहा चाहता हूँ कि अेक मद्रास प्रान्तको छोड़कर बाकी सब जगह राष्ट्रीय कांग्रेसके दर्शकों और प्रतिनिधियोंकी बड़ी संख्या अंग्रेजीके मुक़ाबले हिन्दुस्तानीको हमेशा ही ज्यादा समझ सकी है। अिसका अेक आश्चर्य-जनक परिणाम यह हुआ है कि अिन तमाम वर्षोंके लम्बे समयमें कांग्रेस दिखानेभरको राष्ट्रीय रही है; लोक-शिक्षाकी सच्ची कसौटी पर अुसे कसें, अुसकी कीमत कूतें, तो कहना होगा कि वह कभी राष्ट्रीय नहीं थी। दुनियाका दूसरा कोअी देश होता, तो अिस तरहकी संस्था, जो हर साल अपनी लोकप्रियतामें बढ़ती ही रही है, अपनी ज़िन्दगीके ३४ सालोंमें आम लोगोंके सामने अुनकी अपनी भाषामें तरह-तरहके सवालोंकी चर्चा करके अुन्हें हल करती, और अिस तरह लोगोंको राजनीतिकी तालीम देती। अिसलिअे कांग्रेसकी पिछली बैठकमें दूसरी कमियाँ चाहे जो रही हों, फिर भी अिसमें शक नहीं कि वह अुससे पहलेकी बैठकोंके मुक़ाबले ज्यादा राष्ट्रीय थी, और वह अिस वजहसे कि ज्यादातर दर्शक और प्रतिनिधि अुसके कामकाजको समझ सके थे। यदि श्रोता श्रीमती बेसण्टको सुनना न चाहते थे, बे अुन

गये थे, तो अिसलिअे नहीं अूबे थे कि अुन्हें अुनकी बात सुननी ही न थी, या कि अुनके दिलमें श्रीमती बेसण्टके लिअे अनादर था; बल्कि वजह अुसकी यह थी कि भाषणके बहुत कीमती और दिलचस्प होते हुअे भी वे अुसे समझ नहीं पाते थे। और, जैसे-जैसे राष्ट्रीय भावना जागेगी और राजनीतिक ज्ञान और शिक्षाकी भूख खुलेगी — और खुलनी भी चाहिये — वैसे-वैसे अंग्रेज़ीमें बोलनेवालोंके लिअे अपने सर्वसाधारण श्रोताओंका ध्यानपात्र बनना अधिकाधिक कठिन होता जायगा; फिर भले ही वक्ता कितना ही शक्तिशाली और लोकप्रिय क्यों न हो। अिसलिअे मैं मद्रास प्रान्तकी जनतासे प्रार्थना करता हूँ कि वह अिस बातको समझ ले कि लोकसेवाका काम करनेवालोंके लिअे हिन्दुस्तानी सीखना ज़रूरी है। मद्रासके सिवा दूसरे सभी प्रान्तोंके श्रोता बिना कठिनाअीके कमोबेश हिन्दुस्तानी समझ सकते हैं। दयानन्द सरस्वती अुत्तर हिन्दुस्तानके बाहरकी जनताको भी अपने हिन्दुस्तानी भाषणोंसे वश कर लेते थे, और जनसाधारण भी बिना किसी कठिनाअीके अुनकी बातको समझ सकते थे। कांग्रेसका सारा काम अंग्रेज़ीमें चलता रहा, अिससे सचमुच राष्ट्रको बहुत नुकसान अुठाना पड़ा है। अिसका मतलब यह होता है कि ३१॥ करोड़की आबादीमें से सिर्फ़ ३ करोड़ ८० लाखसे कुछ अूपर मद्रासी लोग हिन्दुस्तानी वक्ताकी बातको समझ नहीं सकते। मैंने अिसमें मुसलमानोंकी गिनती नहीं की है, क्योंकि सभी जानते हैं कि मद्रास अिलाक़ेके ज़्यादातर मुसलमान हिन्दुस्तानी समझते हैं। तो फिर सवाल यह रहता है कि अुस अिलाक़ेके ३८० लाख लोगोंका धर्म क्या है? क्या अुनके लिअे हिन्दुस्तान अंग्रेज़ी सीखे? या फिर बाक़ीके २,७७० लाख हिन्दुस्तानियोंके लिअे अुन्हें हिन्दुस्तानी सीखनी चाहिये? स्व० न्यायमूर्त्ति कृष्णस्वामीने अपनी अचूक और सहज बुद्धिसे अिस बातको ताड़ लिया, और मंज़ूर किया था कि देशके अलग-अलग हिस्सोंमें आपसके व्यवहारके लिअे हिन्दुस्तानी ही अेक माध्यम बन सकती है। मैं नहीं जानता कि आजकल कोअी अिस कथनका विरोध करता हो। यह कभी हो नहीं सकता कि हज़ारों लोग अंग्रेज़ी भाषाको अपना

माध्यम बनायें; और अगर यह मुमकिन हो, तो भी चाहने लायक़ तो क़तअी नहीं। अिसकी सीधी-सादी वजह यह है कि अंग्रेजीके जरिये मिलनेवाला अुच्च और पारिभाषिक ज्ञान आम लोगों तक पहुँच नहीं सकता। यह तो तभी हो सकता है, जब अिस ज्ञानका प्रसार अूपरके दरजेवालोंमें भी किसी देशी भाषाके द्वारा हो। मसलन्, सर जगदीशचन्द्र बसुकी रचनाओंका बँगलासे गुजरातीमें अुल्था करना हक्स्लीके अंग्रेजी ग्रंथोंको गुजरातीमें अुतारनेकी अपेक्षा आसान है।

और अिस कथनका मतलब क्या कि बाक़ी हिन्दुस्तानके लिअे मद्रासियोंको हिन्दुस्तानी सीखनी चाहिये? अिसका मतलब यही है कि मद्रासके जो लोकसेवक हिन्दुस्तानके बाहर काम करना चाहते हैं, और अपने प्रान्तके बाहरकी राष्ट्रीय सभाओंमें भाग लेना चाहते हैं, अुन्हें प्रतिदिन अेक घण्टेके हिसाबसे अपना अेक साल हिन्दुस्तानी सीखनेमें बिताना चाहिये। अेक सालकी अैसी कोशिशके बाद कअी हजार मद्रासी, कम-से-कम कांग्रेसकी कार्रवाअीका सार या निचोड़ तो समझने लग ही जायँगे। मद्रास प्रान्तके कअी हिस्सोंमें हिन्दी-प्रचार-कार्यालय कायम हो चुके हैं, जहाँ हिन्दुस्तानी सीखनेकी अिच्छा रखनेवालोंको बिना फीसके हिन्दुस्तानी सिखाअी जाती है। . . . .

(यं० अि०, २१-१-'२०)

४

अंग्रेजी बनाम हिन्दुस्तानी

हाल ही हुअे साहित्य सम्मेलनोंकी कार्रवाअियोंको जिन्होंने ध्यानसे देखा है, वे स्पष्ट ही यह समझ सके होंगे कि हमारी राष्ट्रीय जागृति सिर्फ़ राजनीति तक सीमित नहीं है। अिन सम्मेलनोंमें जो अुत्साह पाया गया, वह अेक अच्छे परिवर्तनका सूचक है। हम अपने राष्ट्रीय जीवनमें और अपनी चर्चाओंमें देशी भाषाओंको अुचित स्थान देने लगे हैं। राजा राममोहन रायने यह भविष्यवाणी की थी कि अेक दिन हिन्दुस्तान अंग्रेज़ी बोलनेवाला देश बन जायगा; आज अिस भविष्यवाणीके ग्रह अच्छे नज़र नहीं आते। हमारे कुछ जाने-माने लोग राष्ट्रभाषाके नाते अंग्रेजीकी हिमायत करनेका अुतावला निर्णय कर लेते हैं। आजकल अदालती भाषाके रूपमें अंग्रेज़ीकी जो अिज्ज़त है, अुससे वे ज़रूरतसे ज्यादा प्रभावित हो जाते हैं। लेकिन वे यह देखना भूल जाते हैं कि अंग्रेज़ीकी आजकी अिज्ज़त न तो हमारे सम्मानको बढ़ानेवाली है, और न वह लोकशाहीके सच्चे जोशको पैदा करनेमें सहायक ही होती है। कुछ सौ अमलदारों या हाकिमोंकी सहूलियतके लिअे करोड़ों लोगोंको अेक परदेशी भाषा सीखनी पड़ती है; यह बेहूदेपनकी हद है। अक्सर हमारे पिछले अितिहाससे अुदाहरण लेकर यह साबित किया जाता है कि देशकी केन्द्रीय सरकारको मज़बूत बनानेके लिअे अेक राष्ट्रीय भाषाकी ज़रूरत है। लोगोंके लिअे अेक सर्वसामान्य माध्यमकी आवश्यकताके बारेमें विवादकी कोअी गुंजाअिश नहीं। लेकिन अंग्रेज़ीको वह जगह नहीं दी जा सकती। हाकिमोंको देशी भाषायें अपनानी चाहियें।

अंग्रेज़ीके हिमायतियोंको अपील करनेवाली अेक दूसरी बात साम्राज्यमें हिन्दुस्तानका स्थान है। सादे शब्दोंमें अिस दलीलका सार यह होता

हैं कि साम्राज्यके १२ करोड़ दूसरे लोगोंके लिअे हिन्दुस्तानके ३० करोड़ लोग अपने सर्वसामान्य माध्यमके रूपमें अंग्रेजीको अपनायें।

अिस प्रश्नका अध्ययन करनेवाले हरअेक व्यक्तिके लिअे ध्यानमें रखने लायक पहली बात यह है कि १५० बरसके अंग्रेजी राजके बाद भी अंग्रेजी भाषा हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषाका स्थान ग्रहण करनेमें विफल हुअी है। हां, अिसमें शक नहीं कि अेक तरहकी टूटी-फूटी अंग्रेजी हमारे शहरोंमें अपना कुछ स्थान बना पाअी है। लेकिन अिस हक़ीक़तसे तो वे लोग ही चौंधिया सकते हैं, जो बम्बअी-कलकत्ते-जैसे शहरोंमें बैठकर हमारे राष्ट्रीय प्रश्नोंका अध्ययन करनेमें लगे हैं। मगर आखिर अैसे लोग कितने हैं? हिन्दुस्तानकी कुल आबादीके २.२ प्रतिशत ही न?

अंग्रेजीके हिमायती अेक दूसरी बात यह भी भूल जाते हैं कि हमारी बहुतसी देशी भाषायें अेक-दूसरीसे मिलती-जुलती हैं, और अिसलिअे अेक मद्रास प्रान्तको छोड़ बाकी सब प्रान्तोंके लिअे राष्ट्रभाषाके नाते हिन्दी अनुकूल है। हिन्दीके अिस लाभको और हमारी हालकी राष्ट्रीय जागृतिको देखते हुअे हम अंग्रेजीको अपनी राष्ट्रभाषाके रूपमें कैसे स्वीकार कर सकते हैं?*

(यं० अि०, २१-५-'२०)

---

* 'देशी भाषाओंका पक्ष'—The Cause of the Vernaculars लेखसे।

५

हिन्दी सीख लीजिये

१

मुझे पक्का विश्वास है कि किसी दिन द्रविड़ भाअी-बहन गंभीर भावसे हिन्दीका अभ्यास करने लग जायँगे। आज अंग्रेज़ी पर प्रभुत्व प्राप्त करनेके लिअे वे जितनी मेहनत करते हैं, अुसका आठवाँ हिस्सा भी हिन्दी सीखनेमें करें, तो बाक़ी हिन्दुस्तानके जो दरवाज़े आज अुनके लिअे बन्द हैं, वे खुल जायँ, और वे अिस तरह हमारे साथ अेक हो जायँ, जैसे पहले कभी न थे। मैं जानता हूँ कि अिस पर कुछ लोग यह कहेंगे कि यह दलील तो दोनों ओर लागू होती है। द्रविड़ लोगोंकी संख्या कम है; अिसलिअे राष्ट्रकी शक्तिके मितव्ययकी दृष्टिसे यह ज़रूरी है कि हिन्दुस्तानके बाक़ी सब लोगोंको द्रविड़ भारतके साथ बातचीत करनेके लिअे तामिल, तेलगू, कन्नड़ और मलयालम सिखानेके बदले द्रविड़ भारतवालोंको शेष हिन्दुस्तानकी आम ज़बान सीख लेनी चाहिये। अिसी हेतुसे पिछले १८ महीनोंसे अिलाहाबादके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी देखरेखमें मद्रासमें हिन्दी-प्रचारका काम ज़ोरसे चल रहा है। पिछले हफ़्ते बम्बअीमें अग्रवाल-मारवाड़ी-सम्मेलन हुआ था। मेरी अपीलके जवाबमें अिस सम्मेलनने मद्रास प्रान्तमें पाँच साल तक हिन्दी-प्रचारका काम करनेके लिअे रु० ५०,००० का चन्दा करवा दिया है। . . . अिस अुदारताके कारण अिलाहाबादके सम्मेलनकी और अुन द्रविड़ भाअी-बहनोंकी ज़िम्मेदारी बढ़ जाती है, जो मेरे साथ यह मानते हैं कि सम्पूर्ण राष्ट्रीय विकासके लिअे मद्रासवालोंको हिन्दी सीख लेनी चाहिये। कोअी भी द्रविड़ यह न सोचे कि हिन्दी सीखना ज़रा भी मुश्किल है। अगर रोज़के मनोरंजनके समयमें से नियमपूर्वक थोड़ा समय निकाला जाय, तो साधारण आदमी अेक सालमें हिन्दी सीख सकता

है। मैं तो यह भी सुझानेकी हिम्मत करता हूँ कि अब बड़ी-बड़ी म्युनिसिपैलिटियाँ अपने मदरसोंमें हिन्दीकी पढ़ाओको वैकल्पिक बना दें। मैं अपने अनुभवसे यह कह सकता हूँ कि द्रविड़ बालक अद्भुत सरलतासे हिन्दी सीख लेते हैं। शायद कुछ ही लोग यह जानते होंगे कि दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले लगभग सभी तामिल-तेलगू-भाषी लोग हिन्दी समझते हैं, और अुसमें बातचीत कर सकते हैं। अिसलिअे मैं साहसपूर्वक यह आशा करता हूँ कि अुदार मारवाड़ियोंने मुफ्त हिन्दी सीखनेकी जो सहूलियत पैदा कर दी है, मद्रासके नौजवान अुसकी क़दर करेंगे — यानी वे अिस सहूलियतसे लाभ अुठायेंगे।

(यं० अि०, १६-६-'२०)

२

हिन्दुस्तानकी दूसरी कोअी भाषा न सीखनेके बारेमें बंगालका अपना जो पूर्वग्रह है, और द्रविड़ लोगोंको हिन्दुस्तानी सीखनेमें जो कठिनाअी मालूम होती है, अुसकी वजहसे हिन्दुस्तानी न जाननेके कारण शेष हिन्दुस्तानसे अलग पड़ जानेवाले दो प्रान्त हैं — बंगाल और मद्रास। अगर कोअी साधारण बंगाली हिन्दुस्तानी सीखनेमें रोज तीन घण्टे खर्च करे, तो सचमुच ही दो महीनोंमें वह अुसे सीख ले; और अिसी रफ्तारसे सीखनेमें द्रविड़को छः महीने लगें। कोअी बंगाली या द्रविड़ अितने समयमें अंग्रेजी सीख लेनेकी आशा नहीं कर सकता। हिन्दुस्तानी जाननेवालोंके मुक़ाबले अंग्रेजी जाननेवाले हिन्दुस्तानियोंकी संख्या कम है। अंग्रेजी जाननेसे अिन थोड़े लोगोंके साथ ही विचार-विनिमयके द्वार खुलते हैं। अिसके विपरीत, हिन्दुस्तानीका कामचलाअू ज्ञान अपने देशके बहुत ही ज्यादा भाअी-बहनोंके साथ बातचीत करनेकी शक्ति प्रदान करता है। मैं आशा करता हूँ कि अगली कांग्रेसमें बंगाल और मद्रासके भाअी हिन्दुस्तानीका कामचलाअू ज्ञान प्राप्त करके जायेंगे। जिस भाषाको जनताके ज्यादासे-ज्यादा लोग समझते हैं, हमारी सबसे बड़ी सभा अुस भाषामें अपना काम न चलाये,

तो सचमुच ही वह जनताके लिअे सवक़ सीखनेकी चीज़ नहीं वन सकती। मैं द्रविड़ भाषियोंकी कठिनाअीको समझता हूँ; लेकिन मातृ-भूमिके प्रति अुनके प्रेम और अुद्यमके सामने कोअी चीज़ कठिन नहीं।

(यं० अि०, २-२-'२१)

६

'हिन्दी-नवजीवन'

यद्यपि मुझे मालूम है कि 'नवजीवन' को हिन्दीमें प्रकाशित करना कठिन काम है, तथापि मित्रोंके आग्रहके वश होकर और साथियोंके अुत्साहसे 'नवजीवन' का हिन्दी अनुवाद निकालनेकी धृष्टता मैं करता हूँ। मेरे विचारों पर मेरा प्रेम है। मेरा विश्वास है कि अुनके अनुकरणसे जनताको लाभ है। अिसलिअे अुनको हिन्दीमें प्रकट करनेकी अिच्छा मुझे वहुत समयसे थी। परन्तु आजतक परमात्माने अुसे सफल नहीं किया था। हिन्दुस्तानीको भारतवर्षकी राष्ट्रीय भाषा वनानेका प्रयत्न मैं हमेशा करता आया हूँ। हिन्दुस्तानीके सिवा दूसरी भाषा राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती, अिसमें कुछ भी शक नहीं। जिस भाषाको करोड़ों हिन्दू-मुसलमान वोल सकते हैं, वही अखिल भारतवर्षकी सामान्य भाषा हो सकती है। जव तक अुसमें 'नवजीवन' न निकाला गया, तव तक मुझे दुःख था।

हिन्दुस्तानी-भाषानुरागी 'हिन्दी-नवजीवन' में अुत्तम प्रकारकी हिन्दीकी आशा न रखें। 'नवजीवन' और 'यंग अिंडिया' का अनुवाद ही अुसमें देना संभवनीय है। मुझे न तो अितना समय है कि हमेशा हिन्दुस्तानीमें लेख आदि लिखकर दे सकूँ, और न वहुत हिन्दुस्तानी लिखनेकी शक्ति ही मुझमें है।

'हिन्दुस्तानी भाषाका प्रचार' अिस साहसका मुख्य हेतु नहीं है। 'शान्तिमय असहयोग' का प्रचार ही अिसका अुद्देश्य समझना चाहिये।

हिन्दुस्तानी भाषा जाननेवाले जब तक असहयोग और शांतिके सिद्धान्त भलीभाँति समझ न लेंगे, तब तक शांतिमय अ-सहयोगकी सफलता असम्भव-सी है। अिसलिअे 'हिन्दी-नवजीवन'की आवश्यकता थी। परमात्मासे प्रार्थना है कि जो लोग केवल हिन्दुस्तानी ही समझते हैं, अुन्हें 'हिन्दी- नवजीवन' मददगार हो।

(हिन्दी-नवजीवन, १९-८-'२१)

७

स्वराज्यकी जरूरतें

[बेलगाँवकी ३९वीं राष्ट्रीय महासभाके सभापति-पदसे दिये गये गांधीजीके भाषणसे।]

अेक खास मीयादके अन्दर हर प्रान्तकी अदालतों और धारासभाओंका कामकाज अुसी प्रान्तकी भाषामें जारी हो जाना चाहिये। अपीलकी आखिरी अदालतकी ज़बान हिन्दुस्तानी करार दी जाय — लिपि चाहे देवनागरी हो या फ़ारसी। मध्यवर्ती सरकार और बड़ी धारासभाओंकी भाषा भी हिन्दुस्तानी ही हो। अन्तर्राष्ट्रीय राज्य-व्यवहारकी भाषा अंग्रेज़ी रहे।

मुझे भरोसा है कि अगर आपको यह लगे कि अपने विचारके अनुसार सुझाअी गअी स्वराज्यकी कुछ ज़रूरतोंकी रूप-रेखामें मैं हदसे बाहर चला गया हूँ, तो भी आप छूटते ही अुसकी हँसी न अुड़ाने लग जायेंगे। भले आज हमारे पास अिन चीज़ोंके लेने या पानेकी ताक़त न हो। सवाल यह है कि हम अिन्हें हासिल भी करना चाहते हैं या नहीं? आअिये, पहले हम कम-से-कम अपनी अिस अभिलाषाको ही बढ़ायें।

(हिन्दी-नवजीवन, २६-१२-'२४) 1271

८

कानपुर कांग्रेसका प्रस्ताव

[सन् १९२५ की कानपुर कांग्रेसमें नीचे लिखा प्रस्ताव पास हुआ था।]

यह कांग्रेस तय करती है कि (विधानकी ३३वीं धाराको नीचे लिखे अनुसार सुधारा जाय कि) कांग्रेसका, कांग्रेसकी महासमितिका और कार्यकारिणी समितिका कामकाज आम तौर पर हिन्दुस्तानीमें चलाया जायगा। जो वक्ता हिन्दुस्तानीमें बोल नहीं सकते, अुनके लिअे, या जब-जब ज़रूरत हो तब, अंग्रेज़ीका या किसी प्रान्तीय भाषाका अिस्तेमाल किया जा सकेगा।

प्रान्तीय समितियोंका काम साधारणतया अुन-अुन प्रान्तोंकी भाषाओंमें किया जायगा। हिन्दुस्तानीका अुपयोग भी किया जा सकता है।

[अिस प्रस्ताव पर 'यंग अिण्डिया' और 'नवजीवन' में गांधीजीने यों लिखा था:]

हिन्दुस्तानीके अुपयोगके बारेमें जो प्रस्ताव पास हुआ है, वह लोकमतको बहुत आगे ले जानेवाला है। हमें अब तक अपना कामकाज ज़्यादातर अंग्रेज़ीमें करना पड़ता है, यह निःसन्देह प्रतिनिधियों और कांग्रेसकी महासमितिके ज़्यादातर सदस्यों पर होनेवाला अेक अत्याचार ही है। अिस बारेमें किसी-न-किसी दिन हमें आखिरी फ़ैसला करना ही होगा। जब अैसा होगा, तब कुछ वक़्तके लिअे थोड़ी दिक्कतें पैदा होंगी, थोड़ा असन्तोष भी रहेगा। लेकिन राष्ट्रके विकासके लिअे यह अच्छा ही होगा कि जितनी जल्दी हो सके, हम अपना काम हिन्दुस्तानीमें करने लगें।

(यं० अि०, ७-१-'२६)

जहाँ तक हो सके, कांग्रेसमें हिन्दी-अुर्दूका ही अिस्तेमाल किया जाय, यह अेक महत्त्वका प्रस्ताव माना जायगा। अगर कांग्रेसके सभी सदस्य अिस प्रस्तावको मानकर चलें, अिस पर अमल करें, तो कांग्रेसके काममें गरीबोंकी दिलचस्पी बढ़ जाय।

(न० जी०, २-१-'२६)

६

सभाओंकी भाषा

१

मालूम होता है कि सभाओंके प्रबन्धकर्त्ताओंको निरन्तर अिस बातकी याद दिलाते रहनेकी ज़रूरत है कि जनतासे बातें करनेकी भाषा अंग्रेज़ी नहीं, बल्कि हिन्दी या हिन्दुस्तानी है। मैंने देखा है कि सन् १९२१ के अुल्टे अिस बार अिस दौरेमें मुझे जो अभिनन्दन-पत्र मिले हैं, वे अधिकांशमें प्रायः अंग्रेज़ीमें ही थे। यह स्पष्ट विरोध झरियामें दिखाअी पड़ने लगा, जहाँ कोयलेकी खानोंके मज़दूरोंकी ओरसे मुझे अंग्रेज़ीमें मानपत्र देनेकी कोशिश की गअी। और, वह भी अेक अैसी सभामें, जिसमें हज़ारों आदमी थे, मगर अुनमेंसे शायद ५० आदमी ही अंग्रेज़ी समझ सकते होंगे। अगर वह मानपत्र हिन्दीमें होता, तो बहुत अधिक लोग अुसे आसानीसे समझ सकते। अुस संघके कार्यकर्त्ता बंगाली थे। अगर वह मानपत्र मेरी खातिर अंग्रेज़ीमें लिखा गया था, तो यह बिलकुल ग़ैरज़रूरी था। मानपत्र बंगलामें लिखा जा सकता था, और अुसका हिन्दी अनुवाद या अंग्रेज़ी भी तैयार करा लिया जा सकता था। मगर अुन श्रोताओं पर अंग्रेज़ीका प्रहार करना अुनका अपमान करना था। मैं अुम्मीद करता हूँ कि वे दिन आ रहे हैं, जब किसी सभाकी कार्रवाअीके अैसी किसी भाषामें होने पर, जिसे सभाके अधिकांश लोग न जानते हों, लोग अुस सभासे

अुठकर चल देंगे। झरियाकी सभाके सभापतिकी तारीफ़में यह कहना चाहिये कि ज्योंही मैंने अिसकी ओर अुनका ध्यान खींचा, अुन्होंने अुसे समझ लिया, और बड़ी शिष्टतासे अुस अभिनन्दन-पत्रको बिना पढ़े ही पढ़ा हुआ-सा मान लेने दिया। यह घटना सभी सभा-प्रबन्धकोंके लिअे अेक चेतावनी बन जानी चाहिये, खासकर आन्ध्रदेश, तामिलनाड़, केरल और कर्नाटकवालोंके लिअे। मैं अुनकी कठिनाअियोंको जानता हूँ, मगर अब कोअी ६ सालसे अुनके बीच हिन्दीका प्रचार करनेके लिये अेक संस्था काम कर रही है। अुनके अभिनन्दन-पत्र अपने-अपने प्रान्तकी भाषाओंमें होने चाहियें, और मेरे समझनेके लिअे अुनके हिन्दी अनुवाद करा लेने चाहियें। मैंने द्राविड़ देशके लिअे हमेशा छूट दी है, और जब कभी अुन्होंने चाहा है, अपना भाषण अंग्रेज़ीमें ही किया है। मगर मैं यह सोचता हूँ कि अब वह समय आ गया है, जब अुन्हें बड़ी सार्वजनिक सभाओंके लिअे अंग्रेज़ीका आसरा छोड़ देना चाहिये। सच पूछो तो हिन्दी सीखनेसे अिनकार करके हमारे अंग्रेज़ीदाँ नेता ही जनसमूहोंमें हमारी शीघ्र प्रगतिके रास्तेमें रोड़े अटका रहे हैं। हिन्दी तो द्राविड़ देशोंमें भी तीन महीनोंके भीतर भीतर सीख ली जा सकती है, अगर अुसे रोज़ ३ घण्टेका समय दिया जाय। अगर अुन्हें अिसमें कोअी सन्देह हो, तो वे अेक बार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयागके अधीन चलनेवाले मद्रासके हिन्दी-प्रचार-कार्यालयको आज़मा देखें। .... हिन्दुस्तानके २० करोड़ आदमी हिन्दी समझते हैं। अुस हिन्दीको न सीखनेके लिअे आलस्य और अनिच्छाको छोड़ दूसरा कोअी बहाना हो ही नहीं सकता।

(हिन्दी-नवजीवन, २०-१-'२७)

२

[छत्रपुर, ज़िला गंजाममें दिये गये भाषणसे।]

....मुझसे तो यह भी कहा गया था कि आजकी सभामें मैं अंग्रेज़ीमें ही बोलूँ। किन्तु अिसे तो मैं मातृभूमिकी दूसरी भाषाओंसे द्वेष,

और अंग्रेज़ीसे अनुचित प्रेमका चिह्न मानता हूँ। मैं अंग्रेज़ीसे नफ़रत नहीं करता। पर मैं हिन्दीसे अधिक प्रेम करता हूँ, अिसीलिअे मैं हिन्दुस्तानके शिक्षितोंसे कहता हूँ कि वे हिन्दीको अपनी भाषा बना लें। हम हिन्दीके ज़रिये ही दूसरी प्रान्तीय भाषाओंसे परिचय प्राप्त कर सकते हैं, अुनकी अुन्नति कर सकते हैं। अगर विदेशी भाषा सीखनेमें हमारे दिल और दिमाग़, दोनों, पथरा न गये होते, तो हमारे लिये ५, ६ देशी भाषायें न जाननेका कोअी कारण ही न होता ।

(हिन्दी-नवजीवन, १५-१२-'२७)

३

[कराचीके व्यापार-अुद्योग-मंडलोंके संघके वार्षिक अुत्सव (सन् १९३१) के अवसर पर दिये गये प्रास्ताविक भाषणसे ।]

मेरे अंग्रेज़ मित्र मुझे माफ़ करेंगे, यदि मैं अुनके सामने आपको अपनी बात राष्ट्रभाषामें ही सुनाअूँ। अिस मौक़े पर मुझे सन् १९१८ की युद्ध-परिषद् याद आती है, जो अिसी जगह हुअी थी। जब बहुत ज़्यादा चर्चाके बाद मैंने युद्ध-परिषद्में भाग लेना मंजूर किया, तो मैंने अुनसे प्रार्थना की थी कि परिषद्में मुझे हिन्दी या हिन्दुस्तानीमें बोलनेकी छूट दी जाय। मैं जानता हूँ कि अिस तरहकी प्रार्थना करनेकी कोअी ज़रूरत न थी, फिर भी विनयकी दृष्टिसे यह आवश्यक था, अन्यथा वाअिसरायको आघात पहुँचता। तुरंत ही अुन्होंने मेरी प्रार्थना मंजूर की, और तबसे अिस सम्बन्धमें मेरी हिम्मत अधिक बढ़ी। आज अुसी स्थानमें मैं अिस प्रथाका पालन करनेवाला हूँ। और, व्यापारी संघके सदस्योंसे भी मैं नम्रता-पूर्वक यह कहूँगा कि देशवासियोंके अिस संघमें जब आपको देशवालोंके साथ ही कामकाज करना है, और मौजूदा वातावरण अपना असर आप पर डाल रहा है, तब आपका धर्म है कि आप अपना कामकाज राष्ट्र-भाषामें करें। सभापति महोदयका भाषण मैं बहुत ही ध्यानके साथ सुन रहा था। सुनते ही मेरे मनमें यह खयाल आया कि यदि आप अिस

व्याख्यानका प्रभाव अिस सभा पर या मेरे हृदय पर डालना चाहते हैं, तो विदेशी भाषासे यह प्रभाव कैसे अुत्पन्न हो सकता है? हिन्दुस्तानको छोड़कर आप दूसरे किसी भी आज़ाद या गुलाम देशमें चले जाअिये, यहाँ-जैसी स्थिति तो कहीं भी आपको दिखाअी न पड़ेगी। दक्षिण अफ्रीका जैसे नन्हें-से देशमें अंग्रेज़ी और डच भाषाके दरमियान झगड़ा शुरू हुआ, और आखिर नतीजा यह हुआ कि अंग्रेजों और डच लोगोंमें समझौता हुआ, और दोनों भाषाओंको बराबरीका स्थान दिया गया। बहादुर डच लोग अपनी मातृभाषा छोड़नेको तैयार न थे। . . . .

(नवजीवन, १२–४–'३१)

१०

अेक लिपिका प्रश्न

कुछ समय पहले किसी गुजराती पत्र-प्रेषकने 'नवजीवन'में अेक पत्र भेजा था, जिसमें अुन्होंने मुझे सलाह दी थी कि मैं 'नवजीवन'को देवनागरी लिपिमें छपवाअूं। अुद्देश्य यह था कि मैं अपने अिस विश्वासको दृश्य स्वरूप दे दूं कि भारतके लिअे अेक ही लिपिका होना आवश्यक है। सचमुच मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भारतकी तमाम भाषाओंके लिअे अेक ही लिपिका होना फ़ायदेमन्द है, और वह लिपि देवनागरी ही हो सकती है। तथापि मैं पत्र-प्रेषककी सलाह पर अमल नहीं कर सका। 'नवजीवन'में मैं अिसके कारण दे चुका हूं।* यहाँ अुन्हें दोहरानेकी

* 'नवजीवन' पु० ८, पृ० ३३९में दिये गये कारण नीचेके अवतरणसे मालूम होंगे —

"अगर 'नवजीवन'के पाठकोंका बहुत बड़ा भाग देवनागरी लिपिमें छपे 'नवजीवन'को पसन्द करे, तो मैं 'नवजीवन'को

जरूरत नहीं है। पर अिसमें सन्देह नहीं कि हमें अिस विचारके प्रचारको और ठोस काम करनेके मौक़ेको, जो अिस महान् देश-जागृतिके कारण हमें प्राप्त हुआ है, अपने हाथसे खोना न चाहिये। अिसमें शक नहीं कि हिन्दू-मुस्लिम पागलपन पूर्ण सुधारके मार्गमें अेक महान् विघ्न है। पर अिसके पहले कि देवनागरी भारतकी अेकमात्र लिपि हो जाय, हमें हिन्दू भारतको अिस कल्पनाके पक्षमें कर लेना चाहिये कि तमाम संस्कृत-जन्य और द्राविड़ भाषाओंके लिअे अेक ही लिपि हो। अिस समय बंगालके लिअे बंगाली, पंजाबके लिअे गुरुमुखी, सिन्धके लिअे सिन्धी, अुत्कलके लिअे अुड़िया, गुजरातके लिअे गुजराती, आन्ध्र देशमें तेलगू, तामिल-नाड़में तामिल, केरलमें मलयाली और कर्नाटकमें कन्नड़ लिपि है। मैं बिहारकी कैथी और दक्षिणकी मोड़ीको तो छोड़ ही देता हूँ। यदि

देवनागरीमें छापनेकी चर्चा साथियोंसे तुरन्त करूँ। पाठकोंकी राय जाने बिना पहल करनेकी मेरी हिम्मत नहीं।

जिन प्रश्नों पर मैंने वर्षों विचार किया है, और जिन्हें मैं अतिशय महत्त्वके मानता हूँ, अुनके प्रचारको अेक लिपिके प्रचारके मुक़ाबले में ज़्यादा महत्त्वपूर्ण समझता हूँ। 'नवजीवन'ने बहुतसे साहस किये हैं, लेकिन वे सब मौलिक सिद्धान्तोंके सिलसिलेमें थे। देवनागरी लिपिके लिअे मैं 'नवजीवन'के प्रचारको हानि पहुँचानेका साहस न करूँगा।

'नवजीवन'के पढ़नेवालोंमें बहुतसी बहनें हैं, कअी पारसी हैं, कअी मुसलमान हैं। मुझे डर है कि अिन सबके लिअे देवनागरी लिपि असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य होगी। अगर मेरा यह अनुमान सही हो, तो मैं 'नवजीवन'को देवनागरीमें नहीं छाप सकता। चूँकि देवनागरी लिपिका प्रचार मेरा खास विषय नहीं है, अिसलिअे मैं सोचता हूँ कि अुसमें पहल करनेकी जोखिम मैं नहीं अुठा सकता। 'नवजीवन'को देवनागरीमें छापनेके बाद भी 'हिन्दी नवजीवन'की ज़रूरत तो रहेगी ही। अुसके पाठक गुजराती नहीं समझ सकते।"

तमाम व्यवहार्य और राष्ट्रीय कामोंके लिअे अिन सब लिपियोंके स्थान पर देवनागरीका अुपयोग होने लग जाय, तो वह अेक भारी प्रगति होगी। अुससे हिन्दू भारत सुदृढ़ हो जायगा, और भिन्न-भिन्न प्रान्त अेक-दूसरेके अधिक निकट आ जायेंगे। वह प्रत्येक भारतीय, जिसे भारतकी भिन्न-भिन्न भाषाओंका तथा लिपियोंका ज्ञान है, अपने अनुभवसे जानता है कि नवीन लिपिको भलीभाँति सीखनेमें कितनी देर लगती है। अिसमें सन्देह नहीं कि देश-प्रेमके लिअे कोअी बात कठिन नहीं है। और भिन्न-भिन्न लिपियोंका, जिनमें कुछ तो बहुत ही सुन्दर हैं, अध्ययन करनेमें जो समय लगता है, वह भी व्यर्थ नहीं जाता। परन्तु अिस त्यागकी आशा हम करोड़ोंसे नहीं कर सकते। राष्ट्रीय नेताओंको चाहिये कि वे अिन करोड़ोंके लिअे अिस कामको आसान करके रखें। अिसलिअे हमें अेक अैसी सर्व-सामान्य लिपिकी ज़रूरत है, जो जल्दी-से-जल्दी सीखी जा सके। और, देवनागरीके समान सरल, जल्दी सीखने योग्य और तैयार लिपि दूसरी कोअी है ही नहीं। अिस कामके लिअे भारतमें अेक सुसंगठित संस्था भी थी — शायद, अब भी है। मुझे पता नहीं कि आजकल वह क्या कर रही है। परन्तु यदि यह काम करना अभीष्ट है, तो या तो अुसी पुरानी संस्थाको मज़बूत बना देना चाहिये, या अुसी कामके लिअे अेक नवीन संस्थाका निर्माण कर लेना चाहिये। अिस हलचलको राष्ट्र-भाषा हिन्दीके प्रचारके साथ नहीं जोड़ना चाहिये। अिससे तो गड़बड़ी हो जायगी। यह दूसरा काम धीरे-धीरे, किन्तु अच्छी तरह हो ही रहा है। अेक लिपि अेक भाषाके प्रचारको बहुत आसान कर देगी। पर दोनोंके काम अेक निश्चित हद तक ही साथ-साथ चल सकते हैं। हिन्दी या हिन्दुस्तानीके प्रचारका अुद्देश्य यह कदापि नहीं कि वह प्रान्तीय भाषाओंका स्थान ग्रहण कर ले। यह तो अुनकी सहायताके लिअे और अन्त-र्प्रान्तीय कामोंके लिअे है। जब तक हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य क़ायम रहेगा, तब तक अुसका रूप द्विविध होगा। वह कहीं तो फ़ारसी लिपिमें लिखी जायगी, और अुसमें फ़ारसी और अरबी शब्दोंकी प्रधानता होगी।

कहीं वह देवनागरी लिपिमें लिखी जायगी, और तब अुसमें संस्कृत शब्दोंकी बहुतायत होगी। जब दोनोंके हृदय अेक हो जायेंगे, तब अेक ही भाषाके ये दोनों रूप भी अेक हो जायेंगे। और अुसके अुस सर्व-सामान्य रूपमें संस्कृत, फ़ारसी, अरबी वग़ैराके वे सभी शब्द होंगे, जो अुसके पूर्ण विकास और विचार-प्रकाशनके लिअे आवश्यक होंगे।

परन्तु भिन्न-भिन्न प्रान्तोंकी भाषाओंका अध्ययन करनेमें लोगोंको कठिनाअी न हो, अिसके लिअे ज़रूर ही अेक लिपिके प्रचारका यह अुद्देश्य है कि वह दूसरी तमाम लिपियोंका स्थान ग्रहण कर ले। अिस अुद्देश्यको पूर्ण करनेका सबसे बढ़िया तरीक़ा यह है कि तमाम शालाओंमें हिन्दुओंके लिअे देवनागरी पढ़ना अनिवार्य कर दिया जाय, जैसे कि गुजरातमें किया जाता है, और दूसरे, भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओंका महत्त्वपूर्ण साहित्य देवनागरीमें छापना शुरू कर दिया जाय। कुछ हद तक यह प्रयत्न किया भी गया है। मैंने देवनागरी लिपिमें छपी 'गीतांजलि' देखी है। पर यह प्रयत्न बहुत बड़े पैमाने पर किया जाना चाहिये, और अैसी पुस्तकोंके प्रकाशनके लिअे प्रचार होना चाहिये। यद्यपि मैं जानता हूँ कि हिन्दुओं और मुसलमानोंको अेक-दूसरेके नज़दीक लानेके लिअे विधायक सूचनायें करना वर्त्तमान समयके रंगढंगके प्रतिकूल है, तथापि मैं जिस बातको अिन स्तंभोंमें और अन्यत्र कअी मरतबा कह चुका हूँ, अुसे फिर यहाँ दोहराये बिना नहीं रह सकता कि यदि हिन्दू अपने मुसलमान भाअियोंके निकट आना चाहते हैं, तो अुन्हें अुर्दू पढ़नी ही चाहिये, और हिन्दू भाअियोंके निकट आनेकी अिच्छा रखनेवाले मुसलमानोंको भी हिन्दी ज़रूर सीख लेनी चाहिये। हिन्दू और मुसलमानोंकी सच्ची अेकतामें जिनका विश्वास है, वे पारस्परिक द्वेषके अिन भयंकर दृश्योंको देखकर चिन्तित न हों। यदि अुनका विश्वास सच्चा है, तो वह जहाँ-जहाँ सम्भव होगा वहाँ-वहाँ अुन्हें ज़रूर ही मौक़ा मिलने पर सहिष्णुता, प्रेम और अेक-दूसरेके प्रति सौजन्ययुक्त कार्य करनेके लिअे पहले प्रेरित करेगा। और, अेक-दूसरेकी भाषा सीखना तो

अिस मार्गमें सबसे पहली बात है। क्या हिन्दुओंके लिओ यह अच्छा नहीं कि वे भक्त-हृदय मुसलमानोंके द्वारा अधिकार-युक्त वाणीमें लिखी किताबोंको पढ़ें, और यह जानें कि वे क़ुरान और पैगम्बर साहबके विषयमें क्या लिखते हैं? अुसी प्रकार क्या मुसलमानोंके लिओ भी यह अच्छा नहीं कि अधिकारी भक्त हिन्दुओं द्वारा लिखी धार्मिक पुस्तकोंको पढ़कर वे यह जान लें कि गीता और श्रीकृष्णके बारेमें हिन्दुओंके क्या खयाल हैं, बनिस्बत अिसके कि दोनों पक्ष अुन तमाम खराब बातोंको जानें, जो अेक-दूसरेकी धार्मिक पुस्तकों तथा अुनके प्रवर्त्तकोंके बारेमें अज्ञानियों और तोड़-मरोड़कर बात कहनेवालोंके ज़बानी कही जायँ?*

(हिन्दी-नवजीवन, २१-७-'२७)

---

* यहाँ काँगड़ी गुरुकुलमें हुअी राष्ट्रीय शिक्षण-परिषद्के अध्यक्ष-पदसे दिये गये भाषणके नीचे लिखे विचार भी देखने योग्य हैं:—

"संस्कृत सीखना हरअेक हिन्दुस्तानी विद्यार्थीका कर्तव्य है। हिन्दुओंका तो है ही, मुसलमानोंका भी है; क्योंकि आख़िर अुनके बापदादा भी तो राम और कृष्ण ही थे, जिन्हें पहचाननेके लिये अुन्हें संस्कृत जाननी चाहिये। परन्तु मुसलमानोंके साथ सम्बन्ध रखनेके लिओ अुनकी भाषा सीखना हिन्दुओंका भी फ़र्ज़ है। आज हम अेक-दूसरेकी भाषासे भागे फिरते हैं, क्योंकि हम पागल बन गये हैं। यह निश्चय समझिये कि जो संस्था आपसमें द्वेष और भय रखना सिखलाती है, वह राष्ट्रीय नहीं है।"

(हिन्दी-नवजीवन, ३१-३-'२७)

११

शिक्षामें राष्ट्रभाषाका स्थान

१

"बहुतसी राष्ट्रीय संस्थाओंमें आज भी मातृभाषा और हिन्दी भाषाकी अुपेक्षा की जाती है। बहुतसे शिक्षक भी अभी तक मातृभाषाके या हिन्दुस्तानीके द्वारा पढ़ानेके महत्त्वको समझे नहीं हैं। खुशीकी बात है कि श्री गंगाधरराववने राष्ट्रीय शिक्षामें दिलचस्पी लेनेवालोंकी अेक सभा बुलाअी है . . . . ।"

(बेलगांव कांग्रेसके भाषणसे, हिं० न० जी०, २६-१२-'२४)

२

यह भी समयका ही अेक चिह्न है कि सर टी० विजय राघवाचारियर ट्रिप्लीकेन, मद्रासके हिन्दू हाअीस्कूलमें 'भारतीय शिक्षामें हिन्दीका स्थान' विषय पर भाषण दें! अिससे यह भी सिद्ध होता है कि पिछले सात वर्षोंसे मद्रासमें हिन्दी प्रचार कार्यालय जो प्रचार-कार्य कर रहा है, अुसका असर हो रहा है। वक्ताको यह दिखलानेमें कोअी मुश्किल नहीं हुअी कि हिन्दुस्तानके तीस करोड़ आदमियोंमें १२ करोड़ हिन्दी बोलते हैं, और दूसरे ८ करोड़ अुसे समझ लेते हैं, तथा संसारकी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओंमें हिन्दीका तीसरा स्थान है; और यह बात अिसका काफ़ी सबल कारण है कि सब कोअी हिन्दी सीख लें'। विद्वान् वक्ताका यह खयाल नहीं है कि 'अच्छी हिन्दी सीखनेके लिअे कुल छः महीने काफ़ी होंगे'। अुनका कहना है कि 'भारतीय शिक्षा-प्रणालीमें हिन्दीका आवश्यक स्थान होना चाहिये। स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयोंमें हिन्दी अेक

अनिवार्य विषय होना चाहिये।' अन्तमें अुन्होंने यह कहकर अपना भाषण समाप्त किया — "हम लोग अधीर भावसे अुस दिनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब हम अपनेको पहले हिन्दुस्तानी और बादमें बंगाली या मद्रासी मानेंगे। अगर हम अधिक संख्यामें हिन्दी सीखने लगें — और अिस सम्बन्धमें हम मद्रासियोंका क़सूर सबसे बड़ा है — तो वह दिन और भी जल्द आयेगा।" हिन्दी-प्रचार-कार्यालय दक्षिणवालोंको हिन्दी सीखनेकी सभी सुविधायें देता है। अगर सचमुच ही हमें हिन्दुस्तानके लिअे वैसा प्यार हो, जैसा अपने-अपने प्रान्तोंके लिअे है, तो हम बहुत जल्दी हिन्दी सीख लेंगे, और अपनी लोकप्रिय सभा यानी कांग्रेसकी महासमितिमें यह भद्दा दृश्य फिर कभी अुपस्थित न होने देंगे कि वहाँ अुसकी पूरी नहीं, तो अधिकतर कारंवाअी अंग्रेज़ीमें ही होती रहे। जो बात मैंने अनेक बार कही है, अुसे यहाँ फिर दोहराता हूँ कि मैं हिन्दीके ज़रिये प्रान्तीय भाषाओंको दबाना नहीं चाहता, किन्तु अुनके साथ हिन्दीको भी मिला देना चाहता हूँ, जिससे अेक प्रान्त दूसरेके साथ अपना सजीव सम्बन्ध जोड़ सके। अिससे प्रान्तीय भाषाओंके साथ हिन्दीकी भी श्री-वृद्धि होगी।

(नवजीवन, २३-८-'२८)

१२

कराची महासभाका प्रस्ताव

१

[कराची कांग्रेसने स्वराज्यमें नागरिकोंके बुनियादी हक़ोंका ज़िक्र करने-वाला जो प्रस्ताव पास किया था, अुसमें से संस्कृति, धर्म, भाषा, लिपि वग़ैरासे ताल्लुक़ रखनेवाला हिस्सा नीचे दिया गया है।]

"अिस महासभाकी राय है कि महासभाकी कल्पनाके स्वराज्यका आम रिआयाके लिअे क्या अर्थ होगा, अिस बातका अुसे ख़याल हो सके, अिसके लिअे महासभाकी स्थितिका बयान अैसे ढंगसे करना ज़रूरी है, जिसे लोग आसानीसे समझ सकें। अिसलिअे महासभा यह घोषणा करती है कि अुसकी ओरसे जो कोअी भी शासन-विधान क़बूल किया जाय, अुसमें अितनी बातोंका समावेश होना चाहिये अथवा स्वराज्य-सरकारको अुसका अमल करनेकी शक्ति मिलनी चाहिये :—

१. प्रजाके मौलिक स्वत्त्व, जिनमें नीचे लिखे होने ही चाहियें :—

(क) अन्तरात्माका अनुसरण करनेकी और सार्वजनिक अमन-क़ानून और सदाचारमें बाधक न होनेवाले धार्मिक विश्वास और आचरणकी स्वतंत्रता।

(ख) अल्पमतवाली क़ौमोंकी संस्कृति, भाषा और लिपियोंकी रक्षा।

(ग) किसी भी नागरिकको अुसके धर्म, जाति-पाँति, विश्वास या लिंग-भेदके कारण सार्वजनिक नौकरीमें, सत्ता या सम्मानके पदोंमें, और किसी भी व्यापार अथवा धन्धेमें किसी प्रकारकी रुकावटका अभाव।

२. धर्मके विषयमें सरकारकी निष्पक्षता।"

२

[अिस प्रस्ताव पर बोलते हुअे गांधीजीने अूपर दिये गये विषयोंका नीचे लिखे मुताबिक़ ज़िक्र किया था :]

अिस प्रस्तावमें कहा है कि अल्पमतवाली क़ौमकी भाषा और लिपिकी रक्षा की जायगी । मुसलमान मानते हैं कि अुनकी सभ्यता कुछ निराली है, यद्यपि मेरी निगाहमें तो हिन्दी और अुर्दू दोनों सभ्यतायें समान हैं। क़ुरान और महाभारतमें मुझे तो जुदा-जुदा चीज़ नहीं मिलती, अेक ही चीज़ मिलती है। पर चूंकि मुसलमान अपनी तहज़ीबको निराली चीज़ मानते हैं, अिसलिअे हम सहिष्णुता सीखें, आत्म-निरीक्षण सीखें, यानी हम मुसलमानोंकी खातिर अुर्दू सीखनेका प्रयत्न करें, लिपि भी जानें । स्वराज्य मिलने पर जब हम अिसका क़ानून बनावें, तब यह स्वाभाविक हो जाय, अिसके लिअे आज ही अिस बातको हम अपने दिलमें समझ लें।

(नवजीवन, ५-४-'३१)

१३

दक्षिणमें हिन्दी-प्रचार

तामिलनाड़ परिषद्के साथ ही हिन्दी-प्रचार-परिषद्का भी होना अेक सुलक्षण था । दक्षिण-भारतके लोगोंने अगले साल अैसे प्रतिनिधि भेजनेका वादा किया है, जो हिन्दी बोल और समझ सकते हैं। अगर हम बनावटी वातावरणमें न रहते होते, तो दक्षिणवासी लोगोंको न तो हिन्दी सीखनेमें कोअी कष्ट मालूम होता, और न व्यर्थताका अनुभव ही होता। हिन्दी-भाषी लोगोंको दक्षिणकी भाषा सीखनेकी जितनी ज़रूरत है, अुसकी अपेक्षा दक्षिणवालोंको हिन्दी सीखनेकी आवश्यकता अवश्य ही अधिक है। सारे हिन्दुस्तानमें हिन्दी बोलने और समझनेवालोंकी संख्या दक्षिणकी

भाषा बोलनेवालोंसे दुगुनी है। प्रान्तीय भाषा या भाषाओंके बदलेमें नहीं, बल्कि अुनके अलावा, अेक प्रान्तका दूसरे प्रान्तसे सम्बन्ध जोड़नेके लिअे अेक सर्व-सामान्य भाषाकी आवश्यकता है। अैसी भाषा तो हिन्दी या हिन्दुस्तानी ही हो सकती है। कुछ लोग, जो अपने मनसे सर्व-साधारणका खयाल ही भुला देते हैं, अंग्रेजीको हिन्दीकी बराबरीसे चलनेवाली ही नहीं, बल्कि अेकमात्र शक्य राष्ट्रभाषा मानते हैं। परदेशी जुअेकी मोहिनी न होती, तो अिस बातकी कोअी कल्पना भी न करता। दक्षिण-भारतकी सर्व-साधारण जनताके लिअे, जिसे राष्ट्रीय कार्यमें ज्यादा-से-ज्यादा हाथ बँटाना होगा, कौनसी भाषा सीखना आसान है — जिस भाषामें अपनी भाषाओंके बहुतेरे शब्द अेकसे हैं, और जो अुन्हें अेकदम लगभग सारे अुत्तरीय हिन्दुस्तानके सम्पर्कमें लाती है वह हिन्दी, या मुट्ठीभर लोगों द्वारा बोली जानेवाली सब तरह विदेशी अंग्रेजी? अिस पसन्दका सच्चा आधार मनुष्यकी स्वराज्य-विषयक कल्पना पर निर्भर है। अगर स्वराज्य अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीयोंका, अुन्हींके लिअे होनेवाला हो, तो निस्सन्देह अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी। लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भूखों मरनेवालों, करोड़ों निरक्षरों, निरक्षर बहनों और दलितों व अन्त्यजोंका हो, और अिन सबके लिअे होनेवाला हो, तो हिन्दी ही अेकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है। अिसलिअे मेरे साथ जो विचार करनेवाले हैं, वे पिछले बारह वर्षोंके व्यवस्थित प्रचार-कार्यके फलस्वरूप हिन्दीने जो महान् प्रगति की है, अुसकी रिपोर्टका स्वागत ही करेंगे —

हिन्दी सीखना शुरू करनेवाले	४,००,०००
हिन्दीका काम-चलाअू ज्ञान प्राप्त करनेवाले	२,५०,०००
हिन्दीकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होनेवाले	११,०००
परीक्षाओंमें पास होनेवाले	१०,०००
हिन्दी-प्रचार-सभाके छापाखानेमें छापी गअी पाठ्य-पुस्तकें	३,००,०००
अिनमें से बिकी हुअी पुस्तकें	२,५०,०००

प्रकाशित पुस्तकोंके प्रकार	३५
(अिन सब पुस्तकोंके अनेक और अिनमें से अेकके १२ संस्करण हो चुके हैं)	
वे केन्द्र, जहाँ आज तक हिन्दी सिखाअी गअी है	४००
आजकल चालू केन्द्र (कुल)	१५०
सीधी देख-रेखमें चलनेवाले केन्द्र	२५
फरवरी १९३० में जिन केन्द्रोंमें परीक्षा ली गअी	११३
शिक्षा-प्राप्त शिक्षक	२५०
आज तक अेकत्र किया हुआ और खर्च किया गया द्रव्य	रु० २,५०,०००
अुत्तर-भारतसे प्राप्त	रु० १,५५,०००
दक्षिण-भारतसे प्राप्त	रु० ९५,०००

हम आशा रखें कि वर्तमान मंगलवर्षमें अिस प्रगतिका वेग और भी बढ़ेगा, और अिसके लिअे आवश्यक तमाम धन दक्षिणसे ही मिल जायगा। राष्ट्रभाषा सीखने और भारतवर्षको अखण्ड तथा अेकरूप बनानेके लिअे दक्षिण भारतकी अुत्कण्ठाकी यह अेक कसौटी होगी।

(नवजीवन, २१-६-'३१)

१४

अगला क़दम

[सन् १९१८ में अिन्दौरके हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके ८वें अधिवेशनके बाद गांधीजीने दक्षिण-भारतमें राष्ट्रभाषा-प्रचारका काम शुरू किया। अूपरके लेखसे हमें अुसके अुत्तम फलोंका कुछ परिचय मिला। ता० २०-४-'३५ को अिन्दौरमें सम्मेलनका २४वां अधिवेशन हुआ, और गांधीजी दूसरी बार अुसके सभापति बने। सभापतिके नाते अुन्होंने अपने भाषणमें आगेके कामकी रूपरेखा पेश की। १९१८की तरह १९३५में राष्ट्रभाषा-प्रचारके कामका अेक नया अध्याय शुरू हुआ। सभापति-पदसे दिया गया गांधीजीका समूचा भाषण अिसीका सूचक है।]

अीश्वरकी गति गहन है। अक्तूबर माससे मैं अिस बोझको टाल रहा था। यह पद पूजनीय मालवीयजी महाराजका था। पर अुनका स्वास्थ्य बिगड़ जानेके कारण, और चूंकि अुनको विदेश जाना था अिसलिअे, अुन्होंने त्याग-पत्र भेजा। दूसरा सभापति चुननेमें आपको कुछ मुसीबत थी। मेरा नाम तो स्वागत-समितिके सामने था ही। मुझको जब स्वागत-समितिका संकट बताया गया, तो मैं विवश हो गया और पद-ग्रहण करना स्वीकार कर लिया।

स्वीकृति देनेका मेरे लिअे अन्य कारण तो था ही। गत वर्ष मेरे पास अिस अधिवेशनके सभापतित्वका प्रस्ताव आया, तब मैंने दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचारके लिअे दो लाख रुपये मांगे। भला आजकल दो लाख अिस कामके लिअे कौन दे? — 'हां, हम प्रयत्न करेंगे। आपके पद स्वीकार करनेसे सफल होंगे' — समितिकी अैसी बातोंमें फँस जाअूं, अैसा भोला मैं कब था? मैंने तो दो लाखकी गारण्टी मांगी। मैंने समझा कि अिस पर मित्रोंने मुझे छोड़ दिया।

लेकिन ीश्वरको दूसरी ही बात करनी थी। ुसे मेरी मारफ़त हिन्दी-प्रचारकी कुछ ौर सेवा लेनी थी। मालवीयजी महाराज न आ सके। ुनको ीश्वर शतायु करे। मैंने आपके अधिवेशनोंकी रिपोर्ट कुछ अंशोंमें देखी है। सबसे पहला अधिवेशन सन् १९१० में हुआ था। ुसके सभापति मालवीयजी महाराज ही थे। ुनसे बढ़कर हिन्दी-प्रेमी भारतवर्षमें हमें कहीं नहीं मिलेंगे। कैसा अच्छा होता, यदि वे आज भी िस पद पर होते। ुनका हिन्दी-प्रचार-क्षेत्र भारतव्यापी है; ुनका हिन्दी ज्ञान ुत्कृष्ट है।

मेरा क्षेत्र बहुत मर्यादित है। मेरा हिन्दी भाषाका ज्ञान नहींके बराबर है। आपकी प्रथमा परीक्षामें मैं ुत्तीर्ण नहीं हो सकता हूँ। लेकिन हिन्दी भाषाका मेरा प्रेम किसीसे कम नहीं ठहर सकता है। मेरा क्षेत्र दक्षिणमें हिन्दी-प्रचार है। सन् १९१८ में जब आपका अधिवेशन यहाँ हुआ था, तबसे दक्षिणमें हिन्दी-प्रचारके कार्यका आरम्भ हुआ है। वह कार्य तबसे ुत्तरोत्तर बढ़ ही रहा है। धनाभावके कारण वह रुकना नहीं चाहिये। पं० हरिहर शर्मा धनके लिे मुझे नित्य सताते हैं। ुनसे मैं कहता हूँ कि 'अब मुझे मत सताओ। दक्षिणसे ही आपको पैसे मिलने चाहियें। ितना भी करनेकी शक्ति यदि आपमें नहीं है, तो आप अपना प्रयत्न निष्फल समझिये।' कहनेको तो मैं यह कह देता हूँ; पर ितनी बड़ी संस्थाको २१ वर्ष तक नाबालिग़ रहनेका भी तो हक़ होना चाहिये। िसलिे जब मौक़ा आया, तब मैंने दो लाखकी माँग की। ितना द्रव्य अधिक भी नहीं है। लेकिन जो सज्जन मेरे पास आये, ुन्होंने रुीके दाम ेकदम गिर जानेसे दो लाखके लिे अपनी असमर्थता प्रगट की। बात भी ठीक थी। जमनालालजीने भी ुन भाियोंका पक्ष लिया। मैंने भी हार मान ली, ौर ेक लाखकी शर्त्त क़बूल कर ली। अब किसी-न-किसी तरहसे, पर सचाीके साथ, आपको मुझे ेक लाख देना है।

आप पूछ सकते हैं कि केवल दक्षिण ही में हिन्दी प्रचारके लिअे क्यों? मेरा अुत्तर यह है कि दक्षिण-भारत कोअी छोटा मुल्क नहीं है। वह तो अेक महाद्वीप-सा है। वहाँ चार प्रान्त और चार भाषायें हैं— तामिल, तेलगू, मलयाली और कानड़ी। आबादी क़रीब सवा सात करोड़ है। अितने लोगोंमें यदि हम हिन्दी-प्रचारकी नींव मज़बूत कर सकें, तो अन्य प्रान्तोंमें बहुत ही सुभीता हो जायगा।

यद्यपि मैं अिन भाषाओंको संस्कृतकी पुत्रियाँ मानता हूँ, तो भी ये हिन्दी, अुड़िया, बँगला, आसामी, पंजाबी, सिन्धी, मराठी, गुजरातीसे भिन्न हैं। अिनका व्याकरण हिन्दीसे बिलकुल भिन्न है। अिनको संस्कृतकी पुत्रियाँ कहनेसे मेरा अभिप्राय अितना ही है कि अिन सबमें संस्कृत शब्द काफ़ी हैं, और जब संकट आ पड़ता है, तब ये संस्कृत-माताको पुकारती हैं, और नये शब्दोंके रूपमें अुसका दूध पीती हैं। प्राचीन कालमें भले ये स्वतंत्र भाषायें रही हों, पर अब तो ये संस्कृतसे शब्द लेकर अपना गौरव बढ़ा रही हैं। अिसके अतिरिक्त और भी तो कअी कारण अिनको संस्कृतकी पुत्रियाँ कहनेके हैं। पर अुन्हें अिस समय जाने दीजिये।

दक्षिणमें हिन्दी-प्रचार सबसे कठिन कार्य है। तथापि अठारह वर्षोंसे हम व्यवस्थित रूपमें वहाँ जो कार्य करते आये हैं, अुसके फलस्वरूप अिन वर्षोंमें छः लाख दक्षिणवासियोंने हिन्दीमें प्रवेश किया। ४२,००० परीक्षामें बैठे, ३२०० स्थानोंमें शिक्षा दी गअी, ६०० शिक्षक तैयार हुअे, और आज ४५० स्थानोंमें कार्य हो रहा है। सन् १९३१ से स्नातक परीक्षाका भी आरम्भ हुआ, और आज स्नातकोंकी संख्या ३०० है। वहाँ हिन्दीकी ७० किताबें तैयार हुअीं, और मद्रासमें अुनकी आठ लाख प्रतियाँ छपीं। सत्रह वर्ष पूर्व दक्षिणके अेक भी हाअीस्कूलमें हिन्दीकी पढ़ाअी नहीं होती थी, पर आज सत्तर हाअीस्कूलोंमें हिन्दी पढ़ाअी जाती है। सब मिलाकर वहाँ ७० कार्यकर्ता काम कर रहे हैं, और आज तक अिस प्रयत्नमें चार लाख रुपया ख़र्च हुआ है, जिसमें से आत्रेसे कुछ

कम रुपये दक्षिणमें ही मिले हैं। यहाँ अेक और बात कह देना जरूरी है। काका साहब अपने निरीक्षणके बाद कहते हैं कि दक्षिणमें बहनोंने हिन्दी-प्रचारके लिअे बहुत काम किया है। वे अिसकी महिमा समझ गअी हैं। वे यहाँ तक हिस्सा ले रही हैं कि कुछ पुरुषोंको यह फ़िक्र लग रही है कि यदि स्त्रियाँ अिस तरह अुद्यमी बनेंगी, तो घर कौन सँभालेगा?

क्या अितनी प्रगति सन्तोषजनक नहीं मानी जा सकती? क्या अैसे वृक्षको हमें और भी न बढ़ाना चाहिये? आज जब कि मुझे यह स्थान दिया गया है, तब भी मैं अिस संस्थाको चिरस्थायी बनानेका यत्न न करूँ, तो मेरे-जैसा मूर्ख कौन माना जा सकता है? मुझको दुबारा यह पद लेनेका कुछ भी अधिकार है, तो सिर्फ मेरे दक्षिण-हिन्दी-प्रचारके कारण ही। भले ही अुस कार्यमें मैंने कोअी पद लेकर काम न किया हो; पर हर हालतमें अुस वृक्षको सींचनेमें तो मैंने काफ़ी हिस्सा लिया ही है। अुसके संरक्षक श्री जमनालाल बजाज, श्री राजगोपालाचारी, श्री रामनाथ गोयनका, श्री पट्टाभि सीतारामैया और श्री हरिहर शर्मा हैं। अुसका कौड़ी-कौड़ीका हिसाब रखा गया है, जो समय-समय पर प्रकाशित होता रहता है।

मैंने आपको अिस संस्थाका अुज्ज्वल पक्ष ही दिखाया है। अिसका यह मतलब नहीं है कि अिसका काला पक्ष है ही नहीं।

"जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुण गहहि पय, परिहरि वारि-विकार॥"

निष्फलता भी काफ़ी हुअी है। सब कार्यकर्त्ता अच्छे ही निकले, अैसा भी नहीं कहा जा सकता। यदि सब कार्य आरंभसे अन्त तक अच्छा ही रहता, तो अवश्य ही और भी सुन्दर परिणाम आ सकता था। पर अितना तो कहा ही जा सकता है कि यदि अन्य प्रान्तोंके हिन्दी-प्रचारसे अिसकी तुलना की जाय, तो यह काम अद्वितीय ठहरेगा।

रही अेक लाखके व्ययकी बात। क्या यह व्यय सम्मेलनके प्रयागस्थ केन्द्रसे होना आवश्यक नहीं है ? यदि अैसा न किया गया, तो क्या अिससे सम्मेलनका अपमान नहीं होगा? — अिन प्रश्नोंके अुत्तरमें मेरा नम्र निवेदन यह है कि अिसमें अपमानकी कोअी बात नहीं है। सम्मेलन न होता, तो दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार-सभा भी न होती। सन् १९१८ में अिसी शहरमें, अिसी सम्मेलनकी छायामें, अिस संस्थाका अुद्भव हुआ। बादके अितिहासमें जाना अनावश्यक है। अंतमें अिस संस्थाको सम्मेलनने स्वतंत्र कर दिया, या यों कहिये कि 'डोमीनियन स्टेटस' दे दिया। अिससे सम्मेलनका गौरव बढ़ा ही है, कम नहीं हुआ। यदि सम्मेलनसे सम्बन्वित सब संस्थायें स्वावलम्बी बन जायें, तो अिससे ज्यादा हर्षकी बात सम्मेलनके लिअे कौनसी हो सकती है ? आपसे जो अेक लाख रुपयेकी भिक्षा मांगी जा रही है, वह अिस स्वतंत्र संस्थाके लिअे है। अुसको भी झण्डा तो सम्मेलनका ही फहराना है!

पर तब यह प्रश्न अुठ सकता है कि क्या अन्य प्रान्तोंकी बात छोड़ दी जाय? क्या अन्य प्रान्तोंमें हिन्दी-प्रचारकी आवश्यकता नहीं है? अवश्य है। मुझे दक्षिणका पक्षपात नहीं है, और न अन्य प्रान्तोंसे द्वेष! मैंने अन्य प्रान्तोंके लिअे भी काफ़ी प्रयत्न किया है; लेकिन कार्यकर्ताओंके अभावके कारण वहाँ अितनी क्या, थोड़ी भी सफलता नहीं मिल सकी। बेचारे बाबा राघवदास अुत्कल, बंगाल और आसाममें हिन्दी-प्रचारके लिअे अधिक प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ सफलता भी मिली है, लेकिन अुसे नहींके बराबर ही मानना चाहिये। जो कुछ भी सहायता मैं अुनको दिला सकता था, वह दिलानेकी चेष्टा भी मैंने की है। बाबाजीकी मारफ़त आसाममें गोहाटी, जोरहट, शिवसागर और नौगांवमें प्रयत्न हो रहा है। वहाँ १६० विद्यार्थी पढ़ रहे हैं। दो छात्रों और दो छात्राओंको छात्रवृत्ति देकर काशी-विद्यापीठ और प्रयाग-महिला-विद्यापीठमें पढ़ाया जा रहा है। अेक आसामी भाअी बरहज (गोरखपुर) में हिन्दी पढ़ रहे हैं, और वहांवालोंको आसामी पढ़ा रहे हैं। आसामके प्रतिष्ठित लोग अिस प्रचार-कार्यमें कम

रस लेते हैं। जो मदद बावाजीको मिली भी है, वह अेक ही वर्षके लिये है।

अुत्कलमें कटक, पुरी और वरहमपुरमें कुछ प्रयत्न हो रहा है। अुत्कलके बारेमें अेक बड़ी आशाजनक बात यह है कि श्री गोपबन्धु चौधरी और अुनकी धर्मपत्नी श्री रमादेवी हिन्दी-प्रचारमें बहुत दिलचस्पी लेती हैं। अपने परिवारको भी अुन्होंने हिन्दीका काफ़ी ज्ञान प्राप्त करा दिया है। वे सब आजकल अेक देहातमें रहते हुअे अैसी ही क्रियात्मक सेवा कर रहे हैं। अैसे ही कुछ दूसरे भी त्यागी कार्यकर्त्ता अुत्कलमें हैं। अिसलिअे अुत्कलमें हिन्दी-प्रचारकी आशा अवश्य रखी जा सकती है।

बंगालमें तो अेक समिति भी बन गअी थी, सब कुछ हुआ था, हिन्दी पर प्रेम रखनेवाले बंगाली भी काफ़ी हैं। श्री रामानन्द बाबू श्री बनारसीदास चतुर्वेदीकी मददसे 'विशाल भारत' निकाल रहे हैं। यह कोअी छोटी बात नहीं है। कलकत्तेमें हिंदी-प्रेमी मारवाड़ी सज्जन भी कम नहीं हैं। तो भी बंगालमें जितना कुछ हो रहा है, वह बहुत ही कम समझा जाना चाहिये।

पंजाबकी बात मैं छोड़ देता हूँ, क्योंकि पंजाबमें तो अुर्दू सब समझते हैं। वहाँ तो केवल लिपिकी बात रह जाती है। अिस प्रश्न पर विचार करनेके लिअे काका साहबकी अध्यक्षतामें लिपि-परिषद् हो रही है, अिसलिअे मैं अिस बारेमें कुछ नहीं कहना चाहता। अब रहे सिन्ध, महाराष्ट्र, और गुजरात। अिन तीनों प्रान्तोंमें जो कुछ हो रहा है, वह शायद ही अुल्लेख-योग्य हो। पर मुझे अुम्मीद है कि अिस सम्मेलनमें हम वहाँके लिअे भी कुछ-न-कुछ रचनात्मक कार्य करनेका निश्चय करेंगे।

सारी मुश्किल तो यह है कि सम्मेलनके अुद्देश्योंमें तो अन्य प्रान्तोंमें हिन्दी-प्रचार खासा स्थान रखता है, लेकिन मेरा यह कहना अनुचित न होगा कि सम्मेलनने अिस प्रचार-कार्य पर अुतना ज़ोर नहीं दिया है, जितना कि परीक्षाओं पर। मेरा निवेदन है कि अिस सम्मेलनमें हम

अिस बारेमें ध्यानपूर्वक विचार करके अिस सम्बन्धमें कोअी स्पष्ट नीति ग्रहण करें।

मेरी रायमें अन्य प्रान्तोंमें हिन्दी-प्रचार सम्मेलनका मुख्य कार्य बनना चाहिये। यदि हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनाना है, तो प्रचार-कार्य सर्वव्यापी और सुसंगठित होना ही चाहिये। हमारे यहाँ शिक्षकोंका अभाव है। सम्मेलनके केन्द्रमें हिन्दी-शिक्षकोंके लिअे अेक विद्यालय होना चाहिये, जिसमें अेक ओर तो हिन्दी प्रान्तवासी शिक्षक तैयार किये जायें, और अुनको जिन प्रान्तके लिअे वे तैयार होना चाहें, अुस प्रान्तकी भाषा सिखाअी जाय, और दूसरी ओर अन्य प्रान्तोंके भी छात्रोंको भरती करके अुन्हें हिन्दीकी शिक्षा दी जाय। अैसा प्रयास दक्षिणके लिअे तो किया भी गया था, जिसके फलस्वरूप हमको पं० हरिहर शर्मा और हृषीकेश मिले।

आप जानते हैं कि मेरी सलाहसे काका साहब कालेलकर दक्षिणमें प्रचार-कार्यका निरीक्षण करने और पं० हरिहर शर्माको मदद देनेके लिअे गये थे। अुन्होंने तामिलनाड़, मलाबार, त्रावणकोर, मैसूर, आन्ध्र और अुत्कल तक भ्रमण किया। हिन्दी प्रेमियोंसे मिले, और कुछ चन्दा भी अिकट्ठा किया। अिस भ्रमणमें अुनका अनुभव यह हुआ कि कुछ लोग अैसा समझते हैं कि हम प्रान्तीय भाषाओंको नष्ट करके हिंदीको सारे भारतवर्षकी अेकमात्र भाषा बनाना चाहते हैं। जिन ग़लतफ़हमीसे भ्रमित होकर वे हमारे प्रचारका विरोध करते हैं। मेरा खयाल है कि हमें अिस बारेमें अपनी नीति स्पष्ट करके अैसी ग़लतफ़हमियाँ दूर करनी चाहियें। मैं हमेशासे यह मानता रहा हूँ कि हम किसी हालतमें भी प्रान्तीय भाषाओंको मिटाना नहीं चाहते। हमारा मतलब तो सिर्फ़ यह है कि विभिन्न प्रान्तोंके पारस्परिक सम्बन्धके लिअे हम हिंदी भाषा सीखें। अैसा कहनेसे हिन्दीके प्रति हमारा कोअी पक्षपात नहीं प्रगट होता। हिन्दीको हम राष्ट्र-भाषा मानते हैं। यह राष्ट्रीय होनेके लायक़ है। वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है, जिसे अधिक-संख्यक लोग जानते-बोलते हों, और जो सीखनेमें

सुगम हो। अैसी भाषा हिन्दी ही है, यह बात यह सम्मेलन सन् १९१० से कहता रहा है, और अिसका कोअी वज़न देने लायक़ विरोध आज तक सुननेमें नहीं आया है। अन्य प्रान्तोंने भी अिस बातको स्वीकार कर ही लिया है।

काका साहबने कुछ लोगोंमें दूसरी ग़लतफ़हमी यह देखी कि वे समझते हैं कि हम हिन्दीको अंग्रेज़ी भाषाका स्थान देना चाहते हैं। कुछ तो यहाँ तक समझते हैं कि अंग्रेज़ी ही राष्ट्रभाषा बन सकती है, और बन भी गअी है।

यदि हिन्दी अंग्रेज़ीका स्थान ले, तो कम-से-कम मुझे तो अच्छा ही लगेगा। लेकिन अंग्रेज़ी भाषाके महत्वको हम अच्छी तरह जानते हैं। आधुनिक ज्ञानकी प्राप्ति, आधुनिक साहित्यके अध्ययन, सारे जगत्के परिचय, अर्थ-प्राप्ति, राज्याधिकारियोंके साथ सम्पर्क रखने और अैसे ही अन्य कार्योंके लिअे हमें अंग्रेज़ी ज्ञानकी आवश्यकता है। अिच्छा न रहते हुअे भी हमको अंग्रेज़ी पढ़नी होगी। यही हो भी रहा है। अंग्रेज़ी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है।

लेकिन अंग्रेज़ी राष्ट्रभाषा कभी नहीं बन सकती। आज अुसका साम्राज्य-सा ज़रूर दिखाअी देता है। अिससे बचनेके लिअे काफ़ी प्रयत्न करते हुअे भी हमारे राष्ट्रीय कार्योंमें अंग्रेज़ीने बहुत स्थान ले रखा है। लेकिन अिससे हमें अिस भ्रममें कभी न पड़ना चाहिये कि अंग्रेज़ी राष्ट्रभाषा बन रही है। अिसकी परीक्षा प्रत्येक प्रान्तमें हम आसानीसे कर सकते हैं। बंगाल अथवा दक्षिण-भारतको ही लीजिये, जहाँ अंग्रेज़ीका प्रभाव सबसे अधिक है। यदि वहाँ जनताकी मारफ़त हम कुछ भी काम करना चाहते हैं, तो वह आज हिन्दी द्वारा भले ही न कर सकें, पर अंग्रेज़ी द्वारा तो कर ही नहीं सकते। हिन्दीके दो-चार शब्दोंसे हम अपना भाव कुछ तो प्रगट कर ही देंगे। पर अंग्रेज़ीसे तो अितना भी नहीं कर सकते। हाँ, यह अवश्य माना जा सकता है कि अब तक हमारे यहाँ अेक भी राष्ट्रभाषा नहीं बन पाअी है। अंग्रेज़ी राजभाषा है। अैसा

होना स्वाभाविक भी है। अंग्रेज़ीका जिससे आगे बढ़ना मैं असम्भव समझता हूँ, चाहे कितना भी प्रयत्न क्यों न किया जाय। अगर हिन्दुस्तानको सचमुच अेक राष्ट्र बनाना है, तो चाहे कोअी माने या न माने, राष्ट्रभाषा तो हिन्दी ही बन सकती है। क्योंकि जो स्थान हिन्दीको प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषाको कभी नहीं मिल सकता। हिन्दू-मुसलमान दोनोंको मिलाकर क़रीब बाअीस करोड़ मनुष्योंकी भाषा थोड़े बहुत फेरफारसे हिन्दी-हिन्दुस्तानी ही है। अिसलिअे अुचित और सम्भव तो यही है कि प्रत्येक प्रान्तमें अुस प्रान्तकी भाषा, सारे देशके पारस्परिक व्यवहारके लिअे हिन्दी, और अन्तर्राष्ट्रीय अुपयोगके लिअे अंग्रेज़ीका व्यवहार हो। हिन्दी बोलनेवालोंकी संख्या करोड़ोंकी रहेगी, किन्तु अंग्रेज़ी बोलनेवालोंकी संख्या कुछ लाखसे आगे कभी नहीं बढ़ सकेगी। अिसका प्रयत्न भी करना जनताके साथ अन्याय करना होगा।

मैंने अभी 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' शब्दका प्रयोग किया है। सन् १९१८ में जब आपने मुझको यही पद दिया था, तब भी मैंने यही कहा था कि हिन्दी अुस भाषाका नाम है, जिसे हिन्दू और मुसलमान क़ुदरती तौर पर बग़ैर प्रयत्नके बोलते हैं। हिन्दुस्तानी और अुर्दूमें कोअी फ़र्क नहीं है। देवनागरी लिपिमें लिखी जाने पर वह हिन्दी और अरबीमें लिखी जाने पर अुर्दू कही जाती है। जो लेखक या व्याख्यानदाता चुन-चुनकर संस्कृत या अरबी-फ़ारसीके शब्दोंका ही प्रयोग करता है, वह देशका अहित करता है। हमारी राष्ट्रभाषामें वे सब प्रकारके शब्द आने चाहियें, जो जनतामें प्रचलित हो गये हैं। हर व्यापक भाषामें यह शक्ति रहती ही है। अिसीलिअे तो वह व्यापक बनती है। अंग्रेज़ीने क्या नहीं लिया है? लैटिन और ग्रीकसे कितने ही मुहावरे अंग्रेज़ीमें लिये गये हैं। आधुनिक भाषाओंको भी वे लोग नहीं छोड़ते। अिस बारेमें अुनकी निष्पक्षता सराहनीय है। हिन्दुस्तानी शब्द अंग्रेज़ीमें काफ़ी आ गये हैं। कुछ अफ्रीकासे भी लिये गये हैं। अिसमें अुनका 'फ्री ट्रेड' कायम ही है। पर मेरे यह सब कहनेका मतलब यह नहीं है कि बग़ैर अवसरके भी

हम दूसरी भाषाओंके शब्द लें, जैसा कि आजकल अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे युवक किया करते हैं। अिस व्यापारमें विवेक-दृष्टि तो रखनी ही होगी। हम कंगाल नहीं हैं, पर कंजूस भी नहीं बनेंगे। क़ुरसीको खुशीसे क़ुरसी कहेंगे, अुसके लिअे 'चतुष्पाद पीठ' शब्दका प्रयोग नहीं करेंगे।

अिस मौक़े पर अपने दुःखकी भी कुछ कहानी कह दूं। हिन्दी-भाषा राष्ट्रभाषा बने या न बने, मैं अुसे छोड़ नहीं सकता। तुलसीदासका पुजारी होनेके कारण हिन्दी पर मेरा मोह रहेगा ही। लेकिन हिन्दी बोलने-वालोंमें रवीन्द्रनाथ कहाँ हैं? प्रफुल्लचंद्र राय कहाँ हैं? अैसे और भी नाम मैं बता सकता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी अथवा मेरे-जैसे हज़ारोंकी अिच्छामात्रसे ही अैसे व्यक्ति थोड़े ही पैदा होनेवाले हैं। लेकिन जिस भाषाको राष्ट्रभाषा बनना है, अुसमें अैसे महान् व्यक्तियोंके होनेकी आशा रखी ही जायगी।

वर्धामें हमारे यहाँ कन्या-आश्रम है। वहाँ सम्मेलनकी परीक्षाके लिअे कअी लड़कियाँ तैयार हो रही हैं। शिक्षक-वर्ग और लड़कियाँ भी शिकायत करती हैं कि जो पाठ्य-पुस्तकें नियत की गअी हैं, अुनमें से सब पढ़ने लायक़ नहीं हैं। शिकायतके लायक़ पुस्तकें शृंगार रससे भरी हैं। हिन्दीमें शृंगार-साहित्य काफ़ी है। अिस ओर कुछ वर्ष पूर्व श्री बनारसीदास चतुर्वेदीने मेरा ध्यान खींचा था। जिस भाषाको हम राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं, अुसका साहित्य स्वच्छ, तेजस्वी और अुच्चगामी होना चाहिये। हिन्दी भाषामें आजकल गन्दे साहित्यका काफ़ी प्रचार हो रहा है। पत्र-पत्रिकाओंके संचालक अिस बारेमें असावधान रहते हैं, अथवा गन्दगीको पुष्टि देते हैं। मेरी रायमें सम्मेलनको अिस विषयमें अुदासीन न रहना चाहिये। सम्मेलनकी तरफ़से अच्छे लेखकोंको प्रोत्साहन मिलना चाहिये। लोगोंको सम्मेलनकी तरफ़से पुस्तकोंके चुनावमें भी कुछ सहायता मिलनी चाहिये। अिस कार्यमें कठिनाअी अवश्य है, लेकिन कठिनाअीसे हम थोड़े ही भाग सकते हैं।

परीक्षाओंकी पाठ्य-पुस्तकोंमें से अेक पुस्तकके बारेमें अेक मुसलमानकी भी, जो देवनागरी लिपि अच्छी तरह जानते हैं, शिकायत है। अुसमें मुगल बादशाहके लिअे भली-बुरी बातें हैं। वे सब अैतिहासिक भी नहीं हैं। मेरा नम्र निवेदन है कि पाठ्य-पुस्तकोंका चुनाव सूक्ष्म विवेकके साथ होना चाहिये, और अुसमें राष्ट्रीय दृष्टि रहनी चाहिये, और पाठ्य-क्रम भी आधुनिक आवश्यकताओंको खयालमें रखकर निश्चित करना चाहिये। मैं जानता हूँ कि मेरा यह सब कहना मेरे क्षेत्रके बाहर है। लेकिन मेरे पास जो शिकायतें आअी हैं, अुन्हें आपके सामने रखना मैंने अपना धर्म समझा।

१५

दो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव

अिन्दौरके अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें कुछ खास अुपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुअे। अेकमें तो हिन्दी भाषाकी परिभाषा बताअी गअी है, और दूसरेमें यह मत प्रकट किया गया है कि अुन समस्त भाषाओंको देवनागरी लिपिमें ही लिखना चाहिये, जो या तो संस्कृतसे निकली हैं या संस्कृतका जिनके अूपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। पहला प्रस्ताव अिस तथ्य पर जोर देता है कि हिन्दी प्रान्तीय भाषाओंको नष्ट नहीं करना चाहती, किन्तु अुनकी पूर्तिरूप बनना चाहती है, और अखिल भारतीयताके सेवा-क्षेत्रमें हिन्दी बोलनेवाले कार्यकर्त्ताओंके ज्ञान तथा अुपयोगिताको बढ़ाती है। वह भाषा भी हिन्दी है, जो लिखी तो अुर्दू लिपिमें जाती है, पर जिसे मुसलमान और हिन्दू दोनों ही समझ लेते हैं। अिस बातको स्वीकार करके सम्मेलनने अिस सन्देहको दूर कर दिया है कि अुर्दू लिपिके प्रति सम्मेलनकी कोअी दुर्भावना है। तो भी सम्मेलनकी

प्रामाणिक लिपि तो देवनागरी ही रहेगी। पंजाब तथा दूसरे प्रान्तोंके हिन्दुओंके बीच देवनागरी लिपिका प्रचार अब भी जारी रहेगा। यह प्रस्ताव किसी भी प्रकार देवनागरी लिपिके महत्त्वको कम नहीं करता। वह तो मुसलमानोंके अिस अधिकारको स्वीकार करता है कि अब तक जिस अुर्दू लिपिमें वे हिन्दुस्तानी भाषा लिखते आ रहे हैं, अुसमें अब भी लिख सकते हैं।

दूसरे प्रस्तावको व्यावहारिक रूप देनेकी दृष्टिसे अेक समिति बना दी गअी है, जिसके अध्यक्ष और संयोजक श्री काका साहब कालेलकर हैं। यह समिति देवनागरी लिपिमें यथासम्भव अैसे परिवर्तन और परिवर्द्धन करेगी, जो अुसे और भी आसानीके साथ लिखनेके लिअे आवश्यक होंगे, और मौजूदा अक्षरोंसे जो शब्दध्वनि व्यक्त नहीं हो सकती, अुसे व्यक्त करनेके लिअे देवनागरी लिपिको और भी पूर्ण बनायेंगे।

अगर हमें अन्तर्प्रान्तीय संपर्क बढ़ाना है, और यदि हिन्दीको प्रान्त-प्रान्तके बीच लिखा-पढ़ीका माध्यम बनाना है, तो अुसमें अिस प्रकारका परिवर्तन आवश्यक है। फिर अिधर गत २५ वर्षसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी अुद्देश्य-पूर्तिमें योग देनेवाले सज्जनोंका यह निश्चित कर्तव्य भी रहा है। अिस लिपि सम्बन्धी प्रश्न पर चर्चा तो अक्सर हुअी, पर गम्भीरतापूर्वक वह कभी हाथमें नहीं लिया गया। अन्य प्रान्तीय भाषाओंका ज्ञान आज असम्भव-सा है। बंगाली लिपिमें लिखी हुअी 'गीतांजलि' को सिवा बंगालियोंके और पढ़ेगा ही कौन? पर यदि वह देवनागरी लिपिमें लिखी जाय, तो अुसे सभी लोग पढ़ सकते हैं। संस्कृतके तत्सम और तद्भव शब्द अुसमें बहुत अधिक हैं, जिन्हें दूसरे प्रान्तोंके लोग आसानीसे समझ सकते हैं। मेरे अिस कथनकी सत्यताको हरअेक जांच सकता है। हमें अपने बालकोंको विभिन्न प्रान्तीय लिपियाँ सीखनेका व्यर्थ कष्ट नहीं देना चाहिये। यह निर्दयता नहीं तो और क्या है कि देवनागरीके अतिरिक्त तामिल, तेलगू, मलयालम, कानड़ी, अुड़िया और बंगाली अिन छः लिपियोंको सीखनेमें दिमाग खपानेको कहा जाय? हाँ, यह जाननेके लिये कि हमारे

मुसलमान भाअी क्या कहते और लिखते हैं, हम अुर्दू लिपि सीख सकते हैं। जो अपने देशका या मनुष्यमात्रका प्रेमी है, अुसके सामने मैंने कोअी बहुत प्रचण्ड प्रोग्राम नहीं रखा है। अगर आज कोअी प्रान्तीय भाषायें सीखना चाहे, और प्रान्तीय भाषा-भाषी हिन्दी पढ़ना चाहें, तो लिपियोंका यह अभेद्य प्रतिबन्ध ही अुनके मार्गमें कठिनाअी अुपस्थित करता है। काका साहबकी यह समिति अेक ओर तो अिस सुधारके पक्षमें लोकमत तैयार करेगी, और दूसरी ओर सक्रिय अुद्योगके द्वारा अिसकी अिस महान् अुपयोगिताको प्रत्यक्ष करके दिखायेगी कि जो लोग हिन्दी या प्रान्तीय भाषाओंको सीखना चाहते हैं, अुनका समय और अुनकी शक्ति बच सकती है। किसीको भूलकर भी यह कल्पना नहीं करनी चाहिये कि यह लिपि-सुधार प्रान्तीय भाषाओंके महत्त्वको कम कर देगा। सच पूछिये तो वह अुनकी अुस प्रकार श्री-वृद्धि ही करेगा, जिस प्रकार अेक सामान्य लिपि स्वीकार कर लेनेके फलस्वरूप प्रान्तीय व्यवहार — विनिमय — सरल हो जानेसे यूरोपकी तमाम भाषायें समृद्ध हो गअी हैं।

(हरिजनसेवक, १०-५-'३५)

१६

अखिल भारतीय साहित्य-परिषद्

१

[अिस परिषद्का मक़सद हिन्दुस्तानके अलग-अलग सूबोंके बीच आपसके सांस्कारिक और साहित्यिक (अदवी) सम्वन्ध वढ़ाना है। ये सम्वन्ध कुछ अिनेगिने किताव लिखनेवालों तक ही अपना असर डालनेवाले नहीं हों, वल्कि ज़रूरी यह है कि अिनका असर अलग-अलग सूवोंकी देहाती जनता तक पहुँचे।

नागपुरमें परिषद्की पहली वैठकके सभापति-पदसे दिया गया लिखित भाषण।]

विद्वान् लोग अेक-दूसरेके साहित्यका कुछ ज्ञान प्राप्त करें, अिसीसे हमें कोअी सन्तोष नहीं हो सकता। हमें तो देहाती साहित्यकी भी दरकार है, और देहातियोंमें आधुनिक साहित्यके प्रचारकी भी। शरमकी वात है कि आज चैतन्यकी प्रसादी भारतवर्षके सभी भाषा-भाषियोंको अप्राप्य है। तिरुवेल्लुवरका नाम तक शायद हम सव नहीं जानते होंगे। अुत्तर भारतकी जनता तो अुस सन्तका नाम जानती ही नहीं। अुसने थोड़े शब्दोंमें जैसा ज्ञान दिया है, वैसा वहुत कम सन्त लोग दे सके हैं। अिस वारेमें अिस वक्त तो तुकारामका ही दूसरा नाम मेरे खयालमें आता है।

अगर हम सारे हिन्दुस्तानके साहित्यके विशाल क्षेत्रमें प्रवेश करें, तो क्या अुसकी कुछ सीमा-मर्यादा होनी चाहिये? मेरी रायमें अवश्य होनी चाहिये। मुझे पुस्तकोंकी संख्या वढ़ानेका मोह कभी नहीं रहा। मैं अिसे आवश्यक नहीं मानता कि प्रत्येक प्रान्तकी भाषामें लिखी और

छपी प्रत्येक पुस्तकका परिचय दूसरी सब भाषाओंमें कराया जाय। अैसा प्रयत्न सम्भव भी हो, तो अुसे मैं हानिकर ही समझता हूँ। जो साहित्य अैक्यका, नीतिका, शौर्यादि गुणोंका और विज्ञानका पोषक है, अुसका प्रचार प्रत्येक प्रान्तमें होना आवश्यक और लाभदायक है।

आजकल शृंगारयुक्त अश्लील साहित्यकी बाढ़ सब प्रान्तोंमें आ रही है। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि अेक शृंगारको छोड़कर और कोअी रस है ही नहीं। शृंगार-रसको बढ़ानेके कारण अैसे सज्जन दूसरोंको 'त्यागी' कहकर अुनकी अुपेक्षा और अुपहास करते हैं। जो सब चीजोंका त्याग कर बैठते हैं, वे भी रसका त्याग तो नहीं कर पाते। किसी न किसी प्रकारके रससे हम सब भरे हैं। दादाभाअीने देशके लिअे सब-कुछ छोड़ा था; फिर भी वे बड़े रसिक थे। देशसेवाको ही अुन्होंने अपना रस बना रखा था। अुसीमें अुन्हें प्रसन्नता मिलती थी। चैतन्यको रसहीन कहना रस ही को न जानना है। नरसिंह मेहताने अपनेको भोगी बताया है, यद्यपि वे गुजरातके भक्त-शिरोमणि थे। अगर आपको मेरी बात न अखरे, तो मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि मैं शृंगार-रसको तुच्छ रस समझता हूँ; और जब अुसमें अश्लीलता आती है, तब अुसे सर्वथा त्याज्य मानता हूँ। यदि मेरी चले तो मैं अिस संस्थामें अैसे रसको त्याज्य गनवा दूँ। अिसी तरह जो साहित्य क़ौमी भेदोंको, धर्मान्धताको तथा प्रजामें अथवा व्यक्तियोंमें वैमनस्यको बढ़ाता है, अुसका भी त्याग होना आवश्यक है।

यह कार्य कैसे किया जाय? मुंशीजी और काका साहबने हमारा मार्ग अेक हद तक साफ़ कर रखा है। व्यापक साहित्यका प्रचार व्यापक भाषामें ही हो सकता है। अैसी भाषा अन्य भाषाकी अपेक्षा हिन्दी-हिन्दुस्तानी ही है। हिन्दीको हिन्दुस्तानी कहनेका मतलब यह है कि अुस भाषामें फ़ारसी मुहावरोंका त्याग न किया जाय।

अंग्रेजी भाषा कभी सब प्रान्तोंके लिअे वाहन या माध्यम नहीं हो सकती। यदि सचमुच ही हम हिन्दुस्तानके साहित्यकी वृद्धि चाहते हैं

और भिन्न-भिन्न भाषाओंमें जो रत्न छिपे पड़े हैं, अनका प्रचार भारतवर्षके करोड़ों मनुष्योंमें करना चाहते हैं, तो यह सब हम हिन्दुस्तानीकी मारफ़त ही कर सकते हैं।

२

[भारतीय साहित्य-परिषद्की मद्रासवाली दूसरी बैठकके सभापति-पदसे दिये गये भाषणसे।]

अिस परिषद्का अुद्देश्य यह है कि सब प्रान्तीय साहित्योंकी सारभूत बातें संग्रह करके हिन्दीमें अुन्हें अुपलब्ध किया जाय। अिसके लिअे मैं आपसे अेक प्रार्थना करूँगा। निस्सन्देह हरअेक आदमीको अपनी मातृभाषा अच्छी तरह जाननी चाहिये। और अिसके साथ ही हिन्दीके द्वारा अन्य भाषाओंके महान् साहित्यका भी अुसे ज्ञान होना चाहिये। लेकिन साथ ही, परिषद्का यह भी अुद्देश्य है कि वह हम लोगोंमें अन्य प्रान्तोंकी भाषायें जाननेकी अिच्छाको प्रोत्साहन दे। जैसे, गुजराती लोग तामिल जानें, बंगाली गुजराती जानें, और दूसरे प्रान्तोंके लोग भी अैसा ही करें। मैं तजरबेके साथ आपसे कहता हूँ कि दूसरी देशी भाषा सीख लेना कोअी मुश्किल बात नहीं है। लेकिन अिसके साथ अेक सर्वसामान्य लिपिका होना आवश्यक है। तामिलनाड़में अैसा करना कुछ मुश्किल नहीं है। क्योंकि अिस सीधी-सादी बात पर ध्यान दीजिये कि ९० फ़ीसदीसे भी ज्यादा हमारे देशवासी अशिक्षित हैं। हमें नये सिरेसे अुनकी शिक्षा शुरू करनी होगी। तब सामान्य लिपिके द्वारा ही हम अुन्हें शिक्षित बनानेकी शुरुआत क्यों न करें? यूरोपमें वहाँवालोंने सामान्य लिपिका प्रयोग किया और वह बिलकुल सफल रहा। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि हम भी यूरोपकी रोमन लिपिको ही ग्रहण कर लें। लेकिन फिर वाद-विवादके बाद यह विचार बन चुका है कि हमारी सामान्य लिपि देवनागरी ही हो सकती है, और कोअी नहीं। अुर्दूको अुसका प्रतिस्पर्द्धी

बताया जाता है, लेकिन मैं समझता हूँ कि अुर्दू या रोमन किसीमें भी वैसी संपूर्णता और ध्वन्यात्मक शक्ति नहीं है, जैसी देवनागरीमें है। याद रखिये कि आपकी मातृभाषाओंके खिलाफ़ मैं कुछ नहीं कह रहा हूँ। तामिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़ तो जरूर रहनी चाहियें और रहेंगी, लेकिन अिन प्रदेशोंके अशिक्षितोंको हम देवनागरी लिपिके द्वारा अिन भाषाओंके साहित्यकी शिक्षा क्यों न दें? हम जो राष्ट्रीय अेकता हासिल करना चाहते हैं, अुसकी खातिर देवनागरीको सामान्य लिपि स्वीकार करना आवश्यक है। अिसमें कोअी कठिनाअी नहीं है। बात सिर्फ़ यह है कि हम अपनी प्रान्तीयता और संकीर्णता छोड़ दें। तामिल और अुर्दू लिपियाँ मुझे पसन्द न हों, सो बात नहीं है। मैं अिन दोनोंको जानता हूँ। लेकिन मातृभूमिकी सेवाने, जिसके लिअे मैंने अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया है, और जिसके बिना मेरा जीवन निरर्थक होगा, मुझे सिखाया है कि हमारे देशके लोगों पर जो अनावश्यक बोझ हैं, अुनसे अुन्हें मुक्त करनेकी कोशिश हमें करनी चाहिये। तमाम लिपियोंको जाननेका बोझ अनावश्यक है, और अुससे आसानीसे बचा जा सकता है। अिसलिअे सभी प्रान्तोंके साहित्यिकोंसे मैं प्रार्थना करूँगा कि वे अिस सम्बन्धके अपने भेद-भावोंको भुलाकर अिस अत्यन्त आवश्यक विषय पर अेक मत हो जायँ। तभी भारतीय साहित्य-परिषद् अपने उद्देश्यमें सफल हो सकती है।

* * *

आजका हमारा साहित्य कुछ ही लोगोंके कामका है, यानी जो लोग शिक्षित हैं, अुन्हींके मतलबका है। यहाँ तक कि शिक्षितोंमें भी अैसे थोड़े ही होंगे, जिनकी साहित्यमें दिलचस्पी हो। गाँवोंमें तो हम बिलकुल गये ही नहीं। सेवाग्रामके लोगोंमें अेक फ़ीसदी भी अैसे नहीं हैं, जो साहित्य पढ़ सकें। हमारी रात्रिशालामें नियमितरूपसे अखबार सुननेके लिअे भी आधे दर्जनसे ज्यादा आदमी नहीं आते। अिस अज्ञानको दूर

करनेका महान् कार्य हमें करना है। क्या मुट्ठीभर आदमियोंके सहारे हम अिसे कर सकेंगे? हमें तो आप सबके सहयोगकी ज़रूरत है।

* * *

मैं साहित्यके लिअे साहित्यका रसिक नहीं हूँ। यह ज़रूरी नहीं कि बौद्धिक विकासके जो अनेक साधन हैं, अुनमें साक्षरताको भी अेक साधन माना ही जाय। हमारे प्राचीन कालमें अैसे-अैसे बुद्धिशाली महापुरुष हुअे हैं, जो बिलकुल अशिक्षित थे। यही कारण है कि हमने अपनेको अैसे ही साहित्य तक सीमित रखा है, जो अधिक-से-अधिक स्पष्ट और हितकर हो। जब तक हमें आपका हार्दिक सहयोग नहीं मिलता, और आप अपनी-अपनी भाषामें अुपयुक्त साहित्य चुननेके लिअे तैयार नहीं होते, तब तक हमें अिसमें सफलता कैसे प्राप्त हो सकती है?

(हरिजनसेवक, ३-४-'३७)

१७

राष्ट्रभाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी

१

[बंगलोरमें हिन्दीके अुपाधि-वितरण-समारोहके अवसर पर दिये गये भाषणसे।]

आज जिन्हें अुपाधि और प्रमाण-पत्र मिले हैं, अुन्हें मैं धन्यवाद देता हूँ, और आशा रखता हूँ कि वे रोज़ अपना अभ्यास चालू रखकर अपना ज्ञान बढ़ाते रहेंगे। साधारण स्कूलों और कॉलेजोंमें पढ़नेवाले लोग 'करियर' के खयालसे पढ़ते हैं, परीक्षाके लिअे पढ़ते हैं, और परीक्षा-भवनसे निकलते ही अपनी पुस्तकोंको और अुनसे प्राप्त ज्ञानको भूल जाते हैं। अधिकांश लोगोंको ज्ञानकी अपेक्षा अुपाधिकी चिन्ता विशेष होती

है। किन्तु जिन्हें आज यहाँ अुपाधि मिली है, अुन्होंने अुपाधिके लिअे अुपाधि नहीं ली है। अिसका सीधा-सादा कारण यह है कि हिन्दी-प्रचार-सभाका अुद्देश्य नौकरी दिलाना नहीं है। आपको मिली हुअी यह अुपाधि अुस ज्ञानका चिह्नमात्र है, जो आपको अपने शिक्षकसे मिला है। अलबत्ता, यह हो सकता है कि आपमें से कुछ अपने अिस हिन्दी-ज्ञानकी मददसे थोड़ा कमा सकें; किन्तु निश्चय ही वह आपका अुद्देश्य नहीं।

मुझे यह देखकर खुशी होती है कि आजके सफल विद्यार्थियोंमें अधिक संख्या बहनोंकी है। यह भारतमाताके और हिन्दी-प्रचारके अुज्ज्वल भविष्यकी अेक निशानी है, क्योंकि मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हिन्दुस्तानकी मुक्ति अुसके स्त्री-समाजके त्याग और ज्ञान पर निर्भर है। स्त्रियोंकी सभामें मैं यह बात हमेशा ज़ोर देकर कहता रहा हूँ कि जब हम अपने देवों, देवियों या प्राचीन वीर स्त्री-पुरुषोंके बारेमें कुछ कहते हैं, तो हम स्त्रीका नाम पहले लेते हैं। जैसे, सीताराम, राधाकृष्ण आदि। हम रामसीता या कृष्णराधा कभी नहीं कहते। यह प्रथा निरर्थक नहीं है। हमारे यहाँ स्त्रीका आदर किया जाता था, और स्त्रियोंके कार्यों और अुनकी योग्यताकी खास क़दर की जाती थी। हमें यह पुराना रिवाज अक्षरशः और अर्थशः जारी रखना चाहिये।

अिस अवसर पर मैं आपको अिस बातके कुछ स्पष्ट कारण समझाअूँगा कि हिन्दी-हिन्दुस्तानी ही राष्ट्रभाषा क्यों होनी चाहिये। जब तक आप कर्नाटकमें रहते हैं और कर्नाटकसे बाहर आपकी दृष्टि नहीं दौड़ती, तब तक आपके लिअे कन्नड़का ज्ञान काफ़ी है। लेकिन अगर आप अपने किसी गाँवको देखेंगे, तो फ़ौरन ही आपको पता चलेगा कि आपकी दृष्टि और अुसके क्षेत्रका विस्तार हुआ है। आप कर्नाटककी दृष्टिसे नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानकी दृष्टिसे सोचने लगे हैं। कर्नाटकके बाहरकी घटनाओंमें आपकी दिलचस्पी बढ़ी है। लेकिन अगर भाषाका कोअी सर्व-साधारण माध्यम या वाहन न हो, तो आपकी यह दिलचस्पी बहुत आगे नहीं बढ़ सकती। कर्नाटकवाले निन्ध या संयुक्त प्रांतवालोंके साथ किस तरह

अपना सम्बन्ध क़ायम कर सकते या अुनकी बातें सुन और समझ सकते हैं? हमारे कुछ लोग मानते थे, और शायद अब भी मानते होंगे, कि अंग्रेज़ी अैसे माध्यमका काम दे सकती है। अगर यह सवाल हमारे कुछ हज़ार पढ़े-लिखे लोगोंका ही सवाल होता, तो ज़रूर अैसा हो सकता था। लेकिन मुझे विश्वास है कि अिससे हममें से किसीको सन्तोष न होगा। हम और आप चाहते हैं कि करोड़ों लोग अन्तर्प्रान्तीय सम्बन्ध स्थापित करें। अैसा सम्बन्ध कभी अंग्रेज़ी द्वारा स्थापित हो भी सके, तो भी स्पष्ट है कि अभी कअी पीढ़ियों तक वह मुमकिन नहीं। कोअी वजह नहीं कि वे सब अंग्रेज़ी ही सीखें। और, अंग्रेज़ी जीविकाका अचूक और निश्चित साधन तो हरगिज़ नहीं। अगर अुसकी अैसी कोअी क़ीमत कभी रही भी होगी, तो जैसे-जैसे अधिक संख्यामें लोग अुसे सीखने लगेंगे, वैसे-वैसे अुसकी वह क़ीमत कम होगी। फिर, अंग्रेज़ी सीखना जितना कठिन है, हिन्दी-हिन्दुस्तानी सीखना अुतना कठिन है ही नहीं। अंग्रेज़ी सीखनेमें जितना समय लगेगा, अुतना हिन्दी-हिन्दुस्तानी सीखनेमें कभी नहीं लग सकता। कहा जाता है कि हिन्दी-हिन्दुस्तानी बोलने और समझनेवाले हिन्दू-मुसलमानोंकी संख्या २० करोड़से ज़्यादा है। क्या १ करोड़ १० लाख कर्नाटकी भाअी-बहन अपने अिन २० करोड़ भाअी-बहनोंकी भाषा सीखना पसन्द न करेंगे? और क्या वे अुसे बहुत आसानीसे सीख नहीं सकते? अभी ही जिस अेक घटनाने मेरा ध्यान खींचा है, अुससे अिस सवालका जवाब मिल जाता है। आपने अभी-अभी लेडी रमणके हिन्दी व्याख्यानका कन्नड़ अनुवाद सुना है। अुसे सुनते समय अिस बातकी तरफ़ आपका ध्यान अवश्य आकर्षित हुआ होगा कि लेडी रमणके बहुतसे हिन्दी शब्द भाषान्तरमें ज्योंके त्यों बरते गये थे — जैसे, प्रेम, प्रेमी, संघ, सभा, अध्यक्ष, पद, अनन्त, भक्ति, स्वागत, अध्यक्षता, सम्मेलन आदि। ये शब्द हिन्दी-कन्नड़, दोनोंमें प्रचलित हैं। अब मान लीजिये कि यदि कोअी अंग्रेज़ीमें अिसका अुल्था करता, तो क्या वह अिनमें से अेक भी शब्दका अुपयोग कर सकता? कभी नहीं।

अिनमें से हरअेक शब्दका अंग्रेज़ी पर्याय श्रोताओंके लिअे बिलकुल नया होता। अिसलिअे जब हमारे कुछ कर्नाटकी मित्र कहते हैं कि हिन्दी अुन्हें कठिन मालूम होती है, तो मुझे हँसी आती है; साथ ही गुस्सा और बेसब्री भी कुछ कम नहीं मालूम होती। मेरा यह विश्वास है कि रोज़ कुछ घण्टे लगनके साथ मेहनत करनेसे अेक महीनेमें हिन्दी सीखी जा सकती है। मैं ६७ सालका हो चुका हूँ। लोग कहेंगे कि नया कुछ सीखनेकी मेरी अुमर नहीं रही। लेकिन आप यह सच मानिये कि जिस समय मैं कन्नड़ अनुवाद सुन रहा था, अुस समय मैंने यह अनुभव किया कि अगर मैं रोज़ कुछ घण्टे अभ्यासमें दूँ, तो कन्नड़ सीखनेमें मुझे आठ दिनसे ज़्यादा समय न लगे। माननीय शास्त्रीजी और मेरे जैसे दस-पाँचको छोड़कर बाकीके आप सब तो बिलकुल नौजवान हैं। क्या हिन्दी सीखनेके लिअे आप अेक महीने तक रोज़के चार घण्टे भी नहीं दे सकते? अपने २० करोड़ देशबन्धुओंके साथ संबंध स्थापित करनेके लिअे क्या अितना समय देना आपको ज़्यादा मालूम होता है? अब मान लीजिये कि आपमें से जो लोग अंग्रेज़ी नहीं जानते, वे अुसे सीखनेका निश्चय करते हैं। क्या आप मानते हैं कि प्रतिदिन चार घण्टोंकी मेहनतसे आप अेक महीनेमें अंग्रेज़ी सीख सकेंगे? कभी नहीं। हिन्दी अितनी आसानीसे अिसलिअे सीखी जा सकती है कि दक्षिण भारतकी चार भाषाओंके सहित हिन्दुस्तानके हिन्दू जो भाषायें बोलते हैं, अुन सबमें संस्कृतके बहुतसे शब्द हैं। हमारा अितिहास कहता है कि पुराने ज़मानेमें अुत्तर-दक्षिणके बीचका व्यवहार संस्कृत द्वारा चलता था। आज भी दक्षिणके शास्त्री अुत्तरके शास्त्रियोंके साथ संस्कृतमें बातचीत करते हैं। अनेक प्रान्तीय भाषाओंमें मुख्य भेद व्याकरणका है। अुत्तर भारतकी भाषाओंका तो व्याकरण भी अेक-सा है। अलबत्ता, दक्षिण भारतकी भाषाओंका व्याकरण भिन्न है, और संस्कृतसे प्रभावित होनेसे पहले अुनके शब्द भी भिन्न थे। लेकिन अब अुन्होंने भी बहुतसे संस्कृत शब्द ले लिये हैं; और वे अिस हद तक लिये गये हैं कि जब मैं

दक्षिणमें घूमता हूँ, तो यहाँकी चारों भाषाओंमें जो कुछ कहा जाता है, अुसका सार समझ लेनेमें मुझे कोअी कठिनाअी नहीं मालूम होती।

अब अपने मुसलमान मित्रोंकी बात लीजिये। वे अपने-अपने प्रान्तकी भाषा तो स्वभावतः जानते ही हैं; अिसके अलावा वे अुर्दू भी जानते हैं। दोनोंका व्याकरण अेकसा है; लिपिके कारण दोनोंमें जो फ़र्क है, सो है; और अिस पर विचार करनेसे मालूम होता है कि हिन्दी, हिन्दुस्तानी और अुर्दू, ये तीनों शब्द अेक ही भाषाके सूचक हैं। अिन भाषाओंके शब्द-भण्डारको देखनेसे हमें पता चलता है कि अिनके अधिकांश शब्द अेकसे हैं। अिसलिअे अेक लिपिके सवालको छोड़ दें, तो अिसमें मुसलमानोंको कोअी कठिनाअी नहीं हो सकती। और, लिपिका सवाल तो अपने-आप हल हो जायगा।

अिसलिअे फिर अपनी शुरूकी बात पर लौटकर मैं कहता हूँ कि अगर आपकी दृष्टि-मर्यादा अुत्तरमें श्रीनगरसे दक्षिणमें कन्याकुमारी तक और पश्चिममें कराचीसे पूर्वमें डिब्रूगढ़ तक पहुँचती हो — और अितनी वह पहुँचनी भी चाहिये — तो अुसके लिअे आपके पास हिन्दीको छोड़ और कोअी साधन नहीं। मैं आपको समझा चुका हूँ कि अंग्रेज़ी हमारी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती। अंग्रेज़ीसे मुझे नफ़रत नहीं। थोड़े पंडितोंके लिअे अंग्रेज़ीका ज्ञान आवश्यक है; अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंके लिअे और पश्चिमी विज्ञानके ज्ञानके लिअे अुसकी ज़रूरत है। लेकिन जब अुसे वह स्थान दिया जाता है, जिसके योग्य वह है ही नहीं, तो मुझे दुःख होता है। मुझे अिसमें कोअी सन्देह नहीं कि अैसा प्रयत्न विफल ही हो सकता है। अपनी-अपनी जगह ही सब शोभा देते हैं।

आपके दिमाग़में व्यर्थ ही जो अेक डर घुस गया है, अुसे मैं निकाल डालना चाहता हूँ। क्या हिन्दी कन्नड़की जगह सिखाअी जायगी? क्या यह कन्नड़को अुसके स्थानसे हटा देगी? नहीं, अुलटे मेरा दावा तो यह है कि जैसे-जैसे हम हिन्दीका अधिक प्रचार करेंगे, वैसे-वैसे हम अपनी प्रान्तीय भाषाओंके अभ्यासको न केवल विशेष प्रोत्साहन देंगे,

बल्कि अुनकी शक्ति भी बढ़ायेंगे। यह बात मैं भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके अपने अनुभवसे कहता हूँ।

दो शब्द लिपिके बारेमें। जब मैं दक्षिण अफ्रीकामें था, तब भी मैं मानता था कि संस्कृतसे निकली हुअी सभी भाषाओंकी लिपि देवनागरी होनी चाहिये; और मुझे विश्वास है कि देवनागरीके द्वारा द्राविड़ी भाषायें भी आसानीसे सीखी जा सकती हैं। मैंने तामिल-तेलगूको और कुछ दिन तक कन्नड़ व मलयालमको भी अुनकी अपनी लिपियों द्वारा सीखनेका प्रयत्न किया है। मैं आपसे कहता हूँ कि मुझे यह साफ़ दिखाअी पड़ रहा था कि अगर अिन चारों भाषाओंकी लिपि देवनागरी ही होती, तो मैं अिन्हें थोड़े ही समयमें सीख सकता था; लेकिन जब मैंने देखा कि मुझे चार-चार लिपियाँ सीखनी होंगी, तो मैं मारे डरके घबरा अुठा। मेरी तरह जिसे चारों भाषायें सीखनेका अुत्साह है, अुसके लिअे यह कितना बड़ा बोझ है? और क्या यह समझानेके लिअे भी किसी दलील की ज़रूरत है कि दक्षिणवालोंके लिअे अपनी मातृभाषाके सिवा दूसरी तीन भाषायें सीखनेके लिअे देवनागरी लिपि अधिक-से-अधिक सुविधाजनक हो सकती है? राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रश्नके साथ लिपिका प्रश्न मिलाना न चाहिये। मैंने यहाँ अुसका अुल्लेख केवल यह दिखानेके लिअे किया है कि हिन्दुस्तानकी सभी भाषायें सीखनेवालेको लिपिके कारण कितनी कठिनाअी होती है।

(ह० ब०, ५-७-'३६)

२

[दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभाके पदवीदान-समारम्भके अवसर पर दिये गये दीक्षान्त भाषणसे।]

. . . मैंने अपने मनमें कहा, गुजराती मेरी मातृभाषा है, पर वह राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। देशकी ३० वें हिस्सेसे अधिक जन-संख्या

गुजराती भाषा-भाषी नहीं है। अुसमें मुझे तुलसीदासकी रामायण कहाँ मिलेगी? तो क्या मराठी राष्ट्रभाषा हो सकती है? मराठी भाषासे मुझे प्रेम है। मराठी बोलनेवाले लोगोंमें मेरे साथ काम करनेवाले कुछ बड़े पक्के और सच्चे साथी हैं। महाराष्ट्रियोंकी योग्यता, आत्मबलिदानकी अुनकी शक्ति और अुनकी विद्वत्ताका मैं क़ायल हूँ। तो भी जिस मराठी भाषाका लोकमान्य तिलकने ग़ज़बका अुपयोग किया, अुसे राष्ट्रभाषा बनानेकी कल्पना मेरे मनमें नहीं अुठी। जिस वक़्त मैं जिस प्रश्न पर अपने दिलमें दलीलें कर रहा था — मैं आपको बता दूं कि अुस वक़्त मुझे हिन्दी भाषा-भाषियोंकी ठीक-ठीक संख्या भी मालूम नहीं थी — अुस वक़्त भी मुझे ख़ुद-ब-ख़ुद यह लगा था कि राष्ट्रभाषाकी जगह अेक हिन्दी ही ले सकती है — दूसरी कोअी ज़बान नहीं। क्या मैंने बँगलाकी प्रशंसा नहीं की? मैंने की है; और चैतन्य, राममोहन राय, रामकृष्ण, विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी मातृभाषा होनेके कारण मैंने अुसे सम्मानकी दृष्टिसे देखा है। फिर भी मुझे लगा कि बँगलाको हम अन्तर्प्रान्तीय आदान-प्रदानकी भाषा नहीं बना सकते। तो क्या दक्षिण भारतकी कोअी भाषा बन सकती है? यह बात नहीं कि मैं अिन भाषाओंसे बिलकुल ही अनभिज्ञ था। . . . . . पर तामिल या दूसरी कोअी दक्षिण भारतीय भाषा राष्ट्रभाषा कैसे हो सकती है? तब हिन्दी ज़बान, बादको जिसे हम हिन्दुस्तानी या अुर्दू भी कहने लगे हैं, और जो देवनागरी और अुर्दू लिपिमें लिखी जाती है, वही माध्यम हो सकती है, और है।

(हरिजनसेवक, ३-४-'३७)

१८

कांग्रेस और राष्ट्रभाषा

१

[हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके मद्रासवाले अधिवेशनमें अिस आशयका अेक सिफ़ारिशी प्रस्ताव* पास किया गया था कि अखिल भारत राष्ट्रीय कांग्रेसको अपना सारा काम हिन्दी-हिन्दुस्तानीमें ही करना चाहिये। अिस प्रस्ताव पर गांधीजीने नीचे लिखा भाषण किया था:]

हिन्दीको सामान्य भाषा बनानेके पक्षमें हमारे प्रस्ताव पास करते रहने पर भी अगर कांग्रेसका काम अिसी तरह होता रहा, तो हमारा काम

* वह प्रस्ताव अिस प्रकार था —

"यह सम्मेलन हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय महासभाकी कार्य-कारिणी समितिसे प्रार्थना करता है कि अबसे आगे महासभा, महासमिति, और कार्य-कारिणी समितिके कामकाजमें अंग्रेज़ीका अुपयोग न करके अुनके स्थान पर हिन्दी-हिन्दुस्तानीका ही अुपयोग करनेका प्रस्ताव पास किया जाय; और जो लोग हिन्दी-हिन्दुस्तानीमें अपने भाव पूरी तरह प्रकट न कर सकें, अुन्हींके लिअे अंग्रेज़ीमें बोलनेकी छूट रखी जाय। यदि कोअी सदस्य हिन्दी-हिन्दुस्तानीमें न बोल सकता हो, और वह अपनी प्रान्तीय भाषामें बोलना चाहे, तो अुसे वैसा करनेकी छूट होनी चाहिये, और हिन्दी-हिन्दुस्तानीमें अुनके भाषणका अनुवाद करनेकी व्यवस्था की जानी चाहिये।

"यदि किसी सज्जनको किसी मौक़े पर सभासदोंके अमुक वर्गको अपनी बात समझानेके लिअे अंग्रेज़ीमें बोलनेकी ज़रूरत मालूम हो, तो अुसे सभापतिकी अनुमतिसे अंग्रेज़ीमें बोलनेकी छूट होनी चाहिये।"

रा–५

खेदजनक रूपमें ढीला पड़ जायगा। अिस प्रस्तावमें कांग्रेससे प्रार्थना की गअी है कि वह अन्तर्प्रान्तीय कामकाजकी भाषाके रूपमें अंग्रेज़ीका व्यवहार छोड़ दे। अुसमें कहा गया है कि अंग्रेज़ीको प्रान्तीय भाषाओंका या हिन्दीका स्थान नहीं देना चाहिये। अगर अंग्रेज़ोंने यहांके लोगोंकी भाषाओंको निकाल न दिया होता, तो प्रान्तीय भाषायें आज आश्चर्यजनक रूपमें समृद्ध होतीं। अगर अिंग्लैण्ड फ्रेन्च भाषाको अपने राष्ट्रीय कामकाजकी भाषा मान लेता, तो आज हमें अंग्रेज़ीका साहित्य अितना समृद्ध न मिलता। नॉर्मन विजयके बाद वहां फ्रेन्च भाषाका ही ज़ोर था, लेकिन अुसके बाद लोकप्रवाह 'विशुद्ध अंग्रेज़ी' के पक्षमें हो गया। अंग्रेज़ी साहित्यको आज हम जिस महान् रूपमें देखते हैं, वह अुसीका फल है। याकूब हुसेन साहबने जो कहा वह बिलकुल सही है। मुसलमानोंके संपर्कका हमारी संस्कृति और सभ्यता पर बहुत ज़्यादा असर पड़ा है। अितना ज़्यादा कि स्वर्गीय पं० अयोध्यानाथ-जैसे लोग भी हमारे यहां हुअे हैं, जो फ़ारसी और अरबीके बहुत बड़े आलिम थे। अुन्होंने अरबी और फ़ारसीके अध्ययनमें जो समय लगाया, वह सब समय अपनी मातृभाषाको दिया होता, तो अुनकी मातृभाषाकी कितनी तरक़्क़ी हो जाती? अिसके बाद अंग्रेज़ीने वह अस्वाभाविक स्थिति प्राप्त कर ली, जिस पर वह अभी तक आसीन है। विश्वविद्यालयके अध्यापक अंग्रेज़ीमें धाराप्रवाह बोल सकते हैं, लेकिन अपनी खुदकी मातृभाषामें अपने विचारोंको प्रकट नहीं कर सकते। सर चन्द्रशेखर रमणकी सारी खोजें अंग्रेज़ीमें ही हैं। जो लोग अंग्रेज़ी नहीं जानते, अुनके लिअे वे मुहरबन्द पुस्तककी तरह हैं। मगर रूसको देखिये। रूसवालोंने राज्यक्रान्तिसे भी पहले यह निश्चय कर लिया था कि वे अपनी पाठ्य-पुस्तकें (वैज्ञानिक भी) रूसी भाषामें लिखवायेंगे। दरअसल अिसीसे लेनिनके लिअे राज्यक्रान्तिका रास्ता तैयार हुआ। जब तक कांग्रेस यह निश्चय न कर ले कि अुसका सारा कामकाज हिन्दीमें, और अुसकी प्रान्तीय संस्थाओंका प्रान्तीय भाषाओंमें ही होगा, तब तक वास्तविक रूपमें हम जन-संपर्क स्थापित नहीं कर सकते।

अिस प्रस्तावको अमलमें लाना जितना सम्मेलनका काम है, अुतना ही भारतीय साहित्य-परिषद्का भी है; क्योंकि प्रान्तीय भाषाओंको प्रोत्साहन देना भारतीय साहित्य-परिषद्का अुद्देश्य है, और अगर कांग्रेस अिस प्रस्तावको न माने, तो अुस हद तक अिसका अुद्देश्य निष्फल रहेगा।

यह बात नहीं कि भाषाके पीछे मैं दीवाना हो गया हूँ। न अिसका यह मतलब ही है कि अगर भाषाके मोल पर स्वराज्य मिलता है, तो मैं अुसे लेनेसे अिनकार कर दूँगा। लेकिन जैसा कि मैं कहता रहा हूँ, सत्य और अहिंसाकी बलि देनेसे मिलनेवाला स्वराज्य मैं हरगिज न लूँगा। फिर भी, मैं भाषा पर अितना जोर अिसीलिअे देता हूँ कि राष्ट्रीय अेकता हासिल करनेका यह अेक बहुत जबरदस्त साधन है। और जितना दृढ़ अिसका आधार होगा, अुतनी ही प्रशस्त हमारी अेकता होगी।

मेरी अिस बातसे आप कोअी भयभीत न हों कि हिन्दी सीखनेवाले हरअेक व्यक्तिको अपनी मातृभाषाके अलावा कोअी अेक प्रान्तीय भाषा भी सीखनी चाहिये। भाषायें सीखना कोअी मुश्किल काम नहीं है। मैक्समूलर १४ भाषायें जानता था; और मैं अेक अैसी जर्मन लड़कीको जानता हूँ, जो ५ साल पहले जब यहाँ आअी थी, तब ११ भाषायें जानती थी, और अब २-३ भारतीय भाषायें भी जानती है। लेकिन आपने तो अपनी दिलकी आँखोंमें अेक डर-सा बैठा लिया है, और किसी तरह यह महसूस करने लगे हैं कि आप हिन्दीमें अपने भाव प्रकट नहीं कर सकते। यह हमारी मानसिक काहिली ही है, जिसके कारण कांग्रेस-विधानमें १२ बरसोंसे हिन्दुस्तानीको मंजूर कर लेने पर भी हम अिस दिशामें कोअी प्रगति नहीं कर पाये हैं।

याकूब हुसेन साहबने मुझसे पूछा है कि मैं सामान्य भाषाके रूपमें सीधे-सादे 'हिन्दुस्तानी' शब्द पर संतोष न करके 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' पर क्यों अितना जोर देता हूँ? अिसके लिअे मुझे आपको सब बातोंकी तहमें ले जाना होगा। सन् १९१८ में मैं हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका सभापति हुआ था,

तभी मैंने हिन्दी-भाषी जगत्को सुझाया था कि वह हिन्दीकी अपनी व्याख्याको अितना प्रशस्त बना ले कि अुसमें अुर्दूका भी समावेश हो जाय। सन् १९३५ में जब मैं दुबारा सम्मेलनका सभापति बना, तो मैंने हिन्दी शब्दकी यह व्याख्या कराअी कि हिन्दी वह भाषा है, जिसे हिन्दू-मुसलमान दोनों बोल सकें, और जो देवनागरी या अुर्दू लिपिमें लिखी जाय। अैसा करनेमें मेरा अुद्देश्य यह था कि मैं हिन्दीमें मौलाना शिबलीकी धाराप्रवाह अुर्दू और बाबू श्यामसुन्दरदासकी धाराप्रवाह हिन्दीको शामिल कर दूं। 'हिन्दी' की जगह यह 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' नाम मेरी ही तजवीज़से स्वीकार किया गया था। अब्दुल हक़ साहबने वहाँ ज़ोरोंसे मेरी मुख़ालिफ़त की। मैं अुनका सुझाव मंजूर न कर सका। जो शब्द हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका था, और जिसकी अिस प्रकारकी व्याख्या करनेके लिअे मैंने सम्मेलनवालोंको मना लिया था कि अुसमें अुर्दूको भी शामिल कर लिया जाय, अुस हिन्दी शब्दको मैं छोड़ देता, तो मैं ख़ुद अपने प्रति और सम्मेलनके प्रति भी हिंसा करनेका दोषी होता। यहाँ हमें यह याद रखना चाहिये कि यह 'हिन्दी' शब्द हिन्दुओंका गढ़ा हुआ नहीं है, यह तो अिस मुल्कमें मुसलमानोंके आनेके बाद अुस भाषाको बतलानेके लिअे बनाया गया, जिसे अुत्तर हिन्दुस्तानके हिन्दू बोलते और लिखते-पढ़ते थे। अनेक नामी-गरामी मुसलमान लेखकोंने अपनी ज़बानको 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' कहा है, और अब जब कि हिन्दीके अन्दर अुन विभिन्न रूपोंको शामिल कर लिया गया है, जिन्हें हिन्दू और मुसलमान दोनों बोलते और लिखते हैं, तब यह महज़ शब्दोंका झगड़ा कैसा?

फिर अेक दूसरी बात भी ध्यानमें रखनी है। जहाँ तक दक्षिण भारतकी भाषाओंका सम्बन्ध है, बहुत अधिक संस्कृत शब्दोंसे युक्त हिन्दी ही अेक अैसी भाषा है, जो दक्षिणके लोगोंको अपील कर सकती है; क्योंकि कुछ संस्कृत शब्दों और संस्कृत ध्वनिसे तो वे पहलेसे ही परिचित होते हैं। जब ये दोनों — हिन्दी और हिन्दुस्तानी या अुर्दू — घुलमिल

जायेंगी, और जब दरअसल सारे हिन्दुस्तानकी अेक भाषा बन जायगी, और प्रान्तीय शब्दोंके दाखिल होनेसे वह रोज़-ब-रोज़ तरक़्क़ी करती जायगी, तब हमारा शब्द-भण्डार अंग्रेज़ी शब्द-कोषसे भी अधिक समृद्ध बन जायगा। मैं आशा करता हूँ कि अब आप समझ गये होंगे कि 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' के लिअे मेरा अितना आग्रह क्यों है।

(हरिजनसेवक, १०-४-'३७)

२

[यह मानकर कि कांग्रेसकी कार्य-कारणी समितिने सन् १९३८ में अपनी नीतिको स्पष्ट करनेवाला जो प्रस्ताव पास किया था, अुसे अिस सिलसिलेमें यहीं देखना ठीक होगा, नीचे वह प्रस्ताव दिया जाता है।]

अ० भा० कांग्रेस-समितिके हालके अधिवेशनमें डॉ० अशरफ़ने हिन्दुस्तानी ज़बानके सम्बन्धका जो प्रस्ताव रखा था, अुसके बारेमें कार्य-समितिको अफ़सोस है कि अनेक प्रकारके संशोधनोंसे हुअी गड़बड़ीके कारण यह प्रस्ताव अुड़ गया। किन्तु कांग्रेसकी जिस स्थितिका विधानकी नीचे लिखी धारामें वर्णन किया गया है, अुसमें अिस प्रस्तावके अुड़ जानेसे किसी तरहका फ़र्क़ नहीं पड़ता —

"धारा १९ (क) — कांग्रेस, अ० भा० कांग्रेस-समिति और कार्य-समितिका कामकाज साधारण रीतिसे हिन्दुस्तानीमें हुआ करेगा। वक्ता यदि हिन्दुस्तानीमें न बोल सकें तो, अथवा जब अध्यक्ष अिजाज़त दें तब, अंग्रेज़ी भाषाका या किसी प्रांतीय भाषाका अुपयोग किया जा सकेगा। (ख) प्रांतीय समितिका कामकाज साधारणतया प्रांतकी भाषामें हुआ करेगा। हिन्दुस्तानी भाषाका अुपयोग भी किया जा सकेगा।"

कांग्रेसकी प्रचलित प्रथाके अनुसार हिन्दुस्तानी वह भाषा है, जिसे अुत्तर भारतके लोग अुपयोगमें लाते हैं, और जो देवनागरी या अुर्दू दोनों लिपियोंमें लिखी जाती है।

दरअसल कांग्रेसकी यही नीति चली आ रही है कि तमाम सभाओंमें और कांग्रेस-कमेटियोंके कामकाजमें हिन्दुस्तानीका अुपयोग करनेका आग्रह रखा जाय। कार्य-समितिको आशा है कि अिस वर्षके अंत तक कांग्रेसवादी राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीमें बोलनेका अभ्यास कर लेंगे, जिससे अुसके बाद कांग्रेसकी सभाओंमें या कांग्रेस-कमेटियोंके दफ़्तरोंमें अन्तर्प्रान्तीय व्यवहारके लिअे अंग्रेज़ीका अिस्तेमाल करनेकी ज़रूरत न रहे। सिर्फ़ अध्यक्ष महोदय, जब ज़रूरी समझेंगे, अंग्रेज़ीका अुपयोग करनेकी अिजाज़त दे सकेंगे।

(हरिजनसेवक, १५-१०-'३८)

१९

हिन्दी-प्रचार और चारित्र्य-शुद्धि

१

पिछले महीनेकी २६वीं तारीखको दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभाकी अन्तिम परीक्षामें अुत्तीर्ण युवक-युवतियोंको प्रमाण-पत्र देनेके लिअे पदवीदान-समारंभ रखा गया था। पदवी लेनेवालोंको प्रमाण-पत्र देनेके लिअे मुझे आमंत्रित किया गया था। अुन्हें तिहेरी प्रतिज्ञा लेनी थी। हिन्दी-हिन्दुस्तानीका प्रचार, स्वदेशकी सेवा, और हिन्दी-प्रचार-सभाकी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिअे चारित्र्य-शुद्धि, ये तीन व्रत अुन्हें लेने थे। प्रतिज्ञाके अंतिम दो भागोंकी ओर मैंने पदवीधारियोंका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित किया। लेकिन सेवा और चारित्र्य-शुद्धि-सम्बन्धी व्रत लिवानेमें प्रतिज्ञाकारों-की खास मंशा थी। अिसमें अुनका आशय यह होना चाहिये कि यदि सभा द्वारा पदवी पानेवाले युवक और युवतियाँ सेवाभावसे हिन्दीका प्रचार करें, और अुनका चरित्र भी शुद्ध हो, तो ये दो चीज़ें अिन पदवीधारियोंकी

प्रतिष्ठाको बढ़ायेंगी, और ये खुद ही हिन्दी-हिन्दुस्तानीको लोकप्रिय बनानेके लिअे विज्ञापनका सबसे सुन्दर साधन बन जायेंगी। अिसलिअे मैंने अुन्हें पदवी लेते समय अिस प्रतिज्ञाका स्मरण कराया। अपने कथनका समर्थन करनेके लिअे मैंने अेक हिन्दी-शिक्षकके पतनकी खबर, जो मुझे मिली थी, अुन्हें सुनाअी और बताया कि अिस पतनने हिन्दी-प्रचारके कामको कितनी हानि पहुँचाअी है।

* * *

जिन संस्थाओंके साथ मेरा निकटका सम्बन्ध रहता है, अुन्हें जन-समुदाय — पुरुषों तथा स्त्रियों — से काम लेना पड़ता है। ये संस्थायें सैकड़ों स्वयंसेवकोंकी मददसे अपना काम चलाती हैं। अुनके पास अेक नैतिक बलके सिवा दूसरे किसी प्रकारकी कोअी सत्ता नहीं होती। स्वयं-सेवकों पर जनता विश्वास रखती है, क्योंकि वह यह मान लेती है कि अुनका चारित्र्य तो शुद्ध ही होगा। जिस क्षण वे अपनी चारित्र्य-शुद्धिकी साख खो देंगे, अुसी क्षण अुनकी प्रतिष्ठा और अुनका प्रभाव कम हो जायगा। पाप-पंकमें फँसी हुअी संस्थाओं और व्यक्तिओंको पापके प्रकटीकरणसे कभी हानि नहीं हुअी। . . .

यह चीज़ दक्षिण भारतके हिन्दी शिक्षकों पर बहुत ज़ोरसे लागू होती है। दक्षिण भारतमें परदेका रिवाज नहीं है। वहाँ लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियाँ हिन्दीमें ज़्यादा दिलचस्पी लेती दिखाअी देती हैं। शिक्षकोंको अपने धन्धेके कारण ही अपने शिष्यों और शिष्याओं पर नैतिक अधिकार प्राप्त होता है। अुससे अुनका सन्देह दूर हो जाता है और वे अेक तरहका विश्वास, जो साधारणतया नहीं रखा जाता, शिक्षकोंके प्रति रखने लगते हैं।

अिस आशयका अेक सुझाव पहले ही आ चुका है कि अगर हिन्दी-प्रचार-सभा अपनेको १०० फ़ीसदी सुरक्षित बनाना चाहती है, तो अुसे लड़कियोंको खानगी शिक्षा देनेकी प्रथा बिलकुल ही बन्द कर देनी

चाहिये। मैं अिससे सहमत न हो सका। हम चाहे जितनी सावधानी रखें, तो भी पतनकी घटनायें तो घटेंगी ही। अिसलिअे हम जितनी भी सावधानी रखें, थोड़ी ही है। पर लड़कियोंकी खानगी शिक्षा बन्द कर देना तो नैतिकताके सम्बन्धमें अपना दिवाला क़बूल कर लेने-जैसी बात है। हमारे लिअे घबरा जाने या हताश हो जानेका कोअी कारण नहीं। जहाँ तक मैं जानता हूँ, हिन्दी-शिक्षकोंने साधारणतया चरित्र-शुद्धिके सम्बन्धमें निष्कलंक रहकर अपना कार्य सम्पन्न किया है। पतन सिद्ध हो जाने पर अेक भी अुदाहरण मैंने जनतासे छिपाकर नहीं रखा। हम प्रलोभनको आमंत्रण न दें; अिसी तरह प्रलोभनसे बिलकुल ही बचनेके लिअे लोहेके पिंजरेमें बन्द होकर न बैठ जायँ। प्रलोभन जब बिना बुलाये हमारे सामने आ जाय, तब अुसका सामना करनेके लिअे हमें तैयार रहना चाहिये।

(हरिजनसेवक, १०-४-'३७)

२

[वर्धामें हिन्दी-प्रचारकोंके अध्यापन-मन्दिरका अुद्घाटन करते समय दिये गये भाषणसे।]

राजेन्द्रबाबूने यह कहकर कि प्रचारकोंको चारित्र्यवान् होना चाहिये, मेरा काम बहुत हलका कर दिया है। यह कहनेकी ज़रूरत नहीं कि जो प्रचारक साहित्यिक योग्यता नहीं रखते, अुनसे यह काम नहीं हो सकेगा। पर यह ध्यानमें रखना आवश्यक है कि जिनमें चारित्रिक योग्यताका अभाव होगा, वे किसी मसरफ़के साबित न होंगे।

अिन्दौरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशनमें हिन्दीकी जो व्याख्या की गअी थी — अर्थात् वह भाषा जिसे अुत्तर हिन्दुस्तानके हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं, और जो देवनागरी और फ़ारसी दोनों ही लिपियोंमें लिखी जाती है — अुस हिन्दी पर अुनका अच्छा अधिकार होना चाहिये।

जिस भाषा पर आधिपत्य प्राप्त करनेका मतलब यही नहीं है कि जनता जिस आसान हिन्दी-हिन्दुस्तानीको बोलती है, अुस पर हम प्रभुत्व प्राप्त कर लें, बल्कि संस्कृत शब्दोंसे पूर्ण अूँची परिष्कृत हिन्दी तथा फ़ारसी और अरबी अल्फ़ाज़से भरी हुआी अुर्दू ज़बान पर भी हम कमाल हासिल कर लें। अिनके ज्ञानके बग़ैर हमारा भाषाका अधिकार अधूरा ही रहेगा, जिस तरह चॉसर, स्विफ्ट और जॉन्सनकी अंग्रेज़ीके ज्ञानके बिना या वाल्मीकि और कालिदासकी साहित्यिक संस्कृतसे अपरिचित रहकर कोआी यह दावा नहीं कर सकता कि अंग्रेज़ी या संस्कृत पर अुनका पूरा-पूरा अधिकार है।

पर मैं अुनके देवनागरी या फ़ारसी लिपिके अथवा हिन्दी व्याकरणके अज्ञानको बरदाश्त कर लूँगा, लेकिन अुनके चारित्र्यकी कमीको तो मैं अेक क्षणके लिअे भी बरदाश्त नहीं कर सकता। हमें यहाँ अैसे आदमियोंकी ज़रूरत नहीं है। और अगर अिन अुम्मीदवारोंमें यहाँ कोआी अैसा व्यक्ति हो, जो अिस कसौटी पर खरा न अुतर सकता हो, तो अुसे अभी चले जाना चाहिये। जिस कामके लिअे वे बुलाये गये हैं, वह कोआी आसान काम नहीं है। अैसे अंग्रेज़ीदाँ लोगोंका भी देशमें अेक मज़बूत दल है, जो यह कहते हैं कि अेक अंग्रेज़ी ही हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा हो सकती है। काशी और प्रयागके पण्डित तो संस्कृतमयी हिन्दीको चाहते हैं, और दिल्ली और लखनअूके आलिम फ़ारसी लफ़्ज़ोंसे लदी हुआी अुर्दूको। अेक तीसरा दल भी है, जिससे हमें लड़ना पड़ता है। यह दल हमेशा यह आवाज़ अुठाता रहता है कि 'प्रान्तीय भाषायें खतरेमें हैं'।

कोरी अिल्मियतसे अिन विरोधी शक्तियोंका हम सफलतापूर्वक मुक़ाबला नहीं कर सकते। यह काम विद्वानोंका नहीं है, यह तो 'फ़क़ीरों' का काम है — जिनका चारित्र्य बिलकुल शुद्ध हो और जो स्वार्थ-साधनसे परे हों। अगर लोग आपको न चाहें, और जिन लोगोंके बीच जाकर आप काम कर रहे हों, वे आप पर हाथ तक चला बैठें, तो भी मैं अुन्हें दोष नहीं दूँगा। अुन्होंने अहिंसाका कोआी व्रत तो लिया नहीं है।

अिसी तरह धनसे भी हमको ज़्यादा मदद नहीं मिलेगी। अकेले धनसे क्या हो सकता है? रुपयेसे भी अधिक हम चारित्र्यको प्रधानता देते हैं। आज सुबह मैं आप लोगोंसे यही कहने आया हूँ कि आप अिस तरह अिस काममें मदद दें।

(हरिजनसेवक, १७-७-'३७)

२०

हिन्दी या हिन्दुस्तानी

१

अिस अंकमें "दूसरी जगह"* पाठक अेक आदरणीय मित्रका लिखा हुआ अेक बहुत कुतूहलभरा पत्र पढ़ेंगे। यह पत्र नागपुरमें जमा हुअे अुन प्रतिनिधियोंके सामने पढ़ा गया था, जिन्होंने वहाँ भारतीय-साहित्य-परिषद् क़ायम की है। अिसी तरहका अेक खत अेक मुसलमान मित्रने भेजा है, और अुसके साथ अिसी विषय पर लिखा गया २७ अप्रैलके 'बॉम्बे क्रानिकल' का मुख्य लेख भी भेजा है। ये पत्र और लेख मुख्तलिफ़ प्रान्तोंके लिअे अेक सामान्य भाषाके बारेमें मेरे विचारोंसे मिलते-जुलते विचार ही प्रकट करते हैं। फिर भी मुझे डर है कि अिस बारेमें मैंने जो तय किया है, अुसमें शायद कुछ कमियाँ रह गअी हैं। अिसलिअे अुन्हें सबके सामने रख देना जरूरी है। अगर अुन्हें कमियाँ मान भी लिया जाय, तो वे अेक अैसे अिरादेसे की गअी हैं, जो मेरे मित्रोंसे छिपा नहीं है।

शुरूमें ही मैं अुस शकको दूर कर देना चाहता हूँ, जो कुछ मुसलमानोंमें पैदा हो गया है। सारा वातावरण सन्देहसे भरा हुआ है।

---

* अिस प्रकरणके अन्तमें दिया गया परिशिष्ट देखिये।

हर किसीके कामों और बातोंको सन्देहकी निगाहसे देखा जाता है। जो लोग पूरी साम्प्रदायिक अेकता चाहते हैं, और सन्देहका कोअी मौक़ा अपनी तरफ़से पैदा होने देना नहीं चाहते, अुनके लिअे, मेरी रायमें, सबसे अच्छा रास्ता यह है कि वे क्षणिक जोशसे बचे रहकर अीमानदारीसे काम करते रहें। परिषद्‌के-से कामोंमें तो जोशका कोअी मौक़ा ही पैदा नहीं होता। परिषद्‌का मक़सद हिन्दुस्तानकी तमाम भाषाओंमें से अच्छी-से-अच्छी चीज़ोंका संग्रह करके अुनको देशके अधिक-से-अधिक लोगोंके लिअे अुस भाषाके ज़रिये सुलभ बनाना है, जिसे अधिक-से-अधिक देशवासी समझ सकते हैं। निस्सन्देह, अुर्दू अनेक भाषाओंमें से अेक है, जिसमें हीरों और जवाहरोंके अैसे खज़ाने भरे हुअे हैं, जो सारे देशवासियोंकी आम जायदाद होने चाहियें। जो हिन्दुस्तानी, मुसलमानोंके दिलको या भारतीय दृष्टिसे की गअी अिस्लामकी व्याख्याको जानना चाहता है, वह अुर्दूकी अुपेक्षा नहीं कर सकता। अगर यह परिषद् मौजूदा अुर्दू-साहित्यके खज़ानेका ताला खोलकर अुसे सर्व-सुलभ नहीं बना सकेगी, तो वह अपने फ़र्ज़ और मक़सदको पूरा नहीं कर सकेगी।

पत्र भेजनेवाले मित्रने अेक भूल की है, जिसे मैं दूर कर देना चाहता हूँ। अुनके सामने टण्डनजीका वह सारा-का-सारा भाषण नहीं था, जो अुन्होंने बनारसमें नहीं, अिलाहाबादमें दिया था; नहीं तो वे यह समझनेकी भारी भूल न करते कि टण्डनजीने '२२ करोड़ हिन्दी बोलनेवालोंकी जो बात कही थी, वह अुनके बारेमें कही थी जो आजकलकी बनावटी हिन्दी लिखते हैं। अुन्होंने यह साफ़ तौर पर कह दिया था कि अुनका मतलब विन्ध्याके अुत्तरमें रहनेवाले अुन लोगोंसे था, जिनमें ७ करोड़ मुसलमान भी शामिल हैं, जो अुस भाषाको बोलते या समझते हैं, जिसका जन्म ब्रज भाषासे हुआ है और जिसका व्याकरणी ढाँचा अुसीसे लिया गया है। अुसका हिन्दी नाम भी अपना असली नहीं है। यह नाम मुसलमान लेखकोंका अुत्तरमें

रहनेवाले लोगोंके लिअे दिया हुआ है। और यह वैसा ही नाम है, जैसे नामका प्रयोग अुनके हिन्दू भाअी अुनके लिअे करते थे। अुसके बाद ये दो शाखायें हो गअीं — देवनागरीमें लिखी जानेवाली अुत्तरके हिन्दुओंकी भाषाको 'हिन्दी' और फ़ारसी या अरबी लिपिमें लिखी जानेवाली मुसलमानोंकी भाषाको 'अुर्दू' कहा जाने लगा। यह सच नहीं है कि सारे देशके मुसलमानोंकी आम ज़बान अुर्दू है। मुझे मालूम है कि अलीभाअियोंके और मेरे लिअे मलबारके मोपलोंके साथमें अुर्दूमें बात करना कठिन हो गया था। हमें अेक मलयाली दुभाषिया साथमें लेना पड़ा था। पूर्वी बंगालके मुसलमानोंके बीचमें जाने पर भी हमें वैसी ही मुसीबतका सामना करना पड़ा था। टण्डनजी और राजेन्द्रबाबूके 'हिन्दी' शब्द प्रयोग करनेका ठीक वही मतलब था, जो मेरे अिन मित्रका है। 'हिन्दुस्तानी' शब्दका प्रयोग करनेसे अुनका मतलब ज्यादा साफ़ न हो पाता।

अुन लेखकोंके बारेमें मेरे दोस्तकी शिकायत बिलकुल सही है, जो अैसी 'हिन्दी' लिखते हैं, जिसको अुत्तर भारतके भी बहुत ही कम लोग समझ सकते हैं। जॉन्सनकी भाषाकी तरह यह जतन ज़रूर ही नाकाम होनेवाला है।

खत भेजनेवाले सज्जन पूछ सकते हैं कि 'हिन्दी या हिन्दुस्तानी'का हठ छोड़कर सीधा-सादा 'हिन्दुस्तानी' क्यों नहीं काममें लिया जाता? मेरे पास अिसके लिअे सीधी-सादी अेक ही दलील है। वह यह है कि मेरे सरीखे नये व्यक्तिके लिअे २५ बरसकी पुरानी संस्थाको अपना नाम बदलनेके लिअे कहना गुस्ताखी होगी, खासकर तब जब कि अुसका नाम बदलनेकी अैसी कोअी ज़रूरत भी साबित नहीं की गअी है। नअी परिषद् पुरानी संस्थाकी ही अुपज है, और वह अुत्तर भारतमें रहनेवाले और अेक ही मादरी ज़बान बोलने-वाले हिन्दू-मुसलमान दोनोंकी ज़रूरियात पूरी करना चाहती है। अुनके लिअे भाषाके नामका अितना महत्त्व नहीं है, भले ही अुसको 'हिन्दी'

कहा जाय या 'हिन्दुस्तानी'। मुझे दोनों ही शब्दोंसे अेक-सा संतोष है। 'हिन्दी' शब्दका प्रयोग करनेवालोंसे मुझे कुछ झगड़ा नहीं है, बशर्ते कि अुनकी भाषा भी वही हो जो मेरी है।

'अखिल भारतीय' लफ़्ज़ोंमें जो भाव है, अुन पर किये गये अेतराज़को मैं नहीं समझ सका हूं। सारे देशके हिन्दू अिसको निश्चय ही समझते हैं। और मैं यह कहनेका भी साहस कर सकता हूं कि अुत्तरमें रहनेवाले ज्यादातर मुसलमान भी अिसे समझ लेंगे। अभी हमारे ज़मानेकी भारतकी सभ्यताको ढांचेमें डाला जा रहा है। हममें से बहुतेरे अिस जतनमें लगे हुअे हैं कि अुन सब सभ्यताओंको अेकमें मिला लिया जाय, जो अिस समय आपसमें टकरा रही हैं। अलग रहनेकी कोशिश करने वाली कोअी भी सभ्यता ज़िन्दा नहीं रह सकती। अिस समय भारतमें अैसी कोअी तहज़ीब बाकी नहीं बची है, जिसे बिलकुल 'पवित्र आर्य सभ्यता' कहा जा सके। आर्य लोग यहांके आदिम निवासी थे, या विदेशी आक्रमणकारी थे, अिस बहससे मुझे कोअी खास मतलब नहीं। मेरा मतलब अितना ही बतानेका है कि मेरे बहुत पुराने पुरखे पूरी आज़ादीके साथ अेक-दूसरेसे मिलते थे, और हम अिस समयकी सन्तान अुसी मिलावटके फल हैं। यह तो आगे आनेवाले दिन ही बता सकेंगे कि अिस परिषद्को जन्म देकर हम अपने देश या अिस छोटी-सी दुनियाकी कुछ भलाअी कर रहे हैं या सिर्फ़ अुनके लिअे भार बन रहे हैं। लेकिन मुझको तो अितना संतोष है कि नअी परिषद् और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, दोनों ही, भारतकी सब भाषाओंकी तमाम अच्छाअीको अेक साथ मिलानेका सुन्दर काम कर सकते हैं। अगर वे अुसे नहीं करेंगे, तो नष्ट हो जायेंगे। पर, मिलानेका यह मतलब हरगिज़ नहीं है कि हम अुनको बिलकुल अलग ही कर दें, जिसमें से अेक-दूसरेकी अपेक्षा आर्यपन, अरबीपन या अंग्रेज़ीपनकी अधिक गन्ध आती है।

अिस बहसको मैं अिस हफ़्ते ज़्यादा बढ़ाना नहीं चाहता। कुछ और भी विचारने लायक़ ज़रूरी बातें हैं। आशा है कि मैं अगले सप्ताह अुन पर विचार कर सकूँगा।

(हरिजनसेवक, १६–५–'३६)

२

गतांकके 'हिन्दी या हिन्दुस्तानी' शीर्षकमें यह तो मैं बतला ही चुका हूँ कि किस तरह और क्यों मैं 'हिन्दी' और 'हिन्दुस्तानी' शब्दोंको समानार्थक समझता हूँ, और क्यों 'हिन्दी' शब्दका अुपयोग जारी रखना ज़रूरी है।

गतांकमें अिस सम्बन्धका जो पत्र अुद्धृत हुआ है, अुसमें 'हिन्दी' शब्दके अिस्तेमाल पर यह अेतराज़ किया गया है — "अगले ज़मानेमें मुसलमान हिन्दी सीखते थे, अुसे अेक अदबी ज़बानकी हैसियत देनेमें अुन्होंने अपने हिन्दू भाअियोंसे ज़्यादा नहीं तो अुतनी ही कोशिश की है। लेकिन अदबी हैसियतके अलावा हिन्दीकी अेक मज़हबी और तहज़ीबी हैसियत है, जिसे मुसलमानोंकी पूरी जमात अपना नहीं सकती। अिसके अलावा, अब वह बहुतसे अल्फ़ाज़ अपने अन्दर शामिल कर रही है, जो बिलकुल अुसीके हैं, और वे लोग जो सिर्फ़ अुर्दू जानते हैं, अुन्हें आम तौर पर समझ नहीं सकते।"

अगर अगले ज़मानेके मुसलमानोंने हिन्दीको सीखा और अुसे अदबी ज़बानकी हैसियत दी, तो मौजूदा ज़मानेके मुसलमान क्यों अुससे किनारा करें? बेशक अुस ज़मानेकी हिन्दीमें आजकी हिन्दीसे कहीं ज़्यादा मज़हबी और तहज़ीबी हैसियत थी। तो क्या किसी भाषाकी मज़हबी और तहज़ीबी हैसियतकी वजहसे ही अुस भाषासे हमें दूर रहना चाहिये? क्या मैं अरबी और फ़ारसीसे अिसलिअे बचूँ कि अुन ज़बानोंकी मज़हबी और तहज़ीबी हैसियत है? अगर मैं अुनसे प्रभावित नहीं होना चाहता या मेरे मनमें अुनके लिअे चिढ़ या नफ़रत है, तो

भले ही मैं अुनसे प्रभावित न होअूं। निस्सन्देह अगर हमें सगे-सहोदरोंकी तरह, जो कि हम हैं, अेक साथ यहाँ रहना है, तो हम अेक-दूसरेकी तहज़ीब या संस्कृतिसे क्यों कतरायें? और खुद भाषाके खिलाफ़ बग़ावत खड़ी करके संस्कृत शब्दोंके अिस्तेमाल पर क्यों झगड़ा करें? सीधे-सादे प्रचलित शब्दोंकी जगह संस्कृत शब्द रखने या तद्भव शब्दोंको संस्कृत तत्सम शब्दोंके रूप देनेका कृत्रिम तरीक़ा निस्सन्देह निन्दनीय है। अिससे तो भाषाकी सहज मिठास ही चली जाती है। मगर राष्ट्रके विकासके साथ-साथ केवल संस्कृत जाननेवाले हिन्दू संस्कृत शब्दोंका अेक हद तक अुपयोग करते हैं, तो अुनका अैसा करना अनिवार्य है। सिर्फ़ अरबी जाननेवाले मुसलमान भी यही करते हैं, हालां कि दोनों लिखते अेक ही ज़बान हैं, और अिसमें अुनकी कोअी खास पसन्दगी या नापसन्दगीकी बात नहीं है। पढ़े-लिखे हिन्दुओं और मुसलमानोंको भाषाके दोनों ही रूपोंका परिचय प्राप्त करना पड़ेगा। क्या अंग्रेज़ी आदि सभी अुन्नतिशील भाषाओंके बारेमें यह बात सच नहीं है? कठिनाअी तो हमारे लिअे यह है कि आज हमारे दिल अेक नहीं हैं, और हममें से अच्छे-से-अच्छे लोगों पर भी आपसी सन्देहके ज़हरने असर डाल रखा है।

हिन्दी, हिन्दुस्तानी और अुर्दू अेक ही भाषाके मुख्तलिफ़ नाम हैं। हमारा मतलब आज अेक नअी भाषा बनानेका नहीं है, बल्कि जिस भाषाको हिन्दी, हिन्दुस्तानी और अुर्दू कहते हैं, अुसे अन्तर्प्रान्तीय भाषा बनानेका हमारा अुद्देश्य है। मैं मानता हूँ कि श्री कन्हैयालाल मुन्शीने 'हंस' की भाषाके समर्थनमें जो कहा है, वह सही है। तामिल या तेलगूकी किसी चीज़का अुल्था आप हिन्दी या हिन्दुस्तानीमें करें, और अुनमें संस्कृत शब्द न आयें, यह हो नहीं सकता; अुनका आना क़रीब-क़रीब लाज़िमी है, क्योंकि अुनमें संस्कृत शब्द बहुत ज़्यादा हैं। यही हाल अरबी लफ़्ज़ोंका है। अरबीकी किसी चीज़का तरजुमा अगर हम हिन्दी या हिन्दुस्तानीमें करने बैठें, तो अुसमें अरबी

शब्दोंको आनेसे हम रोक नहीं सकते। रवीन्द्रनाथकी 'गीतांजलि' के हिन्दी या हिन्दुस्तानी अनुवादमें अगर संस्कृत शब्दोंको, जिनकी कि बंगाली भाषामें भरमार है, अिरादतन् बचाया जाय, तो अुसमें जो लालित्य या माधुर्य है, वह बहुत कम हो जायगा। अगर मौलवी अब्दुल हक़ साहब और आक़िल साहब जैसे साहित्यिक मुसलमान चाहते हैं कि आम ज़बानको सिर्फ़ हिन्दुओं द्वारा बोली जानेवाली भाषाका रूप लेनेसे बचाना ज़रूरी है, तो अुन्हें अिसमें अपना खास योग देना होगा। अगर मैं हटा सकूँ, तो मैं अुनके दिमाग़ोंसे अुर्दू रूपको खालिस मुसलमानोंकी ज़बान माननेका ख़याल हटा दूँ, जिस तरह कि मैं साहित्यिक हिन्दुओंका यह खयाल दूर कर दूँ कि हिन्दी तो सिर्फ़ हिन्दुओंकी ही भाषा है। अगर दोनोंके दिलोंसे यह खयाल जुदा नहीं होता, तो अुत्तर भारतके हिन्दुओं और मुसलमानोंकी कोअी आम ज़बान नहीं बन सकती, फिर अुसे आप चाहे किसी भी नामसे पुकारें। अिसलिअे यहाँ हमें कम-से-कम नामके अूपर झगड़नेकी ज़रूरत नहीं। अगर पूरी सच्चाओके साथ आपका मतलब अेक ज़बानका है, तो आप अुसे चाहे जो नाम दे सकते हैं।

अब सवाल लिपिका रहता है। मुसलमान देवनागरी लिपिमें ही लिखें, अिस पर हमें आज विचार नहीं करना है। और, यह और भी कम विचारणीय है कि अिस पर ज़ोर दिया जाय कि हिन्दुओंके विशाल जन-समूहको अरबी लिपि अवश्य स्वीकार कर लेनी चाहिये। अिसलिअे हिन्दी या हिन्दुस्तानीकी मैंने यह व्याख्या की है कि जिस भाषाको आम तौर पर अुत्तर भारतके हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं, वह भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानी है, चाहे वह देवनागरी अक्षरोंमें लिखी जाय, चाहे अुर्दू खतमें। अिसकी मुख़ालिफ़त भी हुअी है, तो भी मैं अपनी अिस व्याख्या पर क़ायम हूं। लेकिन अिसमें शक नहीं कि देवनागरी लिपिका अेक आन्दोलन चल रहा है, जिसका साथ मैं हृदयसे दे रहा हूँ। और, वह यह है कि विभिन्न प्रान्तोंमें—ख़ासकर जिन प्रान्तोंमें संस्कृत

शब्दोंका बहुत ज्यादा अुपयोग होता है — बोली जानेवाली तमाम भाषाओंके लिअे देवनागरी लिपिको सामान्य लिपि मान लिया जाय। सो कुछ भी हो; अिस तरह हिन्दुस्तानकी तमाम भाषाओंके अूंचे-से-अूंचे बहुमूल्य साहित्यको देवनागरी लिपिमें लिखनेका प्रयत्न किया जा रहा है।

(हरिजनसेवक, २३–५–'३६)

३

परिशिष्ट

[अध्यायके आरम्भमें 'अेक आदरणीय मित्र' के जिस पत्रका ज़िक्र है, अुसका खास हिस्सा नीचे दिया गया है।]

. . . कअी सालसे कांग्रेस अिसका प्रचार कर रही है कि हमारी क़ौमके सियासी हौसलोंको सहारा देनेके लिअे अेक क़ौमी ज़बान भी होनी चाहिये। अगर ज़बानके लिहाज़से देखिये तो अिस खयालकी वजहसे बहुतसे मुक़र्रिर तरह-तरहके गुनाहोंमें मुबतिला हो गये हैं। लेकिन मैं जानता हूं कि अुर्दूके अदबी हलक़ोंमें अिसने ज़बानको सादा और घरेलू बनानेका शौक़ पैदा किया है, जो पहले नहीं था। मौलाना सैयद सुलेमान नदवी जैसे लिखनेवाले, जिनकी सारी अुम्र अरबी किताबें पढ़ते गुज़री है, और जो अैसे मज़मूनों पर लिखते हैं, जिनकी अिस्तिलाहें बदलना अेक बेअदबी है, अुन्होंने भी बड़े जोशके साथ अपनी ज़बानको सादा और हिन्दुस्तानी बनानेकी कोशिश शुरू कर दी, अिसलिअे कि क़ौमी ज़बानका खयाल अुनको बहुत अज़ीज़ था।

कांग्रेसी हलक़ोंमें यह क़ौमी ज़बान हिन्दुस्तानी कहलाती थी, लेकिन कांग्रेसने अुर्दू और हिन्दी बोलनेवालोंसे अिस नामके बारेमें कोअी समझौता नहीं किया था। आप जानते हैं कि सियासी और समाजी ज़िन्दगीमें नामोंका बड़ा असर होता है, क्योंकि नामके साथ

बहुतसी बातें याद आ जाती हैं। अिस वजहसे यह अेक बहुत बड़ा मसला है कि हम अपनी क़ौमी ज़बानका नाम क्या रखेंगे? अभी तक अुर्दू ही अेक ज़बान थी, जो किसी अेक सूबेकी या किसी अेक मज़हबकी भाषा नहीं थी। हिन्दुस्तान भरके मुसलमान अुसे बोलते हैं, और शुमाली हिन्दुस्तानमें अुर्दू बोलनेवाले हिन्दुओंकी तादाद मुसलमानोंसे ज़्यादा है। अगर हमारी क़ौमी ज़बान अुर्दू नहीं कहला सकती, तो कम-अज़-कम अुसका नाम अैसा होना चाहिये, जिससे यह ज़ाहिर हो कि मुसलमानोंने अेक अैसी ज़बान बनानेकी खास कोशिश की, जो क़रीब-क़रीब क़ौमी ज़बान कही जा सकती है। 'हिन्दुस्तानी' से यह मतलब पूरा हो सकता है, 'हिन्दी' से नहीं हो सकता। अगले ज़मानेमें मुसलमान हिन्दी सीखते थे, अुसे अेक अदबी ज़बानकी हैसियत देनेमें अुन्होंने अपने हिन्दू भाअियोंसे ज़्यादा नहीं तो अुतनी कोशिश तो की ही थी। लेकिन अदबी हैसियतके अलावा हिन्दीकी अेक मज़हबी और तहज़ीबी हैसियत है, जिसे मुसलमानोंकी पूरी जमात अपना नहीं सकती। अिसके अलावा, अब अुसने बहुतसे अैसे अल्फ़ाज़ अपने अन्दर शामिल कर लिये हैं, जो बिलकुल अुसीके हैं, और वह लोग जो सिर्फ़ हिन्दी जानते हैं, अुन्हें आम तौर पर समझ नहीं सकते।

अिस बात पर ज़ोर देना बेजा होता, अगर अिस वक़्त हिन्दी और हिन्दुस्तानीको अेक, मगर अुर्दू और हिन्दुस्तानीको अलग ज़बान ठहरानेकी तरफ़ अेक खास मैलान न होता। पिछले साल आपने अिन्दौरमें जो तक़रीर की थी, अुससे यह साफ़ ज़ाहिर होता था कि आप हिन्दी और हिन्दुस्तानीको अेक समझते हैं, और 'हंस'-के पहले नम्बरके लिअे आपने जो प्रस्तावना लिखी थी, अुसमें दोनों ज़बानोंको अेक बताया है। मैं जानता हूँ कि हिन्दीसे आपका मतलब आम लोगोंकी ज़बान है—वह ज़बान जो वह बोलते हैं, और जो अुनकी तालीमका सबसे अच्छा ज़रिया बन सकती है। लेकिन बहुतसे लोग जो हिन्दीका प्रचार कर रहे हैं, अुनको अिस ज़बानसे कुछ मतलब

नहीं। वे जब 'हिन्दुस्तानी' की जगह 'हिन्दी' कहते हैं, तो बस अेक नामकी जगह दूसरा नाम ही नहीं ले लेते, बल्कि अेक पूरी लुग़त (कोश) ही सियासी और मजहबी ख़यालातकी जगह धर देते हैं। मैं आपकी अदालतमें अिस मैलानके खिलाफ़ फरियाद करने आया हूँ, अिसलिअे कि मुझे जान पड़ता है कि भारतीय साहित्य-परिषद् भी अिसी मैलानका शिकार हुआी है।

मैं अुन लोगोंमें से हूँ जिन्हें परिषद्के क़ायम होनेसे बड़ी खुशी हुआी, अिसलिअे कि मैं समझता था कि अब हमारी क़ौमी ज़बानकी बुनियाद बहुत मजबूत हो जायगी। 'हंस' शाया हुआ तभी मैं बहुत खुश हुआ। मुझे परिषद्के और कामों पर अेतराज़ नहीं करना है, लेकिन अगर 'हंस' के परचोंसे अुसके रवैयेका कोअी अन्दाज़ हो सकता है, तो मैं कहूँगा कि मुझे बड़ी मायूसी हुआी। मुंशी प्रेमचन्द साहिब आजकल हमारी अदबी दुनियाके शायद सबसे बड़े आदमी हैं। वे अुन नायाब लोगोंमें से हैं, जिनके लिअे अदब और ज़बान अपने दिलकी बात कहने और देशकी सेवा करनेका अेक तरीक़ा है। वे अुर्दू और हिन्दी दोनोंके अुस्ताद हैं, और अुनमें हिन्दुओं और मुसलमानों दोनोंके बेहतरीन अदबी और समाजी हौसले मिलते हैं। 'हंस' को अुस ज़बानमें होना चाहिये था, जो यह लिखते हैं और अुन बातोंका नमूना बनाना चाहिये था, जो हमें अिनमें दिखाअी देती हैं। अैसा नहीं हुआ है, और अिसीकी मुझे शिकायत है। 'हंस' पढ़नेसे यह खयाल होता है कि यह किसी खास मज़हबी समाजका रिसाला है। अुसकी ज़बानमें दूसरे हिन्दी रिसालोंसे ज्यादा संस्कृतके अल्फ़ाज़ मिलते हैं, और अिस ज़बानको हिन्दुस्तानी कहना वैसा ही होगा, जैसे अुसको अंग्रेज़ी कहना। अुसके नुक़्तेनज़रमें और अुसके मज़मूनोंमें कोअी अैसी बात नहीं है कि जिससे पता चले कि हिन्दुस्तानी क़ौम अेक समाज है, जो बहुतसे समाजोंसे बना है, या यह कि हिन्दुस्तानमें अेक तहज़ीबके अलावा कोअी और तहज़ीब भी है। यह तो मेल न हुआ, हुकूमत हुअी।

अेक ज़रा-सी वात मेरा मतलव ज़ाहिर कर देगी—साहित्य-परिषद् 'भारतीय' कहलाती है, 'हिन्दुस्तानी' नहीं। अैसा क्यों है? अगर भारतके कोअी माने हैं, तो आर्योंका हिन्दुस्तान है, जिसमें अेक मुसलमानों और अुनकी खिदमतके लिअे ही नहीं, वल्कि सदियोंकी तरक्की और तवदीलीके लिअे कोअी जगह नहीं। क्या अिससे यह नतीजा नहीं निकलता कि अिस परिषद्में ग़ैरोंकी ज़रूरत नहीं है, और अुसे आजकलके ज़मानेसे मतलव नहीं वल्कि वह अेक वहुत पुराने ज़मानेको दुवारा वापस वुलाना चाहती है? फिर आप देखिये कि हिन्दीमें जो गश्ती चिट्ठियाँ हमें भेजी गअी हैं, अुनमें वोलचालकी ज़वानके लफ़्ज़ दो-तीनसे ज़्यादा नहीं हैं, और मामूली हिन्दी 'नीचे लिखे हुअे' की जगह खालिस संस्कृत लफ़्ज़ 'निम्न लिखित' अिस्तेमाल किया गया है। मैं नागरी खत अच्छी तरहसे पढ़ लेता हूँ, लेकिन ये गश्ती चिट्ठियाँ मेरी समझमें नहीं आअीं।

यह वात तो खुली हुअी है कि संस्कृत और अरवी दोनोंमें अिस्तिलाहोंका वड़ा खज़ाना है, लेकिन हिन्दुस्तानकी ज़वान यह नहीं कर सकती कि अेकको काममें लाये और दूसरेको छोड़ दे, अिसलिअे कि अरवी अेक विदेशी ज़वान है, तो संस्कृत कभी वोलचालकी ज़वान नहीं थी। और, जो वोलचालकी हिन्दीके लफ़्ज़ोंको ग़ौरसे देखेगा, अुसे मालूम होगा कि अिनमें से जो संस्कृत लफ़्ज़ हैं, वे ज़मानेके साथ वहुत कुछ वदल गये हैं, क्योंकि अुन्हें ज़वानसे वोलनेमें दुश्वारी होती है, अेक मुसलमानों ही को नहीं, वल्कि आम लोगोंको भी। आप देखेंगे कि 'ग्राम' और 'वर्ष' जैसे छोटे-छोटे लफ़्ज़ वदलकर 'गाँव' और 'वरस' हो गये हैं। हिन्दीके वहुतसे प्रचारक अिन वातोंको भूल जाते हैं। अुन्होंने हिन्दीके अिन शब्दोंकी जगह असल संस्कृतके लफ़्ज़ लिखना शुरू किया है। मालूम नहीं, अपनी क़ाविलियत दिखानेके लिअे या अनजानी या अिस तास्सुवके सववसे कि संस्कृतके जो लफ़्ज़ वोलचालमें आये हैं, अुन सवको अुर्दूने अपनेमें शामिल कर लिया। लेकिन यह वात ज़ाहिर है कि हमारे ये दोस्त जिन्दा वोलचालकी ज़वानको फैलाना

नहीं चाहते, बल्कि अुनकी नीयत हिन्दुस्तानी जिन्दगी पर पुराना आर्यायी रंग चढ़ाना है। हमारे हिन्दू भाअी अपनेको सुधारनेकी कोशिश करें या किसी पुराने ज़मानेको दुबारा जिन्दा करनेकी, तो अुसमें मुसलमानोंको दख़ल देनेका कोअी हक़ नहीं। लेकिन यह तो अीमानदारीकी बात है कि अैसी तहरीकें ज़बानके मसलेसे बिलकुल अलग रखी जायें।

मेरे अेक दोस्त आक़िल साहबके ख़तके जवाबमें श्री के० अेम० मुन्शी लिखते हैं कि 'गुजरातियों, मरहठों, बंगालियों और केरलवालोंने अदबी क़ायदे और रस्में बनाअी हैं, जिनमें ख़ालिस अुर्दूका क़रीब-क़रीब कोअी असर नहीं। अगर हम बोलेंगे, तो यह क़ुदरती बात है कि यह हिन्दी संस्कृतके रंगमें डूबी होगी।' अव्वल तो मुझे ठीक मालूम है कि गुजराती, मराठी, और बंगालीमें बहुतसे फ़ारसी लफ़्ज़ हैं, और मैं यह मानने पर तैयार नहीं हूँ कि गुजरातियों और बंगालियोंको अेक दूसरेसे और मुसलमानोंसे मेल-मिलाप करनेके लिअे अपनी ज़बान पर संस्कृतका रंग चढ़ाना ज़रूरी है। अिसके अलावा, हमें तो यहाँ ख़ालिस अुर्दूसे मतलब नहीं, बल्कि शुमाली हिन्दुस्तानकी बोलचालकी ज़बान और अुसके मुहावरोंसे है। अगर यह जिन्दा बोलचालकी ज़बान हमारी क़ौमी ज़बानकी बुनियाद ठहराअी जाय, तो मुसलमानोंका अिस कोशिशमें शरीक होना कारआमद हो सकता है। संस्कृतकी तरफ़ वापस जानेसे यह मतलब निकलता है कि अुन्होंने हिन्दी, गुजराती और बंगालीके लिअे जो कुछ किया है, वह भुला दिया जायगा। अैसी सूरतमें हमसे यह कहना कि अिस काममें तुम हमारे साथ शरीक हो, समझिये यह कहना है कि अपनी ख़ुदकुशीमें शरीक हो।

बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डनने 'हिन्दी म्यूज़ियम' के पहले जलसेमें जो तक़रीर की थी, अुसे पढ़कर मुझे यह अंदेशा हुआ कि अुर्दू-हिन्दीका सवाल हिन्दुओं और मुसलमानोंके दरमियान फ़साद पैदा करनेवाला है। अुन्होंने फ़रमाया था कि "चीनीके बाद हिन्दी अेशियाकी वह ज़बान है, जिसके

बोलनेवाले तादादमें सबसे ज़्यादा हैं।" दूसरे अल्फ़ाज़में अिसके मानी यह हैं कि क़ौमी ज़बानका मसला तय हो गया। यह ज़बान हिन्दी होगी, अिसलिअे कि हिन्दुस्तानमें हिन्दी बोलनेवाले ज़्यादा हैं। हिन्दुस्तानीके लिअे जो लोग शोर मचा रहे हैं, वे अितने थोड़े हैं कि हम अुनको दबा लेंगे। अिसलिअे अुनका खयाल करनेकी ज़रूरत नहीं। लेकिन सरोंको गिनना वैसा ही ग़लत अिलाज है, जैसा सरोंको फोड़ना। टण्डन साहिबका मतलब कुछ भी हो, मुझे जान पड़ता है कि हम अैसी ही कोअी बेअिज़्ज़तीके लिअे ज़मीन तैयार कर रहे हैं, जैसी कि वह 'कम्यूनल अेवार्ड' थी। अिस वक़्त बस आपकी शोहरत, और मुल्कमें आपका जो अेतबार है, वही हमको बचा सकता है। मैं नीचे चन्द बातें लिखता हूँ, जो मेरी नाचीज़ रायमें समझके खिलाफ़ नहीं हैं, और अेक क़ौमी ज़बानकी मज़बूत बुनियाद बन सकती हैं। अगर आप अुन पर ग़ौर करें, और अुन्हें किसी लायक़ समझें, अेक अपने ही खयालमें नहीं, बल्कि अुस बड़े कामको देखते हुअे, जिसमें मदद करना अुनका मक़सद है, तो आप अुन्हें दूसरों तक भी पहुँचा सकते हैं। जिस चीज़का अिस वक़्त मैं सपना देख रहा हूँ, वह तो यह है कि आप अिन्हींकी बिना पर अेक अैलान अपनी तरफ़से शाया करें। वे बातें ये हैं —

(१) हमारी क़ौमी ज़बान हिन्दी नहीं कहलायेगी, बल्कि हिन्दुस्तानी;

(२) हिन्दुस्तानीका किसी अेक मज़हबी समाजके विरसेसे सम्बन्ध न होगा;

(३) अिस ज़बानके लफ़्ज़ोंमें यह न देखा जायगा कि कौन देशी हैं, कौन विदेशी, बल्कि यह देखा जायगा कि किसका रिवाज है, किसका नहीं;

(४) अुर्दूके हिन्दू लिखनेवालों और हिन्दीके मुसलमान लिखनेवालोंने जो लफ़्ज़ अिस्तेमाल किये हैं, वे सब रायज माने जायँगे। लेकिन अुर्दू और हिन्दीकी जो मज़हबी हैसियत है, अुस पर अिस क़ायदेका कोअी असर न पड़ेगा।

(५) अिस्तिलाहें और खास तौर पर सियासी अिस्तिलाहें तजवीज करते वक्त संस्कृतके लफ़्ज़ अिसीलिअे पसन्द न किये जायेंगे कि वह संस्कृत है, बल्कि अुर्दू, हिन्दी और संस्कृतके लफ़्ज़ोंमें से लोगोंको चुनने और पसन्द करनेका पूरा मौक़ा दिया जायगा।

(६) देवनागरी और अरबी खत दोनों रायज और सरकारी समझे जायेंगे, और अुन तमाम संस्थाओंमें, जिनका रवैया हिन्दुस्तानीके प्रचारकोंके असरमें है, दोनों खत सीखनेका अिन्तज़ाम होगा।

बहुतसे दोस्त होंगे जिनको यह तजवीज़ें मुसलमानोंका मुतालबा मालूम होंगी। अैसा नहीं है। लेकिन मैं जानता हूँ कि अगर आपकी और परिषद्की तरफ़से अैसी-अैसी अितमीनान दिलानेवाली बातें न हुआीं, तो मुसलमानोंकी अदबी कोशिशें क़ौमी ज़बान बनानेके लिअे काम न आयेंगी। अिसी खयालसे मैंने यह तजवीज़ें आपकी ख़िदमतमें पेश की हैं। अगर ये बेजा हैं, तो मैं जानता हूँ कि आप मेरी खता माफ़ कर देंगे, और अगर वे अैसी हैं कि मुझे अुन्हें पेश करनेका हक़ नहीं था, तो आप नाराज़ न होंगे। मेरी तो ख्वाहिश बस यह थी कि अपना फ़र्ज़ अदा करूँ और आपके सामने यह मसला पेश करके दिखाअूँ कि मुझे आपकी राय पर कितना भरोसा है, और आपकी अिन्साफ़-पसन्दगी और रवादारी पर कितना अेतबार है।

(हरिजनसेवक, १६–५–'३६)

२१

ग़लतफ़हमियोंकी गुत्थी

मेरे सामने कअी अुर्दू अखबारोंकी कतरनें पड़ी हैं, जिनमें हालमें बनी हुअी 'अखिल भारतीय साहित्य-परिषद्' की कार्रवाअीकी, और साथ ही, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, पं० जवाहरलाल नेहरूकी और मेरी बहुत सख्त और कड़वी आलोचना की गअी है। हम पर यह अिलज़ाम लगाया गया है कि अिसमें हमारा कुछ छिपा हुआ मतलब है, जिसका जहाँ तक मुझे मालूम है, हमें पता तक नहीं। लिखनेवालोंने यह समझनेकी तकलीफ़ गवारा नहीं की कि हमने परिषद्में क्या कहा और क्या किया था। अुनका यह खयाल है कि परिषद्की अन्दरूनी मंशा यह है कि अुर्दूको हटाकर अुसकी गद्दी हिन्दीको दे दी जाय, और अुसे संस्कृतके शब्दोंसे अिस क़दर लाद दिया जाय कि मुसलमानोंके लिअे अुसका समझना क़रीब-क़रीब असम्भव हो जाय। बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डनने अिलाहाबादमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका संग्रहालय खोले जानेके मौक़े पर जो तक़रीर की थी, अुससे ये लोग यह नतीजा निकालते हैं कि अुनके अिस दावेमें कि २३ करोड़ हिन्दुस्तानी हिन्दी बोलते हैं या कम-से-कम समझ तो लेते ही हैं, सचाअीका गला घोंट दिया गया है। अिन लेखोंमें अितना ही नहीं कहा गया, कुछ और भी ताने दिये गये हैं। पर अुनकी तरफ़ मुझे ध्यान देनेकी ज़रूरत नहीं। मेरा मतलब तो सिर्फ़ यह है कि अगर हो सके, तो अुन ग़लतफ़हमियोंको दूर कर दूं, जिनकी वजहसे हम लोगों पर ये कटाक्ष किये गये हैं।

पहले आखिरी बात ले लूं। अिन लेखकोंके पास टण्डनजीकी पूरी तक़रीर होती, तो अिन्हें यह पता चल जाता कि अिन २३ करोड़ हिन्दुस्तानियोंमें अुन्होंने जान-बूझकर अुर्दू बोलनेवाले हिन्दू और

मुसलमानोंको शामिल किया था। जिसीसे अुन्होंने हिन्दी शब्दके प्रयोगमें अुर्दूको शामिल कर लिया था। सन् १९३५ में अिन्दौरके साहित्य-सम्मेलनमें जो प्रस्ताव पास हुआ था, अुसके मुताबिक़ हिन्दीका मतलब अुस ज़बानसे था, जिसे अुत्तर हिन्दुस्तानमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बोलते हैं, और जो देवनागरी या फ़ारसी लिपिमें लिखी जाती है। अगर लेखकोंको यह व्याख्या मालूम होती, तो अुन्हें किसी तरहकी शिकायत न होती — हां, अगर हिन्दी लफ़्ज़ पर ही अुन्हें शिकायत हो, तो बात दूसरी है। अगर अुन्हें 'हिन्दी' नामसे ही चिढ़ हो, तो वह दुःखकी बात है। अुत्तर हिन्दुस्तानमें बोली जानेवाली भाषाके लिअे 'हिन्दी' ही मूल शब्द है। अुर्दू नाम तो — जैसा कि सब अच्छी तरह जानते हैं — ख़ास तौरसे और ख़ास मतलबसे रखा गया था। अरबी लिपि भी मुसलमान शासकोंके सुभीतेके लिअे रखी गअी थी। अितिहासका अगर यही क्रम है, तो जब तक 'हिन्दी' शब्द दोनों ज़बानोंके लिअे काममें आता है, अुसका प्रयोग करनेमें कोअी मुखालिफ़त नहीं होनी चाहिये। ख़ैर, जो कुछ भी हो, ज़्यादा-से-ज़्यादा जो मतभेद है, वह यही रह जाता है कि अेक ही चीज़के लिअे दो शब्दोंमें से कौनसा शब्द काममें लाया जाय। हिन्दीको संस्कृत शब्दोंसे लाद देनेमें कुछ सचाअी तो है। हिन्दीके कुछ लेखक अपने लेखोंमें बेमतलब संस्कृत शब्द ठूंसनेका हठ करते हैं। पर अिसी तरहकी शिकायत अुन अुर्दू लेखकोंके खिलाफ़ भी की जा सकती है, जो फ़ारसी या अरबी लफ़्ज़ोंके अिस्तेमाल पर व्यर्थ ज़ोर देते हैं। जिससे भी बुरी बात यह है कि वे भाषाका व्याकरण बदल देते हैं। ये दोनों ही तरहकी ज़्यादतियां कुछ ही समयमें गायब हो जायेंगी, क्योंकि साधारण जनता अैसी भाषाको कभी अपना नहीं सकती। जिस ज़बानको आम जनता नहीं समझ सकती, अुसकी अुम्र लम्बी नहीं हो सकती।

रही भारतीय परिषद्, सो अुसकी मंशा तो भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके अच्छे-अच्छे विचारोंको पुस्त हिन्दी भाषाके द्वारा सारे भारतके लिअे सुलभ

बनाना है। अिसमें, जैसा कि कुछ लेखोंमें ताना दिया गया है, हमारी कोअी छिपी हुअी मंशा या साम्प्रदायिक बात नहीं है।

'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' शब्द तो मेरे कहनेसे अपनाया गया था। यह शब्द तो हिन्दीकी परिभाषा अेक संयुक्त शब्दके द्वारा बतलानेके लिअे रखा गया था। मौलवी अब्दुल हक़ साहबने 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' की जगह सिर्फ़ 'हिन्दुस्तानी' या 'हिन्दी-अुर्दू' के प्रयोगका प्रस्ताव रखा था। मुझे तो अिन दोनोंमें कोअी अेतराज़ नहीं है, लेकिन भारतीय साहित्य-परिषद् अपने जन्मको भूल नहीं सकती थी। परिषद्का विचार तो अिन्दौरके साहित्य-सम्मेलनमें अुठा था, और नागपुरमें सम्मेलनकी संरक्षता ही में अुसने अेक निश्चित रूप धारण किया। अिसीलिअे हिन्दी शब्दका रखना ज़रूरी हो गया। अिसकी जगह अुर्दू शब्दके रखनेमें जो बुराअी होती, अुसकी वजह तो मैं बतला ही चुका हूँ। लेकिन मैं यह दिखलानेकी कोशिश कर चुका हूँ कि 'हिन्दी', 'हिन्दुस्तानी', और 'अुर्दू' अेक ही अर्थ प्रकट करनेवाले मुस्तलिफ़ शब्द हैं। और अुनसे अेक ही भाषा या ज़बानका मतलब निकलता है।

(हरिजनसेवक, १–८–'३६)

२२

और भी ग़लतफ़हमियाँ

सत्य-शोधकको किसीको खुश करनेके लिअे ही लिखना या बोलना पुसा नहीं सकता। जिन-जिन बातोंसे मुझे वास्ता पड़ा है, अुन सभीमें सत्यकी शोध करते हुअे मुझे काफ़ी लम्बा अरसा हो गया है। मगर मैं जानता हूँ कि समय-समय पर अुपस्थित होनेवाले मामलोंमें मैं सबको यह समझा नहीं सका हूँ कि मैं जो कहता हूँ, या करता हूँ वह सही भी है। हिन्दी-प्रचारको ही लीजिये। अिस बारेमें जहाँ कुछ मुसलमान दोस्त मुझसे नाखुश हैं, वहाँ हिन्दू मित्र भी कम असन्तुष्ट नहीं। पर जब तक मेरे टीकाकार मुझे अपनी भूलका विश्वास न करा दें, तब तक अुन्हें यह आशा नहीं रखनी चाहिये कि सिर्फ़ अुनके चाहनेभरसे मैं अपनी राय बदल दूँगा। अेक सज्जनने तो मुझे सचमुच ही यह लिखा है कि अगरचे तर्क और अितिहासकी दृष्टिसे मेरी स्थिति सही है, फिर भी मुझे मुसलमान आलोचकोंको सन्तुष्ट करने लिअे अपनी राय बदल लेनी चाहिये। यह आलोचक चाहते हैं कि अेक ही भाषाका परिचय देनेके लिअे या तो मैं 'हिन्दी-अुर्दू' शब्दके प्रयोगका समर्थन करूँ, या सिर्फ़ अुर्दूका। अिनका अेतराज़ भाषा पर नहीं है, बल्कि नाम पर है, और नाम भी वह, जो अब तक चला आ रहा है।

मुझे अेक और पत्र मिला है। अुसमें झगड़ा दूसरे दृष्टिकोणसे है, और वह है, अुस भाषणके सम्बन्धमें, जो मैंने हाल ही बंगलौरमें हिन्दी-प्रचार-पदवीदान-समारम्भ पर दिया था। पत्र लम्बा है। मैं यहाँ अुन्हीं अंशोंको देता हूँ, जिनका विषयसे अधिक-से-अधिक सम्बन्ध है।

"बंगलौरमें दिये हुअे पदवीदान-समारम्भके भाषणमें आपने कहा है कि भारतके २० करोड़ मनुष्योंसे सम्पर्क स्थापित करनेके लिअे

कर्नाटकके १ करोड़ १० लाख नर-नारियोंको अुनकी भाषा हिन्दी सीखनी चाहिये। यह बात आपने अुन्हींके लिअे नहीं कही, जो मातृभाषा पढ़ चुके हैं। अगर हम यह मान लें कि सब लोग मातृभाषा अच्छी तरह जानते हैं, तो भी न तो यह संभव है, और संभव हो भी तो वांच्छनीय नहीं है, और न स्वाभाविक ही है कि आम जनता मातृभाषाके सिवा दूसरी अेक भाषा और सीखे। राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता, व्यापारी और दूसरे लोग, जो अुत्तर भारतवासियोंके सम्पर्कमें आते हैं, वे ही हिन्दी सीख सकते हैं, और अुन्हींको सीखनी चाहिये। वे तो विना किसी प्रचारके भी, आवश्यकतावश ही, यह भाषा सीख लेंगे।

"आप कहते तो हैं कि हिन्दी प्रान्तीय भाषाओंके स्थान पर नहीं, वल्कि अुनके साथ-साथ सीखी जाय। पर अैसा हो नहीं रहा है। तामिलनाड़के अधिकांश शिक्षित लोग तामिलके वजाय अंग्रेज़ीमें सोचते हैं, और महसूस भी करते हैं। वे तामिलकी पूरी अुपेक्षा करते हैं। वे अंग्रेज़ी सभ्यताके किस हद तक ग़ुलाम हो चले हैं, यह हम अिसीसे समझ सकते हैं कि सार्वजनिक सभाओं और दूसरी जगहोंमें भी वे गर्वके साथ अुच्च स्वरसे कहते हैं कि वे तामिलमें न तो वोल सकते हैं, और न लिख सकते हैं, पर अंग्रेज़ीमें वे ये दोनों काम वड़ल्लेसे कर सकते हैं। अुनमें से कुछ लोग हिन्दीका अध्ययन भी तामीलकी अपेक्षा अंग्रेज़ीकी मददसे अधिक करने लगे हैं। नतीजा अेक ही होगा। अंग्रेज़ीके वजाय वे हिन्दीमें सोचने लगेंगे। अगर कोअी गुजराती भाअी आपसे कहे कि वह गुजरातीमें तो नहीं, पर हिन्दीमें सुन्दर निवन्ध लिख सकता है, तो आपको अुस पर अफ़सोस ही होगा। आपको लगेगा कि देश अभी पूर्ण स्वराज्यसे दूर है। तामिलनाड़में वहुतेरे लोग कहने लगे हैं कि वे तामिलसे हिन्दी अच्छी जानते हैं।

"दूसरी भाषा देववाणी भी हो, तो भी अपनी मातृभाषाको हानि पहुँचाकर हमें अुसे नहीं सीखना चाहिये। हिन्दीके अन्य समर्थकोंको अिस

सम्बन्धमें मैं आपकी ही मिसाल दिया करता था। आप कहते तो हैं कि हिन्दी भारतकी राष्ट्रभाषा है, पर न तो अपनी 'आत्म-कथा' ही आपने हिन्दीमें लिखी है, और न दक्षिण अफ्रीकाका अितिहास ही। दोनों पुस्तकें गुजरातीमें लिखी हैं। अगर आप हिन्दीमें लिखते, तो बहुत अधिक लोगोंको आपकी बात आपके ही शब्दोंमें जाननेको मिलती। पर आपने दोनोंको ही गुजरातीमें लिखना पसन्द किया। हालांकि अिस मामलेमें आपका अुपदेश और अुदाहरण भिन्न हैं, तो भी मैं आपके अुदाहरणको ही ठीक समझता हूँ, और चाहता हूँ कि लोग आप जो कहते हैं अुसे न मानकर आप जो करते हैं अुनका अनुसरण करें।

"स्वराज्यका अर्थ यह नहीं होना चाहिये कि भिन्न-भिन्न भाषाके बोलनेवालों पर अेक ही भाषा लाद दी जाय। प्रथम स्थान मातृभाषाको ही मिलना चाहिये। भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दीको गौण स्थान ही देना चाहिये। सच्ची प्रेरणा और प्रगति तो मातृभाषासे ही मिल सकती है और हो सकती है।

"अब मैं लिपिका प्रश्न लेता हूँ। अभी, १९३५ के 'हरिजन' में अिन्दौरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके प्रस्तावों पर लिखते हुअे आपने अुर्दू लिपिका पक्ष लिया है, यह मेरी समझमें नहीं आया। बंगलौरके भाषणमें भी आपने अुर्दू लिपिके प्रति अपना वही पक्षपात प्रकट किया है। आप तो संस्कृतसे निकली हुअी या अुससे काफ़ी प्रभावित हुअी समस्त भारतीय भाषाओंकी लिपियाँ नष्ट करके अुनकी जगह देवनागरीको समासीन कर देना चाहते हैं, ताकि जो लोग वे भाषायें सीखना चाहें, वे अिसी लिपि द्वारा सीखें। हिन्दू और मुसलमान दोनों जिस अेक ही भाषाको बोलते हैं, अुसके लिअे आप देवनागरी और अुर्दू दोनों लिपियाँ क़ायम रखना चाहते हैं, और दूसरे करोड़ों लोग, जो दुर्भाग्यसे जुदी-जुदी भाषायें बोलते हैं, वे अपनी लिपियाँ नष्ट हो जाने दें, अुनकी जगह देवनागरीको दे दें, और हिन्दी-हिन्दुस्तानी भाषा और अुर्दू लिपि सीखकर १३ करोड़ हिन्दुओं और ७ करोड़ मुसलमानोंको

समझने और अुनके सम्पर्कमें आनेकी कोशिश करें। क्या यह हँसीकी-सी बात नहीं लगती, और क्या अिसमें घोर-से-घोर अत्याचार नहीं है? अिस नीतिका साफ़ नतीजा यही हो सकता है कि और सारी भाषायें मिट जायें, और केवल अेक हिन्दी रह जाय — वह भी दोनों लिपियोंमें; क्योंकि सब भाषाओंकी लिपि तो देवनागरी हो ही जायगी, हिन्दी सब सीख ही लेंगे, और मातृभाषाओंके महत्वपूर्ण ग्रन्थोंका हिन्दीमें अनुवाद हो ही जायगा। मैं चाहता हूँ, आप ज़रा विचार कर देखिये कि क्या यह स्थिति हम सबकी जन्मभूमि भारतवर्षके लिअे वांच्छनीय होगी। सब लिपियोंको नष्ट करनेका प्रयत्न करनेसे पहले देवनागरी और अुर्दूमें से — जो अेक ही भाषाकी दो लिपियाँ हैं — अेकको मिटानेकी कोशिश आप क्यों नहीं करते? अेक ही भाषा बोलनेवाले हिन्दू और मुसलमान अपने लिअे दो अलग-अलग लिपियाँ क्यों रखें?"

मुझे मालूम नहीं कि मैंने कर्नाटकके सभी, अर्थात् १ करोड़ १० लाख स्त्री-पुरुषोंसे हिन्दी-हिन्दुस्तानी सीखनेकी बात कही थी। जिन्हें अुत्तर भारतके लोगोंसे कभी भी सम्पर्कमें आना पड़ता है, वे सभी हिन्दी-हिन्दुस्तानी सीख लें, तो मुझे बहुत सन्तोष होगा। लेकिन अिसके विपरीत, हिन्दी न जाननेवाले सब प्रान्तोंके सब लोग भी हिन्दी सीख लें, तो मैं अिसका स्वागत ही करूँगा और जैसा पत्र-लेखक सज्जन चाहते हैं, अिस पर अफ़सोस तो मैं निश्चय ही नहीं करूँगा। हरअेक प्रान्त अपनी-अपनी भाषा जान लेनेके साथ-साथ अेक अखिल भारतीय भाषा और सीख ले, तो अिसमें भारतवर्षके लिअे अवांच्छनीय या अस्वाभाविक बात क्या हो जायगी? अिस तरहका ज्ञान थोड़े-से सुसंस्कृत लोगोंका ही विशेषाधिकार क्यों रहे, और जनसाधारण अुससे वंचित क्यों रहें? ३० करोड़से अधिक मनुष्योंका अेक समूचा राष्ट्र दो भाषायें जानता हो, तो अवश्य ही वह अेक अुच्च कोटिकी संस्कृतिका सूचक होगा। बदक़िस्मतीसे यह बिलकुल सही है कि अैसा होना ग़ैरमुमकिन-सा है। मगर सबसे अधिक दुर्भाग्यकी बात यह होगी कि कोअी प्रान्त

अपनी भाषाकी अुपेक्षा करके दूसरी भाषाको अधिक पसन्द करने लग जाय। पत्र-लेखककी शिकायत है कि तामिलनाड़में अैसा ही हो रहा है। अुनकी रायका समर्थन मेरी तामिलनाड़की बार-बारकी यात्राओंसे भी होता है। परन्तु अिधर मैंने देखा है कि अुस प्रांतमें शुभ परिवर्तन भी हो रहा है। और, जैसे-जैसे प्रत्येक प्रांतके शिक्षित लोग सर्वसाधारणके साथ सम्पर्क बढ़ानेकी अधिकाधिक आवश्यकता महसूस करेंगे, वैसे-वैसे जहाँ सम्भव होगा, अन्य भाषाओं पर प्रान्तीय भाषाको तरजीह देनेकी वृत्ति और गति भी बढ़ती जायगी।

अिन्हीं पत्र-लेखकने प्रसंगवश राष्ट्रभाषा होनेके विषयमें अंग्रेज़ी और हिन्दी-हिन्दुस्तानीकी चिरकालीन हमसरीका ज़िक्र किया है। मैंने तो जबसे सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश किया है, सदा यही निश्चित राय रखी और ज़ाहिर की है कि अंग्रेज़ी न कभी सारे हिन्दुस्तानकी भाषा हो सकती है, और न होनी चाहिये। अैसी भाषा तो हिन्दी यानी हिन्दुस्तानी ही हो सकती है, क्योंकि अुत्तर भारतके करोड़ों हिन्दू और मुसलमान अिसे बोलते हैं। अंग्रेज़ीके बारेमें अैसा समझना जनसाधारण और अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगोंके बीचमें स्थायी दीवार खड़ी करना और अपने ध्येय तक पहुँचनेमें देशकी प्रगतिको पीछे ढकेलना है। मैंने बार-बार यह समझाया है कि हमारी अुन्नतिमें अंग्रेज़ीका अेक निश्चित स्थान है। हमारे शासकोंकी और सारी पश्चिमी दुनियाकी बात समझनेके लिअे, और पश्चिमकी अच्छीसे अच्छी बातें हिन्दुस्तानको सिखानेके लिअे, हमारे कुछ आदमियोंको ज़रूर अंग्रेज़ी सीखनी चाहिये। क्योंकि पश्चिमी भाषाओंमें अिसीका सबसे अधिक प्रचार है। पर अगर शिक्षितवर्गको निरक्षर जनताके साथ अेक होना है, तो अंग्रेज़ी सीखनेवालोंसे हज़ार गुने हिन्दुस्तानियोंको हिन्दी-हिन्दुस्तानी जाननी पड़ेगी।

पत्र-लेखक जब यह सोचते हैं कि मैंने प्रान्तीय भाषाओं पर हिन्दीको तरजीह देनेकी सलाह देनेका अपराध किया है, तो मालूम होता है

कि वे मेरी रायसे बिलकुल अपरिचित हैं। अिस बारेमें मेरी कथनी और करनीमें कोअी अन्तर नहीं। मैं अिस प्रस्तावका दिलसे समर्थन करता हूँ कि मातृभाषाको प्रथम स्थान दिया जाना चाहिये।

हाँ, लिपिके मामलेमें पत्र-लेखककी आशंका सही है। मुझे अपनी राय पर पछतावा भी नहीं है। जो अलग-अलग भाषायें संस्कृतसे निकली हैं या जिनका अुसके साथ गहरा सम्बन्ध रहा है, पर जो जुदी-जुदी लिपियोंमें लिखी जाती हैं, अुनकी अेक ही लिपि होनी चाहिये, और वह लिपि निःसन्देह देवनागरी ही है। अलग-अलग लिपियाँ अेक प्रान्तके लोगोंके लिअे दूसरे प्रान्तोंकी भाषायें सीखनेमें अनावश्यक बाधा हैं।

युरोप कोअी अेक राष्ट्र नहीं है, फिर भी अुसने अेक सामान्य लिपि स्वीकार कर ली है। पर हिन्दुस्तान अेक राष्ट्र होनेका दावा करता है, और है, तो फिर अुसकी लिपि अेक क्यों न हो? मैं जानता हूँ कि अेक ही भाषाके लिअे देवनागरी और अुर्दू दोनों लिपियोंको सहन कर लेनेकी मेरी बात असंगत है। किंतु मेरी यह असंगति मेरी मूर्खता ही नहीं है। अिस समय हिन्दू-मुसलमानोंमें संघर्ष है। पढ़े-लिखे हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिअे अेक-दूसरेकी तरफ़ अधिक-से-अधिक आदर और सहिष्णुता दिखाना जरूरी और बुद्धिमानीका काम है, अिसीलिअे मेरी यह राय है कि लिपि चाहे देवनागरी रहे, चाहे अुर्दू। खुशक़िस्मती यह है कि प्रान्त-प्रान्तके बीच अैसा कोअी संघर्ष नहीं है। अिसलिअे जिस सुधारसे अनेक दिशाओंमें प्रान्तोंका गहरा मेल हो सकता है, अुसकी हिमायत करना वांच्छनीय है। और, यह भी नहीं भूल जाना चाहिये कि राष्ट्रका बहुजन समाज बिलकुल निरक्षर है। अुस पर भिन्न-भिन्न लिपियोंका बोझ लादना, और वह भी महज़ झूठे मोह और दिमाग़ी आलस्यके कारण, अपने हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना होगा।

(हरिजनसेवक, १५–८–’३६)

२३

राजनीतिक संस्था नहीं

हिन्दी-प्रेमियोंको यह तो मालूम ही है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अगला अधिवेशन शिमलेमें होगा। शिमलेसे अेक संवाददाताने लिखा है कि वहाँ कुछ अैसा शक है कि सम्मेलन अेक राजनीतिक संस्था है, और अुसकी प्रवृत्तियोंमें मुस्लिम-विरोधकी बू आती है। मैं दो बार सम्मेलनका सभापति बन चुका हूँ, और बग़ैर किसी हिचकिचाहटके मैं कह सकता हूँ कि वह शुद्ध अ-राजनीतिक संस्था है। राजे-महाराजे अुसके संरक्षक हैं। कितने ही आदमी, जिनका कांग्रेससे कोअी वास्ता नहीं, सम्मेलनके सदस्य हैं। राजे-महाराजे अक्सर अुसके अधिवेशनोंमें आते हैं। बड़ौदाके महाराज गायकवाड़ अुसके सभापति रह चुके हैं। मुझे यह अच्छी तरह मालूम है कि अुसकी अेक भी प्रवृत्ति मुस्लिम-विरोधिनी नहीं है। अगर मुझे कोअी अैसा सन्देह होता, तो मैं अुसका सभापति बनना स्वीकार न करता। मैं आशा करता हूँ कि मुस्लिम-विरोधका अर्थ यहाँ अुर्दू-विरोध नहीं लिया गया है। अुर्दू-विरोध और मुस्लिम-विरोध, अिन शब्दोंका अुपयोग बहुतसे लोग समानार्थक रूपमें करते हैं। पर यह तो अेक वहम है। पंजाब, दिल्ली और काश्मीरमें अुर्दू हज़ारहा हिन्दुओं और मुसलमानोंकी आम ज़बान है। यह चीज़ भी ध्यानमें रखनेके क़ाबिल है कि अिन्दौरके पिछले अधिवेशनमें सम्मेलनने हिन्दीकी व्याख्या यह की थी कि हिन्दी वह भाषा है, जिसे अुत्तर हिन्दुस्तानके हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं, और जो देवनागरी या फ़ारसी लिपिमें लिखी जाती है। अिसलिअे मुझे आशा है कि अुर्दू-विरोधके अर्थमें भी अगर मुस्लिम-विरोध शब्द लिया गया है, तो भी संवाददाताने जिस सन्देहका ज़िक्र किया है, वह दूर हो

जायगा, और शिमलेमें होनेवाले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशनकी तैयारियोंका काम, अुसके अुद्देश्य या रुखके बारेमें बग़ैर किसी तरहकी शंका अुठाये, वैसा ही जारी रहेगा।

(हरिजनसेवक, १२–६–’३७)

२४

हिन्दी बनाम अुर्दू

हिन्दी-अुर्दूका यह सवाल बारहमासी बन गया है। हालांकि अिसके बारेमें मैं बहुत बार अपने विचार ज़ाहिर कर चुका हूँ, और अुन्हें फिरसे प्रकट करना पुनरावृत्ति ही होगा, फिर भी अिस बारेमें मैं जो कुछ मानता हूँ, अुसे बिना किसी दलीलके सीधे-सादे रूपमें रख देना ठीक होगा।

मेरा विश्वास है कि —

१. हिन्दी, हिन्दुस्तानी और अुर्दू शब्द अुस अेक ही ज़बानके सूचक हैं, जिसे अुत्तर भारतमें हिन्दू-मुसलमान दोनों बोलते हैं, और जो देवनागरी या फ़ारसी लिपिमें लिखी जाती है।

२. अिस भाषाके लिअे अुर्दू शब्द शुरू होनेसे पहले हिन्दू-मुसलमान दोनों अिसे हिन्दी ही कहते थे।

३. हिन्दुस्तानी शब्द भी बादमें (यह मैं नहीं जानता कि कबसे) अिसी भाषाके लिअे अिस्तेमाल होने लगा है।

४. हिन्दू-मुसलमान दोनोंको यह भाषा अुसी रूपमें बोलनेकी कोशिश करनी चाहिये, जिसमें अुत्तर भारतके ज़्यादातर लोग अिसे समझते हैं।

५. अनेक हिन्दू और बहुतसे मुसलमान संस्कृत और फ़ारसी या अरबीके ही शब्दोंका व्यवहार करनेका आग्रह करेंगे। यह स्थिति हमें तब तक बरदाश्त करनी पड़ेगी, जब तक हमारे बीच अेक-दूसरेके तर्आं

अविश्वास और अलहदगीका भाव बना हुआ है। पर जो हिन्दू किसी खास तरहके मुस्लिम खयालतको जानना चाहेंगे, वे फ़ारसी लिपिमें लिखी हुअी अुर्दूका अध्ययन करेंगे, और अिसी तरह जो मुसलमान हिन्दुओंकी किसी खास बातका ज्ञान हासिल करना चाहेंगे, अुन्हें देवनागरी लिपिमें लिखी हुअी हिन्दीका अध्ययन करना होगा।

६. अन्तमें जाकर जब हमारे दिल घुल-मिल जायेंगे, और हम सब अपने-अपने प्रान्तके बजाय हिन्दुस्तान पर गर्वका अनुभव करने लगेंगे, और मुख्तलिफ़ धर्मोंको अेक ही वृक्षके विभिन्न फलोंके रूपमें जानने और तदनुसार अुन पर अमल करने लगेंगे, तब हम प्रान्तीय भाषाओंको प्रान्तीय कामकाजके लिअे क़ायम रखते हुअे अेक ही सामान्य लिपिवाली सामान्य भाषा पर पहुँच जायेंगे।

७. किसी प्रान्त या ज़िले अथवा जनता पर अेक भाषा या हिन्दीके अेक रूपको लादनेका जतन करना देशके सर्वोत्तम हितकी दृष्टिसे घातक है।

८. आम भाषाके सवाल पर विचार करते समय धार्मिक भेद-भावोंका खयाल नहीं करना चाहिये।

९. रोमन लिपि न तो हिन्दुस्तानकी सामान्य लिपि हो सकती है, और न होनी चाहिये। यह हमसरी तो फ़ारसी और देवनागरीके बीच ही हो सकती है। और अिसके अपने मौलिक गुणोंको अलग रख दें, तो भी देवनागरी ही सारे हिन्दुस्तानकी सामान्य लिपि होनी चाहिये; क्योंकि विविध प्रान्तोंमें प्रचलित ज्यादातर लिपियाँ मूलतः देवनागरीसे ही निकली हैं, और अिसलिअे अुनके लिअे अुसे सीखना ही सबसे ज्यादा आसान है। लेकिन अिसके साथ ही, मुसलमानों पर या दूसरे अैसे लोगों पर, जो अिससे अनजान हैं, अिसे जबरदस्ती लादनेका हमें किसी तरहका कोअी प्रयत्न न करना चाहिये।

१०. अगर अुर्दूको हम हिन्दीसे अलग मानें, तो मैं कहूँगा कि अिन्दौरमें जब मेरे कहने पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने धारा नं० १ में दी

हुअी व्याख्याको स्वीकार कर लिया, और नागपुरमें मेरे कहने पर भारतीय साहित्य-परिषद्ने भी अुस व्याख्याको स्वीकार करके अन्तर्प्रान्तीय व्यवहारकी सामान्य भाषाको हिन्दी या हिन्दुस्तानी कहा, तो अिस प्रकार मैंने अुर्दूकी सेवा ही की है। क्योंकि अिससे हिन्दू-मुसलमान दोनोंको सामान्य भाषाको समृद्ध बनानेके यत्नमें शामिल होने और प्रान्तीय भाषाओंके सर्वोत्तम विचारोंको अुस भाषामें लानेका पूरा-पूरा मौका मिल गया है।

(हरिजनसेवक, ३-७-'३७)

२

[पं० जवाहरलाल नेहरूने अिस विषय पर अंग्रेजीमें अेक पुस्तिका लिखी है। अुसमें अुन्होंने जो बातें सुझाअी हैं, अुन्हें पाठकोंकी जानकारीके लिअे मैं नीचे देता हूँ। —मो० क० गांधी]

१. सरकारी काम और सार्वजनिक शिक्षाके लिअे विभिन्न प्रान्तोंमें अुन भाषाओंका प्रयोग होना चाहिये, जो वहाँकी प्रमुख प्रचलित भाषायें हों। अिसके लिअे भाषाओंको सरकारी तौर पर स्वीकृत किया जाना चाहिये — हिन्दुस्तानी (जिसमें हिन्दी और अुर्दू दोनों ही शामिल हैं), बंगला, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम, अुड़िया, आसामी, सिन्धी और किसी हद तक पश्तो तथा पंजाबी भी।

२. हिन्दुस्तानी भाषा-भाषी प्रान्तोंमें हिन्दी और अुर्दू दोनों ही अपनी-अपनी लिपिके साथ सरकार द्वारा स्वीकृत की जानी चाहियें। सरकारी सूचनायें दोनों ही लिपियोंमें प्रकाशित होनी चाहियें। अदालतों या अन्य सरकारी दफ्तरोंमें अर्जी पेश करनेवाला व्यक्ति किसी भी लिपि (हिन्दी या अुर्दू) का प्रयोग कर सकता है, अुससे दूसरी लिपिमें अुस दरख्वास्तकी नकल न माँगी जाय।

३. हिन्दुस्तानी प्रान्तोंकी भाषा सार्वजनिक शिक्षाके माध्यमके लिअे हिन्दुस्तानी होगी, अिसलिअे दोनों लिपियोंका प्रयोग होगा। लिपिका चुनाव खुद विद्यार्थी या अुसके संरक्षक द्वारा होगा। विद्यार्थीको

दोनों लिपियां सीखनेके लिअे मजबूर न किया जाय। लेकिन माध्यमिक शिक्षामें अुसे अुसके लिअे प्रोत्साहन दिया जा सकता है।

४. राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी हो, और देवनागरी व फ़ारसी दोनों लिपियोंको स्वीकार किया जाय। अिसलिअे हिन्दुस्तानभरकी किसी भी अदालत या सरकारी दफ्तरोंमें अर्जियां हिन्दुस्तानीमें (दोनों लिपियोंमें से चाहे जिस लिपिमें) पेश की जा सकेंगी, और किसी दूसरी भाषा या लिपिमें अुनकी नकल या अनुवाद देनेकी कोअी ज़रूरत न होगी।

५. देवनागरी, बंगला, गुजराती और मराठी लिपियोंमें अेकरूपता लाने और अुनके मेलसे अेक अैसी संयुक्त लिपि बनानेका प्रयत्न किया जाय, जो छापखानों, टाअिपराअिटरों और दूसरी तरहके यंत्रोंके लिअे अुपयुक्त सिद्ध हो।

६. सिन्धी लिपिको अुर्दू लिपिमें मिला दिया जाय, और अुसे जहां तक सम्भव हो सके, सरल और छापखानों, टाअिपराअिटरों और दूसरी तरहके यंत्रोंमें काम आने लायक़ बनाया जाय।

७. दक्षिण भारतीय भाषाओंकी लिपियोंको देवनागरी लिपिके समान बनानेका प्रयत्न किया जाना चाहिये। अगर यह काम सम्भव न जान पड़े, तो दक्षिण भारतकी विभिन्न भाषाओं (तामिल, तेलगू, कन्नड़, और मलयालम)के लिअे अेक लिपि बनानेकी कोशिश की जाय।

८. रोमन लिपिमें अनेक लाभ होते हुअे भी, कम-से-कम फिलहाल तो, अपनी देशी भाषाओंके लिअे अुसका प्रयोग हमारे लिअे सम्भव नहीं है। अिन लिपियोंकी व्यवस्था अिस तरह होनी चाहिये — देवनागरी, बंगला, गुजराती और मराठीके योगसे बनी अेक लिपि; अुर्दू और सिन्धीके लिअे अेक लिपि; और अगर दक्षिण भारतीय भाषाओंकी विभिन्न लिपियोंको देवनागरीके समीप नहीं लाया जा सकता हो, तो सब दक्षिणी भाषाओंके लिअे अेक लिपि।

९. जिन प्रान्तोंमें हिन्दुस्तानी बोली जाती है, वहां अगर हिन्दी और अुर्दूमें भेद बढ़ता भी जा रहा है और अगर अुनका विकास भी

जुदा-जुदा दिशाओंमें हो रहा है, तो भी किसी प्रकारकी आशंकाकी कोओ वजह नहीं है। अुनके विकासमें किसी प्रकारकी बाधायें भी अुपस्थित न की जानी चाहियें। जब भाषामें नये और गूढ़ विचारोंका समावेश हो रहा है, तो किसी हद तक यह स्वाभाविक ही है। दोनों भाषाओंके विकाससे हिन्दुस्तानी भाषाकी अुन्नति ही होगी। बादको जब संसारकी अन्य शक्तियोंका प्रभाव बढ़ेगा, या राष्ट्रीयताका अुस दिशामें दबाव पड़ेगा, तो दोनों भाषाओंका सामञ्जस्य अनिवार्य हो जायगा। सार्वजनिक शिक्षा बढ़नेके साथ भाषामें समानता और सामञ्जस्यका प्रादुर्भाव होगा।

१०. हमें अिस बात पर जोर देना चाहिये कि हमारी भाषायें साधारण जनताकी भाषायें बनें। लेखकोंको चाहिये कि वे जनताकी समस्याओं पर लिखें, और जो कुछ वे लिखें, वह सरल भाषामें हो, ताकि जनताकी समझमें आ सके। दरबारी और कृत्रिम शैली तथा लच्छेदार भाषाके प्रयोगको प्रोत्साहन न मिलना चाहिये, और सरल तथा ओजपूर्ण शैलीके विकाससे दूसरे फ़ायदोंके अलावा अेक फ़ायदा यह भी होगा कि हिन्दी और अुर्दूमें समानता बढ़ जायगी।

११. जैसे अंग्रेज़ीके प्रारम्भिक और मुख्य शब्दोंको चुनकर 'बेसिक अिंग्लिश' (आधार-भाषा) तैयार की गअी है, वैसे ही हिन्दुस्तानीके लिअे भी अेक आधार-भाषा तैयार की जानी चाहिये। यह भाषा सरल होनी चाहिये, जिसमें व्याकरणके बन्धन कम-से-कम हों, और लगभग १,००० शब्द हों। वह संपूर्ण भाषा हो, जो साधारण बोलचाल और लिखनेके कामोंके लिअे पर्याप्त हो; साथ ही वह हिन्दुस्तानीके ही अन्तर्गत हो, और हिन्दुस्तानीके अध्ययनके लिअे प्रारम्भिक भाषाके रूपमें रहे।

१२. अिस आधार-भाषाको तैयार करनेके अलावा हिन्दुस्तानी (हिन्दी और अुर्दू) में, और अगर सम्भव हो तो दूसरी भाषाओंमें भी, वैज्ञानिक, राजनीतिक और अर्थशास्त्र या दूसरे विषयोंके संबंधमें प्रयुक्त होनेवाले विशेष शब्दोंको निश्चित कर लेना चाहिये। जहाँ आवश्यक समझा जाय,

अैसे शब्दोंको विदेशी भाषाओंसे ले लिया जाय, और अुन्हें तत्सम रूपमें ही भारतीय भाषाओंमें रख लिया जाय। बाक़ी और विशेष शब्दोंके लिअे देशी भाषाओंसे ही लेकर शब्द-सूची तैयार कर लेनी चाहिये, ताकि वैसे शब्दोंके लिअे अेक निश्चित और समान शब्द-कोशका निर्माण किया जा सके।

१३. सार्वजनिक शिक्षाके विषयमें सरकारकी नीति यह हो कि विद्यार्थीकी मातृभाषा ही शिक्षाका माध्यम होगी। प्रत्येक प्रान्तमें प्रारम्भिक शिक्षासे अुच्च शिक्षा तक शिक्षाका माध्यम प्रान्तकी भाषाको ही रखा जाय। अगर किसी प्रान्तमें दूसरी भाषावाले विद्यार्थियोंका बहुत बड़ा वर्ग हो, तो अुन्हींकी मातृभाषामें प्रारम्भिक शिक्षा देनेका प्रबन्ध किया जाय, बशर्ते कि अुनकी शिक्षाका प्रबन्ध सुविधापूर्वक किसी शिक्षा-केन्द्रसे हो सके। अगर दूसरी मातृभाषावाले विद्यार्थियोंका वर्ग काफ़ी बड़ा हो, तो माध्यमिक शिक्षा भी अुन्हें अपनी मातृभाषामें मिल सके। जिस प्रान्तमें वे रहते हैं, अुस प्रान्तकी भाषाका अध्ययन अेक पाठ्यविषयके रूपमें अनिवार्य किया जा सकता है।

१४. जिन प्रान्तोंमें बोलचालकी भाषा हिन्दुस्तानी न हो, वहाँ माध्यमिक शिक्षामें हिन्दुस्तानीकी शिक्षा आधार-भाषाकी तरह दी जानी चाहिये। लिपिका चुनाव विद्यार्थियोंके अूपर ही छोड़ा जा सकता है।

१५. अुच्च शिक्षाका माध्यम प्रान्तकी भाषाको ही रखना चाहिये। लेकिन साथ ही, हिन्दुस्तानीका (लिपि कोअी भी हो) और अेक वैदेशिक भाषाका अध्ययन अनिवार्य हो। कला-कौशलकी अुच्च शिक्षाके पाठ्यक्रममें अिन भाषाओंके अनिवार्य अध्ययनकी आवश्यकता नहीं है, हालाँकि अिनका ज्ञान हो तो अच्छा ही है।

१६. विदेशी भाषाओं और प्राचीन भारतीय भाषाओंके अध्ययनका प्रबन्ध माध्यमिक शिक्षाके साथ-साथ हो, लेकिन कुछ विशेष पाठ्यक्रमोंको छोड़कर अुनकी शिक्षा अनिवार्य न हो।

१७. प्राचीन साहित्य और आधुनिक विदेशी भाषाओंकी साहित्यिक पुस्तकोंका भारतीय भाषाओंमें अनुवाद कराया जाय, ताकि हमारी देशी भाषाओंका अन्य देशोंके सांस्कृतिक और सामाजिक आन्दोलनोंसे सम्पर्क स्थापित हो सके, और अुससे हमारी देशी भाषाओंको शक्ति मिले।

(हरिजनसेवक, ४-९-'३७)

२५

अभिनन्दनीय

मौलवी अब्दुल हक़ साहब और श्री राजेन्द्रबाबूने हिन्दी-अुर्दू-विवादके बारेमें जो संयुक्त वक्तव्य निकाला है, अुससे यह आशा की जा सकती है कि वह विवाद अब खत्म हो जायगा, और जो अन्तर्प्रान्तीय भाषामें दिलचस्पी रखते हैं, वे अिस सवाल पर अिसके गुण-दोषकी ही दृष्टिसे विचार कर सकेंगे, और सब मिलकर किसी अच्छी व्यावहारिक योजना पर भी पहुँच सकेंगे। वक्तव्य यह है —

"पटनामें ता० २८ अगस्तको बिहार-अुर्दू-कमेटीकी जो बैठक हुअी थी, अुस अवसर पर हमें हिन्दुस्तानी भाषाके सवालके बारेमें अेक-दूसरेके साथ, और दूसरे भी कुछ दोस्तोंके साथ बहस करनेका मौक़ा मिला। अुर्दू-हिन्दी-हिन्दुस्तानीके विवादके बारेमें जो ग़लत-फ़हमियाँ दुर्भाग्यसे पैदा हो गअी हैं, अुनको दूर करनेकी फ़िक्र हमें थी। हमें यह कहते हुअे खुशी होती है कि अिस प्रश्नके अनेक अंगों पर हमने बहस की, और हमने देखा कि अिस चर्चामें आये हुअे अनेक प्रश्नोंमें हम लोगोंकी अेक राय है। हम अिस बातमें सहमत हैं कि हिन्दुस्तानीको हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा होना चाहिये, और वह अुर्दू व नागरी दोनों लिपियोंमें लिखी जानी चाहिये, और सरकारी आफ़िसों और शिक्षामें दोनों लिपियोंको क़बूल कर

लेना चाहिये। 'हिन्दुस्तानी' हम अुस ज़बानको कहते हैं, जिसे अुत्तर हिन्दुस्तानमें बहुत बड़ा जनसमुदाय बोलता है, और हम मानते हैं कि जो शब्द आम व्यवहारमें अिस्तेमाल होते हों, अुन्हें चुनकर हिन्दुस्तानी शब्द-भण्डारमें दाखिल कर लेना चाहिये। और, हम यह भी मानते हैं कि अुर्दू और हिन्दी दोनोंको, और साहित्यमें अिस्तेमाल होनेवाली भाषाओंको, अुनके विकासके लिअे पूरा मौक़ा मिलना चाहिये। हमारी तजवीज़ यह है कि अुर्दू और हिन्दीके विद्वानोंके सहयोगसे हिन्दुस्तानी लफ़्ज़ोंका अेक मूल कोश तैयार करनेका प्रयत्न होना चाहिये।

"अैसा कोश बनानेके लिअे व्यावहारिक तदबीरों और पारिभाषिक शब्दोंके चुनाव-जैसे अनेक सवालोंका हल निकालनेके लिअे हिन्दी व अुर्दूके प्रतिनिधियोंकी अेक छोटी-सी कमेटी नियुक्त करनी चाहिये। अुर्दू व हिन्दीके अैसे वज़नदार समर्थकोंकी यह कमेटी बननी चाहिये, जो यह मानते हों कि अिन दोनों ज़बानोंको अेक-दूसरेके अधिक नज़दीक लाया जाय, और हिन्दुस्तानी भाषाके विकासको प्रोत्साहन दिया जाय, और अिस तरह अिन दोनों भाषाओंके बोलनेवालोंके बीच सद्भाव पैदा किया जाय, और जितनी जल्दी हो सके अुतनी जल्दी यह कमेटी बुलाअी जाय।"

हमें आशा है कि अिस वक्तव्यके प्रकाशक अैसे हिन्दुस्तानी शब्दोंका मूलकोश, जिन्हें सब पक्षोंके लोग मंजूर कर सकें, तैयार करनेके लिअे जल्दी ही काम शुरू करेंगे, और अिस कामके लिअे तथा 'अनेक बड़े-बड़े सवालोंको हल करनेके लिअे' जिस कमेटीका बनाना अुन्होंने तय किया है, अुसे फ़ौरन ही नियुक्त करेंगे। अगर कामको शीघ्रतासे सुलझाना है, तो मैं अिस बात पर ज़ोर दूंगा कि कमेटी जहां तक हो, छोटी होनी चाहिये।

(हरिजनसेवक, १८-९-'३७)

२६

मद्रासमें हिन्दुस्तानीकी शिक्षा

१

[जब मद्रासकी कांग्रेस-सरकारने सूबेके स्कूलोंमें हिन्दुस्तानीकी पढ़ाअी अेक विषयकी तरह दाखिल की, तो कुछ लोगोंने अुसके विरोधमें तरह-तरहकी और अनुचित कार्रवाअियां भी कीं। अिसके बारेमें गांधीजीके पास भी शिकायत पहुँची। अिस पर राजाजीकी सरकारका खुलासा और बादमें अिस सिलसिलेमें गांधीजीने 'कांग्रेसजन, सावधान!' के नामसे जो लेख लिखा, अुसका आवश्यक अंश नीचे दिया गया है।]

मद्रास सरकारने पिछली ९ तारीखको नीचे लिखा बयान छपाया है —

अिस प्रान्तके विद्यालयोंमें जो पढ़ाअी दाखिल की गअी है, अुसके बारेमें बहुत ग़लतफ़हमी फैलानेवाला प्रचार किया जा रहा है। अिस बारेमें सरकार अपनी नीति स्पष्ट कर देना चाहती है, जिससे अिस सिलसिलेमें कोअी ग़लतफ़हमी पैदा होनेका अँदेशा हो, तो वह दूर हो जाय।

यदि हमारे प्रान्तको हिन्दुस्तानके राष्ट्रीय जीवनमें अपना योग्य स्थान प्राप्त करना हो, तो अुसके लिअे यह ज़रूरी है कि जिस भाषाके बोलनेवाले हिन्दुस्तानमें सबसे ज़्यादा हों, अुसका व्यावहारिक ज्ञान हमारे नौजवानोंको हो। अिसलिअे सरकारने अिस प्रान्तके हाअीस्कूलोंकी पढ़ाअीमें हिन्दुस्तानीको बतौर अेक विषयके दाखिल करनेका निश्चय किया है। सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि प्रान्तके किसी प्राअिमरी स्कूलमें हिन्दुस्तानी दाखिल नहीं की जायगी, और अुनमें तो सिर्फ़ मातृभाषा ही सिखाअी जायगी। हिन्दुस्तानी सिर्फ़ हाअीस्कूलोंमें दाखिल की जायगी, और वहाँ भी वह पहले, दूसरे और तीसरे दरजोंमें ही, यानी स्कूली जीवनके छठे, सातवें और आठवें सालमें ही पढ़ाअी जायगी। अिसलिअे हाअीस्कूलोंमें वह किसी

भी तरह मातृभाषाकी शिक्षामें बाधक नहीं होगी। मातृभाषाकी पढ़ाअी पहलेकी ही तरह जारी रहेगी, और अेक क्लाससे दूसरे क्लासमें चढ़ाते समय हिन्दुस्तानी न जाननेके कारण कोअी रुकावट न आयेगी; लेकिन अुसका आधार, पहलेकी तरह, सामान्य ज्ञान पर और मातृभाषा सहित दूसरे विषयोंमें प्राप्त अंकों पर रहेगा। हिन्दुस्तानीकी अनिवार्यता अिसी अर्थमें रहेगी कि विद्यार्थियोंके लिअे हिन्दुस्तानीके क्लासमें हाजिर रहना लाजिमी होगा, और वे तामिल, तेलगू, मलयालम या कन्नड़के बदलेमें हिन्दुस्तानी नहीं ले सकेंगे, बल्कि अिनमें से किसी अेक भाषाके अलावा अुन्हें हिन्दुस्तानी सीखनी होगी।

साथ ही, सरकारने यह हुक्म भी जारी कर दिया है कि अिस साल हाअीस्कूलोंमें चौथे दरजेसे — और अगले दो सालोंमें हाअीस्कूलके सबसे अूंचे दरजे तक — सारी पढ़ाअी मातृभाषा द्वारा ही करवाअी जाय। जिन प्रदेशोंमें दो भाषाओंके प्रचारके कारण प्रश्न अटपटा नहीं बनता, वहाँ सब जगह अिसी नीतिसे काम होगा। पाठ्यक्रममें मातृभाषाका स्थान शुरूसे आखिर तक महत्त्वका होगा। मिडिल स्कूल सर्टिफिकेट परीक्षाके नियमोंमें सरकार यह सुधार करना चाहती है कि अिस परीक्षामें बैठनेवालोंके लिअे मातृभाषामें अपने विचारोंको भलीभाँति प्रकट करनेकी योग्यता आवश्यक मानी जानी चाहिये। अिस तरह सरकारने अिस प्रान्तकी शिक्षा-योजनामें मातृभाषाके महत्त्वका ध्यान रखा है, और वास्तवमें सरकार यह प्रयत्न कर रही है कि अब तक शिक्षामें मातृभाषाका जो स्थान रहा है, अुसकी अपेक्षा अुसे अधिक महत्त्वका और अूंचा स्थान दिया जाय।

(हरिजनसेवक, १९-६-'३८)

२

मेरे पास ढेर-के-ढेर अैसे पत्र और तार आये हैं, जिनमें मद्रासके प्रधानमंत्रीके कामोंकी, जिन्हें अिन पत्रों और तारोंमें अुनके कुकृत्य कहा

गया है, शिकायत की गअी है। मैं अुनमें से अैसी दो बातोंको लेता हूँ, जिनके खिलाफ़ देशके अनेक भागोंमें टीका-टिप्पणी हुअी है। अुनमें से अेक वह नीति है, जो अुन्होंने हिन्दुस्तानी भाषाके बारेमें अख्तियार की है, और दूसरी पिकेटिंगके वाहियातपनको रोकनेके लिअे अुनके द्वारा 'क्रिमिनल लॉ अेमेण्डमेण्ट अैक्ट' का अपनाया जाना है।

* * *

राजाजीके खिलाफ़ जो खास शिकायतें हैं, अुनके बारेमें भी अब मैं अेक शब्द कह दूँ।

हिन्दुस्तानी हमारी राष्ट्रभाषा है या होगी, अगर अैसी घोषणायें हमने सच्चाअीके साथ की हैं, तो फिर हिन्दुस्तानीका ज्ञान प्राप्त करनेमें कोअी बुराअी नहीं है। अिंग्लैण्डके स्कूलोंमें लैटिन सीखना लाज़िमी था, और शायद अब भी है। अुसके अध्ययनसे अंग्रेज़ीके अध्ययनमें कोअी बाधा नहीं पड़ी। अिसके विपरीत, अुसके ज्ञानसे अंग्रेज़ी भाषा और समृद्ध ही हुअी है। अिसलिअे 'मातृभाषा खतरेमें है' का जो शोर मचाया जाता है, वह या तो अज्ञानवश मचाया जाता है, या अुसमें पाखण्ड है। जो अीमानदारीके साथ अैसा सोचते हैं, अुनकी अिस देशभक्ति पर तरस आता है कि हमारे बच्चे हिन्दुस्तानी सीखनेके लिअे अपना अेक घण्टा भी न दें! अगर हमें अखिल भारतीय राष्ट्रीयता प्राप्त करनी है, तो प्रान्तीय आवरणको भेदना ही पड़ेगा। सवाल यह है कि हिन्दुस्तान अेक देश और राष्ट्र है, या अनेक देशों और राष्ट्रोंका समूह है? जो लोग यह मानते हैं कि यह अेक देश है, अुन्हें तो राजाजीका पूरा समर्थन करना ही चाहिये। अगर जनता अुनके साथ न होगी, तो वे अपने पदको खो देंगे। लेकिन ताज्जुबकी बात यह है कि अगर जनता अुनके साथ नहीं है, तो अुनको अितना भारी बहुमत कैसे प्राप्त है? और, अगर अुन्हें बहुमत प्राप्त न भी हो, तो क्या हुआ? वे अपना पद छोड़ सकते हैं, मगर अपने आन्तरिक विश्वासको नहीं छोड़ सकते। अुनको जो

बहुमत प्राप्त है, अगर वह कांग्रेसकी अिच्छाका द्योतक न हो, तो अुसका कोअी मूल्य नहीं; बल्कि अुन सब बातों पर अुसका दार-मदार है, जिनसे राष्ट्र यथासम्भव कम-से-कम समयमें महान् और स्वाधीन बनेगा।

(हरिजनसेवक, १०-३-'३८)

२७

हिन्दुस्तानी, हिन्दी और अुर्दू

हिन्दी-अुर्दूके प्रश्न पर कटु वाद-विवाद चल पड़ा है, और अभी भी चल रहा है, यह बड़े अफ़सोसकी बात है। जहाँ तक कांग्रेसका सम्बन्ध है, हिन्दुस्तानी ही वह भाषा है, जिसे अुसने अन्तर्प्रान्तीय सम्पर्कके लिअे बाजाब्ता अखिल भारतीय भाषा स्वीकार किया है। वर्किंग कमेटीके हालके प्रस्तावसे अिस सम्बन्धके सारे सन्देह दूर हो जाने चाहियें। जिन कांग्रेस-जनोंको सारे हिन्दुस्तानमें काम करना पड़ता है, वे अगर दोनों लिपियोंमें हिन्दुस्तानी सीखनेका कष्ट अुठायें, तो अपने सामान्य भाषाके लक्ष्यकी ओर हम बहुत-कुछ आगे बढ़ जायें। क्योंकि असली प्रतिस्पर्द्धा तो हिन्दी और अुर्दूमें नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानी और अंग्रेजीमें है। वही करारा मुक़ाबला है। मैं तो अुसके लिअे निश्चय ही बहुत चिन्तित हूँ।

हिन्दी-अुर्दू-विवादका कोअी आधार नहीं है। हिन्दुस्तानीके बारेमें कांग्रेसकी जो धारणा है, अुसको अभी मूर्त्तरूप प्राप्त होना है। और अैसा तब तक न होगा, जब तक कांग्रेसकी कार्रवाअी अेकमात्र हिन्दुस्तानीमें न होने लगेगी। कांग्रेसजनोंके अुपयोगके लिअे कांग्रेसको हिन्दुस्तानीके कोश बनाने पड़ेंगे, और अेक अैसा विभाग खोलना पड़ेगा, जो अिन कोशोंके अलावा प्रयुक्त होनेवाले नये-नये शब्द मुहैया करेगा। यह काम बहुत बड़ा है। लेकिन अगर हमें दर हक़ीक़त सारे हिन्दुस्तानमें प्रचलित अेक

ज़िन्दा और बढ़ती हुअी भाषाको अस्तित्वमें लाना है, तो अैसा करना ही चाहिये। यह विभाग अिस बातका निर्णय करेगा कि अुर्दू या देवनागरी लिपियोंमें लिखे हुअे प्रस्तुत साहित्यके ग्रन्थों और मासिक, साप्ताहिक तथा दैनिक पत्रोंमें से किन-किनको हिन्दुस्तानीका समझा जाय। यह अेक गम्भीर काम है, जिसमें सफलता पानेके लिअे बड़े परिश्रमकी ज़रूरत है।

हिन्दुस्तानीको मूर्त्तरूप देनेके लिअे हिन्दी और अुर्दूको अुसकी पोषक भाषायें समझना चाहिये। अिसलिअे कांग्रेसजनोंको अिन दोनोंके प्रति अच्छे भाव रखने चाहियें, और जहाँ तक बन सके, अिन दोनोंके ही सम्पर्कमें रहना चाहिये।

प्रान्तीय भाषाओंसे समृद्ध, अेक अुन्नतिशील राष्ट्रकी विविध आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिअे अिस हिन्दुस्तानीको अनेक पर्यायवाची शब्द मुहैया करने पड़ेंगे। बंगाल या दक्षिणके श्रोताओंके सामने जो हिन्दुस्तानी बोली जायगी, अुसमें स्वभावतः संस्कृतसे अुत्पन्न शब्दोंका प्राचुर्य होगा। वही भाषण जब पंजाबमें किया जायगा, तो अुसमें अरबी-फ़ारसीसे पैदा हुअे शब्दोंकी काफ़ी मिलावट होगी। यही हाल अुन श्रोताओंके सामने होगा, जिनमें मुसलमानोंकी तादाद ज़्यादा होगी, जो संस्कृतसे बने हुअे अनेक शब्दोंको नहीं समझ सकते। अिसलिअे जिन्हें सारे हिन्दुस्तानमें भाषण करने पड़ते हैं, अुनका हिन्दुस्तानीका शब्द-भण्डार अैसा होना चाहिये, जिसकी मददसे भारतके सभी भागोंके श्रोताओंके सामने वे बिना किसी हिचकिचाहटके बोल सकें। पं० मालवीयजी अिस दिशामें सर्वोपरि हैं। मैं जानता हूँ कि श्रोता चाहे हिन्दी-भाषी हों या अुर्दू बोलनेवाले, अुनको अपनी तरफ मुख़ातिब करनेमें अुन्हें कभी मुश्किल नहीं पड़ती। किसी ठीक शब्दके लिअे मैंने अुन्हें कभी भटकते न पाया। यही बात बाबू भगवानदासकी है, जो अपने भाषणोंमें विविध पर्यायवाची शब्दोंका अिस्तेमाल करते हैं, और अिस बातका ध्यान रखते हैं कि अुनमें से कोअी बेमौज़ूं तो नहीं हो रहा है। यह लिखते समय मुसलमानोंमें मुझे मौलाना मुहम्मद

अलीका खयाल आता है, जिनके पास दोनों ही तरहके श्रोताओंके लिअे काफ़ी विविधतापूर्ण शब्द-भण्डार था। बड़ौदामें नौकरी करते समय अुन्होंने गुजरातीकी जो जानकारी हासिल की थी, अुससे अुन्हें काफ़ी लाभ हुआ।

कांग्रेससे स्वतंत्र रहकर हिन्दी और अुर्दू बराबर तरक्की करती रहेंगी। हिन्दी ज़्यादातर हिन्दुओंमें और अुर्दू मुसलमानोंमें महदूद रहेगी। तुलनात्मक रूपमें कहें, तो दर हक़ीक़त हिन्दी जाननेवाले अैसे मुसलमान बहुत कम हैं, जिन्हें अुसका पण्डित कहा जा सके, हालांकि में अुम्मीद यह करता हूँ कि हिन्दी-भाषी भागोंमें पैदा होनेवाले मुसलमानोंकी मादरी ज़बान हिन्दी ही है। हाँ, अैसे हज़ारों हिन्दू हैं, जिनकी मातृभाषा अुर्दू है, और अुनमें से सैकड़ों अैसे भी हैं, जिन्हें अुर्दूका पण्डित कहा जा सकता है। पण्डित मोतीलाल नेहरू अैसे थे। डॉ० तेजबहादुर सप्रूको भी हम ले सकते हैं। अैसे अुदाहरण और भी बहुतसे मिल सकते हैं। अिसलिअे कोअी वजह नहीं कि अिन दो बहनोंमें कोअी झगड़ा या कटु प्रतिस्पर्धा हो। हाँ, प्रेमभरी प्रतिस्पर्धा तो हमेशा होनी ही चाहिये।

मेरे पास जो कुछ विवरण आया है, अुससे अैसा मालूम पड़ता है कि मौलवी अब्दुल हक़ साहबके योग्यतापूर्ण नेतृत्वमें अुस्मानिया युनिवर्सिटी अुर्दूकी बड़ी सेवा कर रही है। युनिवर्सिटीमें अुर्दूका अेक बहुत बड़ा कोश है। सायन्सकी भी किताबें अुर्दूमें तैयार की जा रही हैं। और, चूँकि अुस युनिवर्सिटीमें अीमानदारीके साथ अुर्दूकी शिक्षा दी जा रही है, अिसलिअे अुसकी तरक्की होनी ही चाहिये। अकारण किसी तास्सुबकी वजहसे अगर आज हिन्दी-भाषी हिन्दू वहांके बढ़ते हुअे साहित्यसे लाभ न अुठायें, तो यह अुनका क़सूर है। लेकिन अिस तास्सुबका अन्त तो निश्चित है, क्योंकि दोनों जातियोंके बीचकी मौजूदा नाअित्तफ़ाक़ी तमाम बीमारियोंकी तरह अस्थायी ही है। अच्छा हो या बुरा, पर ये दोनों जातियाँ तो हिन्दुस्तानकी हो चुकी हैं; वे अेक-दूसरेकी पड़ोसी हैं, और

अिसी देशकी सन्तान हैं। यहीं वे पैदा हुअी हैं और यहीं मरेंगी। अिसलिअे अगर वे खुद-ब-खुद ही शान्तिसे न रहने लगीं, तो क़ुदरत अिसके लिअे अुन्हें मजबूर करेगी।

और, जो हाल हिन्दुओंका है, वही मुसलमानोंका है। अगर मुसलमान हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और नागरी प्रचारिणी-सभाके विनम्र परिश्रमके फलोंका अुपयोग न करें, तो यह अुनका क़सूर है। यह बड़े दुःखकी बात है कि सम्मेलनने हिन्दीकी यह व्याख्या करके कि वह भाषा जो अुत्तर भारतमें हिन्दू-मुसलमानों द्वारा बोली जाती है, और जो अुर्दू या देवनागरी लिपिमें लिखी जा सकती है, (अपनी ओरसे) जो बड़ा क़दम अुठाया है, मुसलमानोंने फ़ख्र और खुशीके साथ अुसकी दाद नहीं दी है। अिस तरह, जहाँ तक अिस व्याख्याका सम्बन्ध है, कांग्रेसने हिन्दुस्तानीकी जो व्याख्या की है, अुसके साथ अिसका मेल बैठ जाता है। मैं यह जानता हूँ कि अैसे भी कुछ लोग हैं, जो अिस बातका सपना देखते हैं कि यहाँ खाली अुर्दू या खाली हिन्दी ही रहेगी। लेकिन मेरा खयाल है कि यह अपवित्र सपना है, और सदा सपना ही रहेगा। अिस्लामकी अपनी खास संस्कृति है। अिसी तरह हिन्दू धर्मकी भी अपनी संस्कृति है। भावी भारतमें अिन दोनों संस्कृतियोंका पूर्ण और सुखद सम्मिश्रण रहेगा। जब वह शुभ दिन आयेगा, तब हिन्दू-मुसलमानोंकी सामान्य भाषा हिन्दुस्तानी होगी। लेकिन अुर्दू फिर भी अरबी-फ़ारसी शब्दोंकी बहुलताके साथ फूलती-फलती रहेगी, और हिन्दी अपने संस्कृत शब्दोंके भारी भण्डारके साथ फूले-फलेगी। शिबलीने जिस भाषामें लिखा वह मर नहीं सकती, अिसी तरह तुलसीदास और सूरदासकी भाषा भी मर नहीं सकती। लेकिन अुन दोनोंकी अच्छाअियाँ हिन्दुस्तानी ज़बानमें बिलकुल घुल-मिल जायेंगी।

(हरिजनसेवक, २९–१०–'३८)

२८

राष्ट्रभाषाका नाम

अपनेको पुराने कांग्रेसी कार्यकर्त्ता कहनेवाले अेक मुसलमान मित्र यों लिखते हैं —

"... हिन्दुस्तानकी 'राष्ट्रभाषा' की चर्चाके दरमियान ध्यान न रहनेसे जो अेक विरोधाभास रह गया है, अुसकी तरफ़ आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ। जहाँ तक मुझे याद है, अिस बारेमें कांग्रेस द्वारा पास किये गये प्रस्तावमें 'हिन्दी' नहीं, बल्कि 'हिन्दुस्तानी' शब्द रखा गया है। आप खुद भी अपनी तमाम तक़रीरोंमें और लेखोंमें हमेशा 'हिन्दुस्तानी' शब्दका ही अिस्तेमाल करते रहे हैं। अैसी हालतमें यह अेक अफ़सोसकी बात है कि बहुतसे कांग्रेसी कांग्रेसके प्रस्तावकी अिज्ज़त न करते हुअे 'हिन्दी' शब्दका ही अुपयोग करते रहते हैं। अिस ग़लत शब्दके अिस्तेमालसे कांग्रेसके मातहत काम करनेवाले मुख्तलिफ़ दलों या मण्डलोंमें बहुत ग़लतफ़हमी फैल गअी है। मेरे खयालमें हरअेक कांग्रेसीको चाहिये कि राष्ट्रभाषाका ज़िक्र करते समय वह 'हिन्दी' या 'अुर्दू' में से किसीका कहीं अिस्तेमाल न करके 'हिन्दुस्तानी' शब्दका अिस्तेमाल करे।"

मैं अिस सुझावको सच्चे दिलसे मंज़ूर करता हूँ। राष्ट्रभाषाका अेक ही नाम है, और वह है 'हिन्दुस्तानी'।

(सेगांव, २५-१२-'३८)

२९

हिन्दुस्तानीका शब्दकोश

सवाल — आप हिन्दुस्तानीका क्या अर्थ करते हैं? क्या आप हिन्दी-अुर्दू दोनोंका अेक सामान्य शब्दकोश पसन्द करते हैं?

जवाब — मैं तो आपसे आगे बढ़ गया हूँ। मैं जानता हूँ कि मौलवी अब्दुल हक़ साहबने अेक शब्दकोश तैयार किया है, जिसमें काशीवाले हिन्दी शब्द-सागरमें दिये गये तमाम अुर्दू और अुस्मानिया शब्दकोशमें दिये गये तमाम हिन्दी शब्द लिये हैं। मैंने कांग्रेससे खास तौर पर सिफ़ारिश की है कि वह मौलवी साहबके अिस शब्दकोशको मंजूर कर ले, और नये शब्दोंके लिअे मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और श्री राजेन्द्रबाबूकी अेक कमेटी बना दे।

(हरिजनबंधु, २९-१-'३९)

३०

हमारी जिम्मेदारी

(राष्ट्रभाषाके प्रचारकोंसे)

[ता० २४-९-१९३९ के दिन राष्ट्रभाषा-प्रचारकी वर्धा-समितिकी तरफ़से चलनेवाले अध्यापन-मन्दिरके विद्यार्थियोंको दिया गया भाषण 'सबकी बोली' मासिक, अंक १, पु० १, पृष्ठ २ से लेकर नीचे दिया है।]

राष्ट्रभाषा अभी बनी नहीं है, अभी तो अुसका जन्म ही हुआ है। हिन्दीमें अभी तक अैसे काफ़ी ग्रन्थ नहीं मिलते, जिनके ज़रिये विज्ञान

आदिके समान विषयोंको पढ़ाया जाता हो। हाँ, बँगला और अुर्दूमें कुछ अैसे ग्रन्थ तैयार हुअे हैं। परन्तु बँगलासे भी ज़्यादा तरक़्क़ी अुर्दू भाषाने की है। अुस्मानिया युनिवर्सिटीने सबसे ज़्यादा काम किया है। अुन लोगोंने अिस काममें लाखों रुपया भी खर्च किया है। अुनके यहाँ अूँचे-से-अूँचे दरजोंमें विज्ञान (सायन्स) जैसे मुश्किल विषयोंकी तालीम अुर्दूकी मारफ़त दी जाती है। हिन्दीमें अभी अैसा नहीं हुआ है।

महामना मालवीयजीने हिन्दू-विश्वविद्यालय क़ायम करके बहुत बड़ा काम किया है। वैसा काम मेरे देखनेमें कहीं नहीं आया। दूसरे मुल्कोंमें भी अैसा काम नहीं हुआ है। अिसमें कोअी सन्देह नहीं कि मालवीयजी सचमुच भारत-भूषण हैं। लेकिन खेद है कि अभी तक अुनके हिन्दू-विश्वविद्यालयमें भी विज्ञान-जैसे कठिन विषयको हिन्दी भाषाके ज़रिये न पढ़ाकर अंग्रेज़ीकी मारफ़त ही पढ़ाया जाता है। अिस कमीको दूर करना होगा — यही आप लोगोंका मिशन है, जिम्मेदारी है।

राष्ट्रभाषा-प्रचारकोंका हिन्दी और अुर्दू, दोनों पर पूरा अधिकार होना चाहिये। जब तक अैसा न होगा, तब तक आप लोग सच्चे राष्ट्रभाषा-प्रचारक न बन सकेंगे। मालवीयजी महाराजको और डॉक्टर भगवानदासजीको देखिये। वे जब मुसलमान भाअियोंकी सभामें जाते हैं, तो बिलकुल अुर्दू ज़बानमें बात करते हैं। मुसलमान कभी अुन्हें पराया नहीं समझते, अेक तरहसे अपनी भाषाके कारण वे मुसलमान ही जान पड़ते हैं। बंगालियोंके साथ बँगलामें ही बातचीत करते हैं, और हिन्दी-भाषियोंके साथ सुन्दर हिन्दीमें। [बीचमें अेक महाशय प्रश्न कर बैठे — "बापूजी, वे लोग (मालवीयजी और डॉक्टर भगवानदासजी) तो अपवादस्वरूप हैं?"] बापूने कहा — आप लोगोंका यह ख़याल ग़लत है। आप लोगोंको भी अुनकी तरह अपवादरूप बनना है। जब तक आप लोग अैसे अपवादरूप न बनेंगे, तब तक आप सच्चे राष्ट्रभाषा-प्रचारक न बन सकेंगे। हाँ, पैसा कमानेके हेतुसे आप २५), ३०) रुपये तो कमाते रह सकेंगे, मगर अिससे आपके

मुल्कको कोअी लाभ नहीं हो सकता। फिर आप लोगोंसे फ़ायदा ही क्या रहा? पशु भी सुखसे चारा चरकर अपना निर्वाह कर लेते हैं।

जब तक आप लोग अुर्दू-हिन्दी दोनोंके खासे विद्वान् नहीं बन जाते, तब तक राष्ट्रभाषाकी सच्ची सेवा नहीं कर सकते। राष्ट्रभाषा-प्रचारकोंको तो ठीक-ठीक अिनके विद्वान् बनना है — अिस कलाको हासिल किये बिना वे किसी तरह सच्चे प्रचारक नहीं हो सकते। आप लोग पूछ सकते हैं कि 'जब अुर्दू और बँगलामें अच्छा साहित्य मौजूद है, तब अुसीको राष्ट्रभाषा क्यों न मानें?' हाँ, यह कहना ठीक है, परन्तु मैं देखता हूँ कि अैसी कोअी भाषा नहीं — हिन्दी-अुर्दूके मिश्रणको छोड़कर — जो राष्ट्रभाषा बन सके। हिन्दी-अुर्दूका मिश्रण बहुत आसान है। धीरे-धीरे, आप लोगोंकी मेहनतसे, अिस मिश्रणसे अूँचा साहित्य भी तैयार हो सकता है। यही आशा है और अिसीलिअे मैंने हिन्दी-अुर्दूके आसान मिश्रणको राष्ट्रभाषा बनाने पर ज़ोर दिया है। मुझे अुम्मीद है कि आगे चलकर हिन्दुस्तानके सब भाअी-बहन हिन्दी-अुर्दूके मिश्रणको राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लेंगे। यही आम जनताकी भाषा हो सकती है। अिसलिअे अिसको चुना गया है। अिसके बोलनेवालोंकी संख्या सबसे अधिक है।

काका साहब अिस अुम्रमें भी राष्ट्रभाषाके लिअे कितना परिश्रम कर रहे हैं? किन्तु अब अुनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता — मैं अुनको बार-बार समझा रहा हूँ कि वे अब अेक जगह बैठकर आरामसे राष्ट्रभाषाकी जो कुछ सेवा कर सकें, करें। परंतु वे अभी तक नहीं मान रहे हैं। आप लोगोंको, जो यहाँ अध्यापन-मंदिरमें आये हैं, कठिन मेहनत करके दोनों भाषाओंको सीख लेना चाहिये, और काका साहबको कुछ आराम लेनेकी सुविधा कर देनी चाहिये।

('सबकी बोली', अक्तूबर, १९३९)

३१

रोमन बनाम देवनागरी लिपि

१

मुझे मालूम हुआ है कि आसाममें कुछेक जातियोंको देवनागरीकी जगह रोमन लिपिमें लिखना-पढ़ना सिखाया जा रहा है। मैं अपनी यह राय तो जाहिर कर ही चुका हूँ कि अगर हिन्दुस्तानमें सर्वमान्य हो सकनेवाली कोअी लिपि है, तो वह देवनागरी ही है, फिर भले ही अुसमें सुधारकी गुंजाअिश हो या न हो। शुद्ध वैज्ञानिक और राष्ट्रीय दृष्टिसे जब तक मुसलमान भाअी अपनी राजीसे देवनागरीकी श्रेष्ठता स्वीकार नहीं करते, तब तक अुर्दू या फ़ारसी लिपि भी जरूर जारी रहेगी। मगर अुपर्युक्त प्रश्नके लिअे यह बात अप्रस्तुत है। अिन दो लिपियोंके साथ रोमन लिपिका मेल नहीं बैठता। रोमन लिपिके समर्थक तो अिन दोनों ही लिपियोंको रद्द कर देनेकी राय देंगे, किन्तु विज्ञान तथा भावना दोनों ही दृष्टियोंसे रोमन लिपि चल नहीं सकती। रोमन लिपिका मुख्य लाभ यह है कि छापने और टालिप करनेमें वह आसान पड़ती है। किन्तु अुसे सीखनेमें करोड़ों मनुष्योंको जो मेहनत पड़ती है, अुसे देखते हुअे अिस लाभका हमारे लिअे कोअी मूल्य नहीं। लाखों-करोड़ोंको तो देवनागरीमें या अपने-अपने प्रान्तकी लिपिमें ही लिखा हुआ अपने यहाँका साहित्य पढ़ना है, अिसलिअे अुन्हें रोमन लिपि जरा भी सहायता नहीं पहुँचा सकती। करोड़ों हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिअे भी देवनागरीका सीखना आसान है, क्योंकि अधिकांश प्रान्तीय लिपियाँ देवनागरीसे ही निकली हैं। मैंने अिसमें मुसलमानोंका समावेश जान-बूझकर किया है। मसलन्, बंगालके मुसलमानोंकी मादरी जबान बंगला है, और तामिलनाड्के मुसलमानोंकी तामिल। अुर्दू-प्रचारके वर्तमान आन्दोलनका स्वाभाविक परिणाम यह

होगा कि हिन्दुस्तान भरके मुसलमान अपनी-अपनी प्रान्तीय मातृभाषाके अलावा अुर्दू भी सीखेंगे। किन्हीं भी परिस्थितियोंमें क़ुरानशरीफ़ पढ़नेके लिअे अुन्हें अरबी तो सीखनी ही पड़ेगी। मगर करोड़ों हिन्दू-मुसलमानोंके लिअे रोमन लिपिका प्रयोजन तो अंग्रेज़ी सीखनेके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं। अिसी तरह हिन्दुओंको अपने धर्मग्रन्थ मूल भाषामें पढ़नेके लिअे देवनागरी सीखनेकी ज़रूरत पड़ती है, और वे अुसे सीखते ही हैं। अिस तरह देवनागरी लिपिको सर्वमान्य बनानेके पीछे दृढ़ कारण हैं। अगर हम रोमन लिपिको दाखिल करें, तो वह निरी भाररूप ही साबित होगी, और कभी लोकप्रिय न बनेगी। जब सच्ची लोक-जागृति हो जायगी, तब अिस प्रकारके भाररूप दबाव रह ही न सकेंगे। और जन-जागृति तो बहुत जल्दी आनेवाली है। फिर भी लाखों-करोड़ोंको जगानेमें वक़्त लगेगा। जागृति कोअी अैसी चीज़ तो है नहीं, जो साँचेमें ढालकर बनाअी जा सकती हो। यह तो अगम रीतिसे आती है या आती हुअी प्रतीत होती है। देशके कार्यकर्त्ता तो केवल लोगोंकी मनोवृत्तिकी पेशबीनी करके अुसके आनेमें जल्दी कर सकते हैं।

(हरिजनसेवक, १८-२-'३९)

२

स० — रोमन लिपिके लिअे आपके दिलमें पूर्वग्रह है, क्योंकि वही चीज़ अंग्रेज़ीके लिअे भी आपके दिलमें है। अगर अैसा न होता, तो आप बिना किसी हिचकिचाहटके देवनागरी और फ़ारसीके बदले रोमन लिपिकी हिमायत करते।

ज० — आप ग़लती पर हैं। मेरे दिलमें किसीके विरुद्ध कोअी पूर्वग्रह नहीं है। लेकिन मैं हर अुस चीज़ या व्यक्तिके विरुद्ध हूँ, जो दूसरेके अधिकार या पदको हड़पना चाहता है। रोमन लिपिने हिन्दुस्तानमें

अपने पैर जमा लिये हैं। लेकिन वह हिन्दुस्तानी लिपियोंकी जगह नहीं ले सकती। अगर मेरी चले, तो सब प्रान्तीय भाषाओंके लिअे देवनागरी लिपिका ही अिस्तेमाल हो, और राष्ट्रभाषाके लिअे देवनागरी और फ़ारसी दोनोंका। अरबी लिपि, जिसमें से फ़ारसी लिपि निकली है, मुसलमानोंके लिअे अुतनी ही आवश्यक है, जितनी संस्कृत हिन्दुओंके लिअे। रोमन लिपिका सुझाव अुसकी अपनी किसी खूबीके लिअे नहीं, बल्कि बतौर समझौतेके किया गया है। अुसके पक्षमें सिवा यिसके कि वह सारी पछाँही दुनियामें फैली हुअी है, और कोअी दलील नहीं। मगर अिसका यह मतलब नहीं कि वह देवनागरी लिपिकी — जो हमारी ज्यादातर प्रान्तीय भाषाओंकी जननी है, और हमारी जानी हुअी सब लिपियोंमें ज्यादा संपूर्ण है — जगह ले ले, या फ़ारसी लिपिको हटा दे, जो अुत्तरी हिन्दुस्तानके करोड़ों हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा लिखी जाती है। जहाँ हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच लिपिके कारण कोअी अन्तर है, वहाँ किसी तीसरी और अपूर्ण लिपिको अपनानेसे अुनमें मेल नहीं हो जायगा। अगर वे दोनों अेक-दूसरेकी मुहब्बतके खयालसे दोनों लिपियोंको सीखनेकी मेहनत अुठायेंगे, तो ज़रूर अेक हो सकेंगे। रोमन लिपिका अपना अेक महान् और अद्वितीय स्थान है। अुसे अिससे ज्यादा अूँचे स्थानकी आकांक्षा न रखनी चाहिये।

(हरिजनसेवक, १२-४-'४२)

३२

संस्कृतकी पुत्रियोंके लिअे अेक लिपि

यह सवाल अनेक वर्षोंसे लोगोंके सामने है कि संस्कृतसे निकलनेवाली या जिन्होंने स्वेच्छासे संस्कृतको ग्रहण कर लिया है, अुन सब भारतीय भाषाओंकी अेक लिपि होनी चाहिये। अितने पर भी तीव्र प्रान्तीयताके. अिन दिनोंमें अेक लिपिके पक्षमें कुछ कहना भी शायद अप्रासंगिक समझा जाय। लेकिन सारे देशमें साक्षरताका जो आन्दोलन हो रहा है, अुसके कारण अेक लिपिका प्रतिपादन करनेवालोंकी बात सुननी ही चाहिये। मैं भी बरसोंसे अेक लिपिका ही प्रतिपादन कर रहा हूँ। मुझे याद है कि दक्षिण अफ्रीकामें गुजरातियोंके साथ भारत-संबंधी पत्रव्यवहारमें अेक हद तक मैंने देवनागरी लिपिका व्यवहार भी शुरू कर दिया था। अिसमें शक नहीं कि अैसा करनेसे विभिन्न प्रान्तोंके पारस्परिक संबंधोंमें बहुत सुविधा हो जायगी और विविध भाषाओंके सीखनेमें आजकी बनिस्बत कहीं ज़्यादा आसानी होगी। अगर देशके शिक्षित लोग आपसमें मिलकर विचार करें और अेक लिपिका निश्चय कर लें, तो सबके द्वारा अुसका ग्रहण किया जाना आसान बात हो जायगी। क्योंकि जो लोग लाखोंकी तादादमें निरक्षर हैं, अुन्हें अिस बातमें कोअी दिलचस्पी ही नहीं होती कि पढ़ाअीके लिअे कौनसी लिपि रखी गअी है। अगर यह सुखद सम्मिलन हो जाय, तो भारतमें देवनागरी और अुर्दू, ये दो लिपियाँ ही रह जायँगी, और हरअेक राष्ट्रवादी दोनों लिपियोंको सीखना अपना फ़र्ज़ समझेगा। मैं सभी भारतीय भाषाओंका प्रेमी हूँ। यथासम्भव अधिक-से-अधिक लिपियोंको सीखनेकी मैंने कोशिश भी की है। ७० वर्षकी अुम्रमें भी मुझमें अितनी शक्ति मौजूद है कि अगर वक़्त मिले, तो मैं और भी भारतीय भाषायें सीख सकता हूँ। अैसी पढ़ाअी मेरे लिअे मनोरंजनकी

ही चीज़ होगी। लेकिन भाषाओंके प्रति अपने अितने प्रेमके बावजूद, मुझे यह क़बूल करना ही होगा कि मैं सब लिपियाँ नहीं सीख पाया हूँ। अलबत्ता, अगर अेक ही स्रोतसे निकली हुअी भाषायें अेक ही लिपिमें लिखी जायँ, तो बहुत थोड़े समयमें विविध प्रान्तोंकी खास-खास भाषाओंका कामचलाअू ज्ञान मैं प्राप्त कर लूँगा। और जहाँ तक देवनागरीका सवाल है, सौन्दर्य या सजावटकी दृष्टिसे लज्जित होने जैसी कोअी बात अुसमें नहीं है। अिसलिअे मैं आशा करता हूँ कि जो लोग साक्षरताका आन्दोलन करनेमें लगे हुअे हैं, वे मेरे अिस सुझाव पर भी कुछ विचार करेंगे। अगर वे देवनागरी लिपिको ग्रहण कर लें, तो निश्चय ही वे भावी सन्ततिके परिश्रम और समयकी बचत करके अुनकी दुआयें पायेंगे।

(हरिजनसेवक, ५-८-'३९)

३३

राष्ट्रभाषा-प्रचार

['रचनात्मक कार्यक्रम' नामकी पुस्तिकामें राष्ट्रभाषा-प्रचार और मातृभाषा-प्रेम पर लिखा गया भाग नीचे दिया है।]

अेक रचनात्मक कार्य

हमने अपनी मातृभाषाओंके मुक़ाबले अंग्रेजीसे ज़्यादा मुहब्बत रखी, जिसका नतीजा यह हुआ कि पढ़े-लिखे और राजनीतिक दृष्टिसे जागे हुअे अूँचे तबक़ेके लोगोंके साथ आम लोगोंका रिश्ता बिलकुल टूट गया, और अुन दोनोंके बीच अेक गहरी खाअी बन गअी। यही वजह है कि हिन्दुस्तानकी ज़बानें या भाषायें ग़रीब बन गअी हैं, और अुन्हें पूरा पोषण नहीं मिला। अपनी मातृभाषामें अटपटे और गहरे तात्त्विक विचारोंको

प्रकट करनेकी अपनी व्यर्थ चेष्टामें हम गोते खाते हैं। हमारे पास विज्ञानकी कोअी निश्चित परिभाषा नहीं — पारिभाषिक या अिस्तिलाही शब्द नहीं। अिस सबका नतीजा खतरनाक हुआ है। हमारी आम जनता युगके मानससे यानी नये ज़मानेके विचारोंसे बिलकुल अछूती रही है। हिन्दुस्तानकी महान् भाषाओंकी जो अवगणना हुअी है, और अुसकी वजहसे हिन्दुस्तानको जो बेहद नुक़सान पहुँचा है, अुसका कोअी अंदाज़ा या माप आज हम निकाल नहीं सकते, क्योंकि हम अिस घटनाके बहुत नज़दीक हैं। मगर अितनी बात तो आसानीसे समझी जा सकती है कि अगर आज तक हुअे नुक़सानका अिलाज नहीं किया गया, यानी जो हानि हो चुकी है, अुसकी भरपाअी करनेकी कोशिश हमने न की, तो हमारी आम जनताको मानसिक मुक्ति नहीं मिलेगी, वह रूढ़ियों और वहमोंसे घिरी रहेगी। नतीजा यह होगा कि आम जनता स्वराज्यके निर्माणमें कोअी ठोस मदद नहीं पहुँचा सकेगी। अहिंसाकी बुनियाद पर रचे गये स्वराज्यकी चर्चामें यह बात शामिल है कि हमारा हरअेक आदमी आज़ादीकी हमारी लड़ाअीमें खुद स्वतंत्र रूपसे सीधा हाथ बँटायेगा। लेकिन अगर हमारी आम जनता लड़ाअीके हर पहलू और अुसकी हर सीढ़ीसे परिचित न हो, और अुसके रहस्यको भलीभाँति न समझती हो, तो स्वराज्यकी रचनामें वह अपना हिस्सा किस तरह अदा करेगी? और जब तक सर्वसाधारणकी अपनी बोलीमें लड़ाअीके हर पहलू व क़दमको अच्छी तरह समझाया नहीं जाता, अुनसे यह अुम्मीद कैसे की ज़ाय कि वे अुसमें हाथ बँटायेंगे?

समूचे हिन्दुस्तानके साथ व्यवहार करनेके लिअे हमको भारतीय भाषाओंमें से अेक अैसी भाषा या ज़बानकी ज़रूरत है, जिसे आज ज़्यादा-से-ज़्यादा तादादमें लोग जानते और समझते हों और बाक़ीके लोग जिसे झट सीख सकें। अिसमें शक नहीं कि हिन्दी अैसी ही भाषा है। अुत्तरके हिन्दू और मुसलमान दोनों अिस भाषाको बोलते और समझते हैं। यही बोली जब अुर्दू लिपिमें लिखी जाती है, तो अुर्दू

कहलाती है। राष्ट्रीय महासभाने सन् १९२५ के अपने कानपुरवाले जलसेमें मंजूर किये मशहूर ठहरावमें सारे हिन्दुस्तानकी अिसी बोलीको हिन्दुस्तानी कहा है। और तबसे, अुसूलन् ही क्यों न हो, हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा या क़ौमी ज़बान मानी गअी है। 'अुसूलन्' या 'सिद्धान्ततः' मैंने जानबूझकर कहा है, क्योंकि खुद कांग्रेसवालोंने भी अिसका जितना मुहावरा रखना चाहिये, नहीं रखा। हिन्दुस्तानकी आम जनताकी राजनीतिक शिक्षाके लिअे हिन्दुस्तानकी भाषाओंके महत्त्वको पहचानने और माननेकी अेक खास कोशिश सन् १९२० में शुरू की गअी थी। अिसी हेतुसे अिस बातका खास प्रयत्न किया गया था कि सारे हिन्दुस्तानके लिअे अेक अैसी भाषाको जान और मान लिया जाय, जिसे राजनीतिक दृष्टिसे जागा हुआ हिन्दुस्तान आसानीसे बोल सके, और अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभाके आम जलसोंमें अिकट्ठा होनेवाले हिन्दुस्तानके जुदा-जुदा सूबोंसे आये हुअे कांग्रेसी जिसे समझ सकें। यह राष्ट्रभाषा हमें अिस तरह सीखनी चाहिये कि जिससे हम सब अिसकी दोनों शैलियोंको समझ और बोल सकें और अिसे दोनों लिखावटोंमें लिख सकें।

मुझे अफ़सोसके साथ कहना पड़ता है कि बहुतेरे कांग्रेसजनोंने अिस ठहराव पर अमल नहीं किया। मेरी समझमें अिसका अेक शर्मनाक नतीजा यह हुआ है कि आज भी अंग्रेज़ी बोलनेका आग्रह रखनेवाले और अपने समझनेके लिअे दूसरोंको अंग्रेज़ीमें ही बोलनेके लिअे मजबूर करनेवाले कांग्रेसजनोंका बेहूदा दृश्य हमें देखना पड़ता है। अंग्रेज़ी ज़बानने हम पर जो मोहिनी डाली है, अुसके असरसे हम अभी तक छूटे नहीं हैं। अिस मोहिनीके वश होकर हम लोग हिन्दुस्तानको अपने ध्येय या मक़सदकी ओर आगे बढ़नेसे रोक रहे हैं। जितने साल हम अंग्रेज़ी सीखनेमें बरबाद करते हैं, अगर अुतने महीने भी हम हिन्दुस्तानी सीखनेकी तकलीफ़ न अुठायें, तो सचमुच ही कहना होगा कि जनसाधारणके प्रति अपने प्रेमकी जो डींगें हम हाँका करते हैं, वे निरी डींगें ही हैं।

३४

परदेशी भाषाकी ग़ुलामी

[हिन्दू विश्वविद्यालय, काशीके दीक्षान्त भाषणसे]

. . . मैंने सर राधाकृष्णन्‌से पहले ही कह दिया था कि मुझे क्यों बुलाते हैं? मैं यहाँ पहुँचकर क्या कहूँगा? जब बड़े-बड़े विद्वान् मेरे सामने आ जाते हैं, तो मैं हार जाता हूँ। जबसे हिन्दुस्तान आया हूँ, मेरा सारा समय कांग्रेसमें और ग़रीबों, किसानों और मज़दूरों वग़ैरामें बीता है। मैंने अुन्हींका काम किया है। अुनके बीच मेरी ज़बान अपने-आप खुल जाती है। मगर विद्वानोंके सामने कुछ कहते हुअे मुझे बड़ी झिझक मालूम होती है। श्री राधाकृष्णन्‌ने मुझे लिखा कि मैं अपना लिखा हुआ भाषण अुन्हें भेज दूँ। पर मेरे पास अुतना समय कहाँ था? मैंने अुन्हें जवाब दिया कि वक़्त पर जैसी प्रेरणा मुझे मिल जायगी, अुसीके अनुसार मैं कुछ कह दूँगा। मुझे प्रेरणा मिल गअी है। मैं जो कुछ कहूँगा, मुमकिन है वह आपको अच्छा न लगे। अुसके लिअे आप मुझे माफ़ कीजियेगा। यहाँ आकर जो कुछ मैंने देखा, और देखकर मेरे मनमें जो चीज़ पैदा हुअी, वह शायद आपको चुभेगी। मेरा खयाल था कि कम-से-कम यहाँ तो सारी कार्रवाअी अंग्रेज़ीमें नहीं, बल्कि राष्ट्रभाषामें ही होगी। मैं यहाँ बैठा यही अिन्तज़ार कर रहा था कि कोअी न कोअी तो आखिर हिन्दी या अुर्दूमें कुछ कहेगा। हिन्दी-अुर्दू न सही, कम-से-कम मराठी या संस्कृतमें ही कोअी कुछ कहता। लेकिन मेरी सब आशायें निष्फल हुअीं।

अंग्रेज़ोंको हम गालियाँ देते हैं कि अुन्होंने हिन्दुस्तानको ग़ुलाम बना रखा है; लेकिन अंग्रेज़ीके तो हम ख़ुद ही ग़ुलाम बन गये हैं। अंग्रेज़ोंने

हिन्दुस्तानको काफ़ी पामाल किया है। अिसके लिअे मैंने अुनकी कड़ी-से-कड़ी टीका भी की है। परंतु अंग्रेज़ीकी अपनी अिस गुलामीके लिअे मैं अुन्हें ज़िम्मेदार नहीं समझता। खुद अंग्रेज़ी सीखने और अपने बच्चोंको अंग्रेज़ी सिखानेके लिअे हम कितनी-कितनी मेहनत करते हैं? अगर कोअी हमें यह कहता है कि हम अंग्रेज़ोंकी तरह अंग्रेज़ी बोल लेते हैं, तो हम मारे खुशीके फूले नहीं समाते! अिससे बढ़कर दयनीय गुलामी और क्या हो सकती है? अिसकी वजहसे हमारे बच्चों पर कितना ज़ुल्म होता है? अंग्रेज़ीके प्रति हमारे अिस मोहके कारण देशकी कितनी शक्ति और कितना श्रम बरबाद होता है? अिसका पूरा हिसाब तो हमें तभी मिल सकता है, जब गणितका कोअी विद्वान् अिसमें दिलचस्पी ले। कोअी दूसरी जगह होती, तो शायद यह सब बरदाश्त कर लिया जाता, मगर यह तो हिन्दू-विश्वविद्यालय है। जो बातें अिसकी तारीफ़में अभी कही गअी हैं, अुनमें सहज ही अेक आशा यह भी प्रकट की गअी है कि यहाँके अध्यापक और विद्यार्थी अिस देशकी प्राचीन संस्कृति और सभ्यताके जीते-जागते नमूने होंगे। मालवीयजीने तो मुँह-माँगी तनख्वाहें देकर अच्छे-से-अच्छे अध्यापक यहाँ आप लोगोंके लिअे जुटा रखे हैं, अब अुनका दोष तो कोअी कैसे निकाल सकता है? दोष ज़मानेका है। आज हवा ही कुछ अैसी बन गअी है कि हमारे लिअे अुसके असरसे बच निकलना मुश्किल हो गया है। लेकिन अब वह ज़माना भी नहीं रहा, जब विद्यार्थी जो कुछ मिलता था, अुसीमें संतुष्ट रह लिया करते थे। अब तो वे बड़े-बड़े तूफ़ान भी खड़े कर लिया करते हैं। छोटी-छोटी बातोंके लिअे भूख-हड़ताल तक कर देते हैं। अगर अीश्वर अुन्हें बुद्धि दे, तो वे कह सकते हैं— "हमें अपनी मातृभाषामें पढ़ाओ!" मुझे यह जानकर खुशी हुअी कि यहाँ आन्ध्रके २५० विद्यार्थी हैं। क्यों न वे सर राधाकृष्णन्‌के पास जायें और अुनसे कहें कि यहाँ हमारे लिअे अेक आन्ध्र-विभाग खोल

दीजिये, और तेलगूमें हमारी सारी पढ़ाअीका प्रवन्ध करा दीजिये? और, अगर वे मेरी अक्लसे काम लें, तव तो अुन्हें कहना चाहिये कि हम हिन्दुस्तानी हैं, चुनांचे हमें अैसी ज़बानमें पढ़ाअिये, जो सारे हिन्दुस्तानमें समझी जा सके। और, अैसी ज़बान तो हिन्दुस्तानी ही हो सकती है।

कहाँ जापान, कहाँ हम?

जापान आज अमेरिका और अिग्लैण्डसे लोहा ले रहा है। लोग अिसके लिअे अुसकी तारीफ़ करते हैं। मैं नहीं करता। फिर भी जापानकी कुछ वातें सचमुच हमारे लिअे अनुकरणीय हैं। जापानके लड़कों और लड़कियोंने यूरोपवालोंसे जो कुछ पाया है, सो अपनी मातृभाषा जापानीके ज़रिये ही पाया है, अंग्रेज़ीके ज़रिये नहीं। जापानी लिपि वहुत कठिन है, फिर भी जापानियोंने रोमन लिपिको कभी नहीं अपनाया। अुनकी सारी तालीम जापानी लिपि और जापानी ज़वानके ज़रिये ही होती है। जो चुने हुअे जापानी पश्चिमी देशोंमें खास क़िस्मकी तालीमके लिअे भेजे जाते हैं, वे भी जव आवश्यक ज्ञान पाकर लौटते हैं, तो अपना सारा ज्ञान अपने देशवासियोंको जापानी भाषाके ज़रिये ही देते हैं। अगर वे अैसा न करते, और देशमें आकर दूसरे देशोंके जैसे स्कूल और कॉलेज अपने यहाँ भी वना लेते, और अपनी भाषाको तिलांजलि देकर अंग्रेज़ीमें सव कुछ पढ़ाने लगते, तो अुससे वढ़कर वेवकूफ़ी और क्या होती? अिस तरीक़ेसे जापानवाले नअी भाषा तो सीखते, लेकिन नया ज्ञान न सीख पाते। हिन्दुस्तानमें तो आज हमारी महत्त्वाकांक्षा ही यह रहती है कि हमें किसी तरह कोअी सरकारी नौकरी मिल जाय, या हम वकील, वैरिस्टर, जज, वग़ैरा वन जायें। अंग्रेज़ी सीखनेमें हम वरसों विता देते हैं, तो भी सर राधाकृष्णन् या मालवीयजी महाराजके समान अंग्रेज़ी जाननेवाले हमने कितने पैदा किये हैं? आखिर वह अेक पराअी भाषा ही है

न? अितनी कोशिश करने पर भी हम अुसे अच्छी तरह सीख नहीं पाते। मेरे पास सैकड़ों खत आते रहते हैं, जिनमें कअी अेम० अे० पास लोगोंके भी होते हैं। परंतु चूंकि वे अपनी ज़बानमें नहीं लिखते, अिसलिअे अंग्रेज़ीमें अपने खयाल अच्छी तरह ज़ाहिर नहीं कर पाते।

चुनांचे यहां बैठे-बैठे मैंने जो कुछ देखा, अुसे देखकर मैं तो हैरान रह गया! जो कार्रवाअी अभी यहां हुअी, जो कुछ कहा या पढ़ा गया, अुसे आम जनता तो कुछ समझ ही न सकी। फिर भी हमारी जनतामें अितनी अुदारता और धीरज है कि वह चुपचाप सभामें बैठी रहती है और खाक समझमें न आने पर भी यह सोचकर सन्तोष कर लेती है कि आखिर ये हमारे नेता ही हैं न? कुछ अच्छी ही बात कहते होंगे। लेकिन अिससे अुसे लाभ क्या? वह तो जैसी आअी थी, वैसी ही खाली लौट जाती है। अगर आपको शक हो, तो मैं अभी हाथ अुठवा कर लोगोंसे पूछूं कि यहांकी कार्रवाअीमें वे कितना कुछ समझे हैं? आप देखियेगा कि वे सब 'कुछ नहीं', 'कुछ नहीं' कह अुठेंगे। यह तो हुअी आम जनताकी बात। अब अगर आप यह सोचते हों कि विद्यार्थियोंमें से हरअेकने हर बातको समझा है, तो वह दूसरी बड़ी ग़लती है।

आजसे पच्चीस साल पहले जब मैं यहां आया था, तब भी मैंने यही सब बातें कही थीं। आज यहां आने पर जो हालत मैंने देखी, अुसने अुन्हीं चीज़ोंको दोहरानेके लिअे मुझे मजबूर कर दिया।

शारीरिक ह्रास

दूसरी बात जो मेरे देखनेमें आअी, अुसकी तो मुझे ज़रा भी अुम्मीद न थी। आज सुबह मैं मालवीयजी महाराजके दर्शनोंको गया था। वसंत-पंचमीका अवसर था, अिसलिअे सब विद्यार्थी भी वहां अुनके दर्शनोंको आये थे। मैंने अुस वक़्त भी देखा कि विद्यार्थियोंको जो तालीम मिलनी

चाहिये, वह अुन्हें नहीं मिलती। जिस सभ्यता, खामोशी और तरतीबके साथ अुन्हें चलते आना चाहिये, अुस तरह चलना अुन्होंने सीखा ही न था। यह कोअी मुश्किल काम नहीं; कुछ ही समयमें सीखा जा सकता है। सिपाही जब चलते हैं, तो सिर अुठाये, सीना ताने, तीरकी तरह सीधे चलते हैं। लेकिन विद्यार्थी तो अुस वक़्त आड़े-टेढ़े, आगे-पीछे, जैसा जिसका दिल चाहता था, चलते थे। अुनके अुस 'चलने' को चलना कहना भी शायद मुनासिब न हो। मेरी समझमें तो अिसका कारण भी यही है कि हमारे विद्यार्थियों पर अंग्रेजी ज़बानका बोझ अितना पड़ जाता है कि अुन्हें दूसरी तरफ़ सर अुठाकर देखनेकी फ़ुरसत नहीं मिलती। यही वजह है कि अुन्हें दरअसल जो सीखना चाहिये, अुसे वे सीख नहीं पाते।

बौद्धिक थकान

अेक और बात मैंने देखी। आज सुबह हम श्री शिवप्रसाद गुप्तके घरसे लौट रहे थे। रास्तेमें विश्वविद्यालयका विशाल प्रवेशद्वार पड़ा। अुस पर नज़र गअी तो देखा, नागरी लिपिमें 'हिन्दू विश्वविद्यालय' अितने छोटे हरूफ़ोंमें लिखा है कि अैनक लगाने पर भी वे नहीं पढ़े जाते। पर अंग्रेज़ीमें Benares Hindu University ने तीन चौथाअीसे भी ज्यादा जगह घेर रखी थी! मैं हैरान हुआ कि यह क्या मामला है? अिसमें मालवीयजी महाराजका कोअी क़सूर नहीं, यह तो किसी अिंजीनियरका काम होगा। लेकिन सवाल तो यह है कि अंग्रेज़ीकी वहाँ ज़रूरत ही क्या थी? क्या हिन्दी या फ़ारसीमें कुछ नहीं लिखा जा सकता था? क्या मालवीयजी, और क्या सर राधाकृष्णन्, सभी हिन्दू-मुस्लिम अेकता चाहते हैं। फ़ारसी मुसलमानोंकी अपनी खास लिपि मानी जाने लगी है। अुर्दूका देशमें अपना खास स्थान है। अिसलिअे अगर दरवाज़े पर फ़ारसीमें, नागरीमें या हिन्दुस्तानकी दूसरी किसी लिपिमें कुछ लिखा जाता, तो मैं

अुसे समझ सकता था। लेकिन अंग्रेज़ीमें अुसका वहाँ लिखा जाना भी हम पर जमे हुअे अंग्रेज़ी ज़बानके साम्राज्यका अेक सबूत है। किसी नअी लिपि या ज़बानको सीखनेसे हम घबराते हैं; जब कि सच तो यह है कि हिन्दुस्तानकी किसी ज़बान या लिपिको सीखना हमारे लिअे बायें हाथका खेल होना चाहिये। जिसे हिन्दी या हिन्दुस्तानी आती है, अुसे मराठी, गुजराती, बँगला वग़ैरा सीखनेमें तकलीफ़ ही क्या हो सकती है? कन्नड़, तामिल, तेलगू और मलयालमका भी मेरा तो यही तजरबा है। अिनमें भी संस्कृतके और संस्कृतसे निकले हुअे काफ़ी शब्द भरे पड़े हैं। जब हममें अपनी मादरी ज़बान या मातृभाषाके लिअे सच्ची मुहब्बत पैदा हो जायगी, तो हम अिन तमाम भाषाओंको बड़ी आसानीसे सीख सकेंगे। रही बात अुर्दूकी, सो वह भी आसानीके साथ सीखी जा सकती है। लेकिन बदक़िस्मतीसे अुर्दूके आलिम यानी विद्वान् अिधर अुसमें अरबी और फ़ारसीके शब्द ठूँस-ठूँसकर भरने लगे हैं—अुसी तरह, जिस तरह हिन्दीके विद्वान् हिन्दीमें संस्कृत शब्द भर रहे हैं। नतीजा अिसका यह होता है कि जब मुझ-जैसे आदमीके सामने कोअी लखनवी तर्ज़की अुर्दू बोलने लगता है, तो सिवा बोलनेवालेका मुँह ताकनेके और कोअी चारा नहीं रह जाता।

अपनी विशेषता चाहिये

अेक बात और। पश्चिमके हरअेक विश्वविद्यालयकी अपनी अेक-न-अेक विशेषता होती है। कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्डको ही लीजिये। अिन विश्वविद्यालयोंको अिस बातका नाज़ है कि अिनके हरअेक विद्यार्थी पर अिनकी अपनी विशेषताकी छाप अिस तरह लगी रहती है कि वे फ़ौरन पहचाने जा सकते हैं। हमारे देशके विश्वविद्यालयोंकी अपनी अैसी कोअी विशेषता होती ही नहीं। वे तो पश्चिमी विश्वविद्यालयोंकी अेक निस्तेज और निष्प्राण नक़ल-भर हैं। अगर हम अुन्हें पश्चिमी सभ्यताका महज़ सोख्ता या स्याही-सोख कहें, तो शायद बेजा न होगा।

आपके अिस विश्वविद्यालयके बारेमें अकसर यह कहा जाता है कि यहाँ शिल्पशिक्षा और यंत्र-शिक्षाका यानी अिंजीनियरिंग और टेकनॉलॉजीका देशभरमें सबसे ज्यादा विकास हुआ है, और अिनकी शिक्षाका अच्छा प्रबन्ध है। लेकिन अिसे मैं यहाँकी विशेषता माननेको तैयार नहीं। तो फिर अिसकी विशेषता क्या हो? मैं अिसकी अेक मिसाल आपके सामने रखा चाहता हूँ। यहाँ जो अितने हिन्दू विद्यार्थी हैं, अुनमें से कितनोंने मुसलमान विद्यार्थियोंको अपनाया है? अलीगढ़के कितने छात्रोंको आप अपनी ओर खींच सके हैं? दरअसल आपके दिलमें चाह तो यह पैदा होनी चाहिये कि आप मुसलमान विद्यार्थियोंको यहाँ बुलायेंगे, और अुन्हें अपनायेंगे।

हिन्दुस्तानकी पुरानी संस्कृतिका सन्देश

अिसमें शक नहीं कि आपके विश्वविद्यालयको काफ़ी धन मिल गया है, और जब तक मालवीयजी महाराज हैं, आगे भी मिलता रहेगा। लेकिन मैंने जो कुछ कहा है, वह रुपयेका खेल नहीं। अकेला रुपया सब काम नहीं कर सकता। हिन्दू विश्वविद्यालयसे मैं विशेष आशा तो अिस बातकी रखूँगा कि यहाँवाले अिस देशमें बसे हुअे सभी लोगोंको हिन्दुस्तानी समझें, और अपने मुसलमान भाअियोंको अपनानेमें किसीसे पीछे न रहें। अगर वे आपके पास न आयें, तो आप अुनके पास जाकर अुन्हें अपनाअिये। अगर अिसमें हम नाकामयाब भी हुअे तो क्या हुआ? लोकमान्य तिलकके हिसाबसे हमारी सभ्यता दस हज़ार बरस पुरानी है। बादके कअी पुरातत्त्व-शास्त्रियोंने अुसे अिससे भी पुरानी बताया है। अिस सभ्यतामें अहिंसाको परम धर्म माना गया है। चुनाँचे अिसका कम-से-कम अेक नतीजा तो यह होना चाहिये कि हम किसीको अपना दुश्मन न समझें। वेदोंके समयसे हमारी यह सभ्यता चली आ रही है। जिस तरह गंगाजीमें अनेक नदियाँ आकर मिली हैं, अुसी तरह अिस देशकी संस्कृति-गंगामें भी अनेक संस्कृतिरूपी सहायक नदियाँ आकर

मिली हैं। यदि अिन सबका कोअी सन्देश या पैग़ाम हमारे लिअे हो सकता है, तो यही कि हम सारी दुनियाको अपनायें और किसीको अपना दुश्मन न समझें। मैं अीश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह हिन्दू विश्वविद्यालयको यह सब करनेकी शक्ति दे! यही अिसकी विशेषता हो सकती है। सिर्फ़ अंग्रेजी सीखनेसे यह काम नहीं हो पायेगा। अिसके लिअे तो हमें अपने प्राचीन ग्रन्थों और धर्मशास्त्रोंका श्रद्धापूर्वक यथार्थ अध्ययन करना होगा, और यह अध्ययन हम मूल ग्रन्थोंके सहारे ही कर सकते हैं।

(हरिजनसेवक १-२-'४७)

३५

अंग्रेजीका स्थान

स० — अखबारी खबर है कि अपने काशीवाले भाषणमें आपने हिन्दुस्तानियोंके लिअे अंग्रेजी पढ़ना और अंग्रेजीमें बातचीत करना गुनाह करार दे दिया है। अिस संबंधमें लोग आपकी आलोचना करते हुअे कहते हैं कि जो खुद अपने मतलबके लिअे अिस तिरस्कृत अंग्रेजीका अितना अुपयोग कर लेता है, अुसे अैसा फ़तवा देनेका क्या हक़ है?

ज० — बात बिलकुल ग़लत है। लेकिन जब अेक बार कोअी झूठी बात चल पड़ती है, तो अुसे रोकना बहुत मुश्किल हो जाता है। मेरे बारेमें अैसी कअी झूठी बातें फैलती रही हैं। अुनके कारण क्षणिक सनसनी भी फैली है, लेकिन फिर अपनी मौत वे खुद मर गअी हैं, और मुझे अुनके लिअे कुछ करना नहीं पड़ा। मैं जानता हूँ कि अिसकी भी यही गति होगी। जिस झूठका कोअी सिर-पैर ही नहीं, अुससे कभी किसीका नुक़सान नहीं होता। मैं अपनी लाज बचानेके लिअे यह सब नहीं लिख रहा हूँ। हाँ, अपनी बात जरूर समझाना चाहता

हूँ। मुझ पर 'पर-अुपदेश-कुशलता' का जो आरोप लगाया जाता है, वही अिस झूठका सच्चा जवाब है। क्योंकि मैं आज नये सिरेसे अंग्रेज़ीका यह अुपयोग नहीं कर रहा। असलमें तो किसी भले आदमीको अिस टीका पर कोअी ध्यान ही न देना चाहिये। लोग समझ लें कि मैं अंग्रेजी भाषाका और अंग्रेज़ोंका प्रेमी हूँ। लेकिन मेरा यह प्रेम चतुराअी और समझदारीसे खाली नहीं। अिसलिअे मैं दोनोंको अुनके अनुरूप ही महत्त्व देता हूँ। मसलन्, मैं अंग्रेज़ीको मातृभाषाका या हमारी अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दुस्तानीका निरादर कभी नहीं करने देता, और न अंग्रेज़ोंकी मुहब्बतके कारण मैं अपने अुन देशवासियोंका निरादर होने देता हूँ, जिनके हितोंको मैं किसी भी हालतमें हानि नहीं पहुँचने दे सकता। हाँ, अन्तर्राष्ट्रीय कामकाजके लिअे मैं अंग्रेज़ीके महत्त्वको मानता हूँ। जिन चुने हुअे हिन्दुस्तानियोंको अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें अपने देशके हितोंका प्रतिनिधित्व करना है, अुनके लिअे दूसरी भाषाके तौर पर मैं अंग्रेज़ीको अनिवार्य समझता हूँ। मेरी रायमें अंग्रेज़ी अेक खुली खिड़की है, जिसकी राह हम पश्चिमवालोंके विचारों और वैज्ञानिक कार्योंसे परिचित रह सकते हैं। यह काम भी मैं कुछ चुनिन्दा लोगोंको ही सौंपना चाहता हूँ, और अुनके ज़रिये यूरोपके ज्ञानका प्रचार देशमें देशी भाषाओं द्वारा कराना चाहता हूँ। मैं अपने देशके बच्चोंके लिअे यह ज़रूरी नहीं समझता कि वे अपनी बुद्धिके विकासके लिअे अेक विदेशी भाषाका बोझ अपने सिर ढोयें और अपनी अुगती हुअी शक्तियोंका ह्रास होने दें। आज जिस अस्वाभाविक परिस्थितिमें रहकर हमें अपनी शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है, अुस परिस्थितिका निर्माण करनेवालोंको मैं ज़रूर गुनाहगार मानता हूँ। दुनियामें और कहीं अैसा नहीं होता। जिसके कारण देशका जो नुक़सान हुआ है, अुसकी तो हम कल्पना तक नहीं कर सकते; क्योंकि हम खुद अुस सर्वनाशसे घिरे हुअे हैं। मैं अुसकी भयंकरताका अन्दाज़ा लगा सकता हूँ, क्योंकि मैं निरंतर देशके करोड़ों मूक, दलित, और पीड़ित लोगोंके सम्पर्कमें आता रहता हूँ।

(हरिजनसेवक, १-२-'४२)

३६

हिन्दुस्तानी

कांग्रेसके विधानकी २५वीं धारा अिस प्रकार है :

"(क) मामूली तौर पर कांग्रेसकी, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी, और कार्यकारिणीकी कार्रवाअी हिन्दुस्तानीमें हुआ करेगी। अगर कोअी हिन्दुस्तानीमें न बोल सके, तो सभापतिकी आज्ञासे, या जब-जब सभापति कहें, अंग्रेज़ी या किसी प्रान्तीय भाषाका अिस्तेमाल किया जा सकेगा।

"(ख) साधारणतया प्रान्तीय समितिकी कार्रवाअी अुस-अुस प्रान्तकी भाषामें हुआ करेगी। हिन्दुस्तानीका अुपयोग भी किया जा सकेगा।"

दुःख है कि कांग्रेसने अिस प्रस्ताव पर जितना और जैसा चाहिये, अमल नहीं किया। अिसमें क़सूर कांग्रेसजनोंका ही है। वे हिन्दुस्तानी सीखनेकी तकलीफ़ गवारा नहीं करते। मालूम होता है कि अंग्रेज़ विद्वानोंके टक्करकी अंग्रेज़ी सीखनेके असफल प्रयत्नमें दूसरी भाषायें सीखनेकी अुनकी सारी शक्ति चुक जाती है। नतीजा अिसका बहुत ही दर्दनाक हुआ है। हमारी प्रान्तीय भाषायें कंगाल और निस्तेज बन गअी हैं, और राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी पदभ्रष्ट हो गअी है। यही वजह है कि आज देशके लाखों-करोड़ों लोगोंके साथ मुट्ठीभर अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग ही क़ुदरती तौर पर आम रिआयाके रहनुमा हैं। सरकारी स्कूलोंको छोड़कर देशमें आम जनताकी शिक्षाका और कोअी ख़ास बन्दोबस्त नहीं है। चुनांचे अंग्रेज़ीकी जगह हिन्दुस्तानीको

प्रतिष्ठित करनेका भगीरथ काम कांग्रेसके सामने है। दरअसल तो अिस प्रस्तावको पास करनेके साथ ही अुसे अिस पर अमल करनेके लिअे अेक खास विभाग खोलना चाहिये था। वह चाहे तो अब भी खोल सकती है। लेकिन अगर वह नहीं खोलती, तो अुन कांग्रेसजनोंको और दूसरे लोगोंको, जिन्हें निजी तौर पर राष्ट्रभाषाके निर्माणमें दिलचस्पी है, आगे आकर अिस कामको अुठा लेना चाहिये।

लेकिन यह हिन्दुस्तानी है क्या चीज़? अुर्दू या हिन्दीसे अलग अिस नामकी स्वतन्त्र कोअी भाषा नहीं। कभी-कभी लोग अुर्दूको ही हिन्दुस्तानी भी कहते हैं। तो क्या कांग्रेसने अपने विधानकी अुक्त धारामें अुर्दूको ही हिन्दुस्तानी माना है? क्या अुसमें हिन्दीका, जो सबसे ज्यादा बोली जाती है, कोअी स्थान नहीं? यह तो अर्थका अनर्थ करना होगा। स्पष्ट ही यहाँ अिसका मतलब सिर्फ़ हिन्दी भी नहीं हो सकता। अिसलिअे अिसका सही-सही मतलब तो हिन्दी और अुर्दू ही हो सकता है। अिन दोनोंके मेलसे हमें अेक अैसी ज़बान तैयार करनी है, जो सबके काम आ सके। अैसी कोअी ज़बान, जो लिखी भी जाती हो, आज प्रचलित नहीं है। लेकिन अुत्तर भारतमें आज भी करोड़ों अनपढ़ हिन्दुओं और मुसलमानोंकी यही अेक बोली है। चूंकि यह लिखी नहीं जाती, अिसलिअे अपूर्ण है। और जो लिखी जाती है, अुसकी दो अलग-अलग धारायें बन गअी हैं, जो दिन-ब-दिन अेक-दूसरीसे दूर हट रही हैं। अिसलिअे 'हिन्दुस्तानी' का मतलब हिन्दी और अुर्दू हो गया है; यानी हिन्दी और अुर्दू दोनों अपनेको हिन्दुस्तानी कह सकती हैं, बशर्ते कि वे अेक-दूसरीका बहिष्कार न करें, और अपनी-अपनी खासियत और मिठासको क़ायम रखते हुअे बाक़ायदा आपसमें घुल-मिल जानेकी कोशिश करें। आज हिन्दुस्तानीका अपना अैसा कोअी संगठन नहीं, जो अिन अेक-दूसरीसे दूर भागती हुअी दो धाराओंको नज़दीक लाने और मिलानेकी कोशिशमें लगा हो।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और अंजुमन-अे-तरक्क़ी-अे-अुर्दूको यह काम करना चाहिये। यह अेक करने लायक़ पुण्यकार्य है। सम्मेलनके साथ तो मेरा संबंध सन् १९१८ से है, जब मैं पहली बार अुसका सभापति चुना गया था। अुस समय मैंने राष्ट्रभाषा-संबंधी अपने विचार जनताके सामने रखे थे। सन् १९३५ में जब मैं दुबारा अुसका सभापति चुना गया, तो मेरे समझाने पर सम्मेलनने हिन्दीकी मेरी अिस व्याख्याको स्वीकार कर लिया कि हिन्दीसे मतलब अुस ज़बान या बोलीसे है, जिसे अुत्तरी हिन्दुस्तानके हिन्दू और मुसलमान आम तौर पर बोलते हैं, और जो फ़ारसी या देवनागरीमें लिखी जाती है। क़ुदरती तौर पर अिसका नतीजा यह होना चाहिये था कि सम्मेलनके सदस्य अिस नअी परिभाषाके अनुसार हिन्दीका अपना ज्ञान बढ़ाते और अिस तरहका साहित्य तैयार करते, जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनों पढ़ सकते। अिसके लिअे सम्मेलनके सदस्योंको सहज ही फ़ारसी लिपि सीखनी पड़ती। मगर मालूम होता है, अुन्होंने अपनेको अिस गौरवपूर्ण अधिकारसे वंचित रखना पसन्द किया है। खैर, अब भी कुछ बिगड़ा नहीं — देर आयद, दुरुस्त आयद। काश, वे अब भी जागें! अुन्हें अंजुमनकी राह नहीं देखनी चाहिये। अगर अंजुमन भी जागे और कुछ करे, तो बड़ी बात हो। क्या ही अच्छा हो कि दोनों संस्थायें आपसमें मिलकर और अेक दिल होकर काम करें। लेकिन मैंने तो दोनोंको अपने-अपने ढंगसे अलग-अलग काम करनेकी बात भी सुझाअी है। मैं मानता हूँ कि अिस तरह जो भी संस्था मेरे बताये हुअे ढंग पर काम करेगी, वह न सिर्फ़ अपनी भाषाको समृद्ध बनायेगी, बल्कि आखिरमें अेक अैसी संयुक्त भाषाका निर्माण भी करेगी, जो सारे देशके काम आयेगी।

कमनसीबी तो यह है कि आज हिन्दी-अुर्दूका सवाल अेक क़ौमी झगड़ेका सवाल बन गया है। झगड़ेकी यह जड़ कट सकती है, बशर्ते कि दोनों दलोंमें से कोअी भी अेक दल दूसरे दलकी भाषाको अपनाने

और अुसमें जितना कुछ लेने लायक़ है, अुसे अुदारतापूर्वक लेनेको तैयार हो जाय। याद रहे कि जो भाषा अपनी विशेषताकी रक्षा करते हुअे दूसरी भाषाओंसे खुलकर मदद लेती है, वह अपनी अिस अुदार नीतिके कारण अंग्रेज़ीकी तरह समृद्ध बन सकती है।

(हरिजनसेवक, १-२-'४२)

३७

हिन्दी + अुर्दू = हिन्दुस्तानी

नीचे लिखा खत अेक भाअीने पिछली २९ जनवरीको लिखकर मेरे नाम रजिस्ट्रीसे भेजा था, जो मुझे सेवाग्राममें ३१ जनवरीको मिला:

"काशी विश्वविद्यालयवाले आपके भाषणका मुझ पर गहरा असर पड़ा है। खास तौर पर हमारी शिक्षा-संस्थाओंमें हिन्दुस्तानीको पढ़ाअीका माध्यम बनानेकी बात अुस मौक़े पर बहुत मौजूं रही। लेकिन क्या सचमुच ही आप यह मानते हैं कि हिन्दुस्तानी नामकी कोअी ज़बान आज हमारे देशमें मौजूद है? दरअसल तो अैसी कोअी जबान है ही नहीं। मुझे डर है कि काशीमें आपने हिन्दुस्तानीकी अुतनी हिमायत नहीं की, जितनी हिन्दीकी; और यही हाल सब कांग्रेसियोंका है। मुझे ताज्जुब होता है कि आप अपने मनकी बात खुले तौर पर क्यों नहीं कहते? कहिये कि आप हिन्दी चाहते हैं; अिस हिन्दीको आप हिन्दुस्तानी और अुससे भी बदतर हिन्दी-हिन्दुस्तानी क्यों कहते हैं? कुछ साल पहले आपने अुसे यह नाम देना चाहा था, लेकिन किसीने अिसे अपनाया नहीं।

"महात्माजी, आप कहते हैं, आपको अुर्दूसे कोअी द्वेष नहीं। मगर आप तो अुसे खुल्लमखुल्ला फ़ारसी लिपिमें लिखी जानेवाली मुसलमानोंकी भाषा कह चुके हैं। आपने यह भी फ़रमाया है कि अगर मुसलमान

चाहें, तो भले ही अुसकी हिफ़ाज़त करें। दूसरी तरफ़, आप कभी वार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति रह चुके हैं, और हिन्दीकी हिमायत करते हुअे अुसके लिअे लाखोंका चन्दा जुटा चुके हैं। क्या कभी आपने अुर्दू प्रचार करनेवाली किसी सभाकी सदारत की है? अव भी आप अिस तरहकी सदारत मंजूर करेंगे? और क्या कभी अुर्दूकी तरक्क़ीके लिअे आपने अेक पाअीका भी चन्दा अिकट्ठा किया है?

"मैं तो कांग्रेसवालोंके मुँहसे यह सुनते-सुनते दिक़ आ गया हूँ कि मुस्लिम लेखकोंको संस्कृत शब्दोंका अिस्तेमाल करनेसे वचना चाहिये। वे कहते हैं, अिस तरह जो ज़वान वनेगी, वह हिन्दुस्तानी होगी।

"महात्माजी, आप खुद अेक वहुत अच्छे लेखक हैं। आपको तो पता होना चाहिये कि मँजे हुअे लेखक, जिनकी अपनी अेक शैली वन चुकी है, कभी फ़ारसी और संस्कृतके अुन शब्दोंको छोड़ न सकेंगे, जो अुनकी भाषाके अंग वन चुके हैं। अिसलिअे आपकी यह सलाह विलकुल अव्यावहारिक है।

"मगर अेक रास्ता है। वह यह कि यू० पी० जैसे किसी अेक सूवेमें हाअीस्कूल तककी पढ़ाअीके लिअे अुर्दू और हिन्दी दोनोंको लाज़िमी वना दीजिये। अिस तरह जिस सूवेमें दोनों ज़वानें लाज़िमी तौर पर पढ़ाअी जायँगी, वहाँ क़रीव पचास सालके अन्दर अेक आमफ़हम भाषा तैयार हो जायगी। जो हमारी अपनी भाषा है, वह हमारे साथ रहेगी, और जिसे हम अपने अूपर ज़वरदस्ती लाद रहे हैं, वह हमारे जीवनसे हट जायेगी। स्पष्ट ही जव हम दोनों भाषायें सीखेंगे, तो अपने-आप हम अुसीमें अपने विचार प्रकट करना पसन्द करेंगे, जो ज़्यादा विकसित, ज़्यादा खूवसूरत, ज़्यादा लुभावनी, ज़्यादा मुख़्तसर और ज़्यादा अर्थसूचक यानी थोड़ेमें वहुत कहनेवाली होगी। अिससे न सिर्फ़ देशी भाषाओंके प्रचारका मार्ग सरल और सुगम वनेगा, वल्कि हिन्दू-मुसलमानोंके सामाजिक जीवनके वीच पड़ी हुअी चौड़ी खाअीको

पाटनेमें भी वड़ी मदद मिलेगी। अेक-दूसरेके साहित्यको पढ़कर हम अेक-दूसरेके आदर्शों और विचारोंको समझ सकेंगे, और अुनके लिअे मनमें हमदर्दी रख सकेंगे। हो सकता है कि अिस तरह हिन्दी और अुर्दूके मेलसे अेक नअी ज़बान सामने आ जाय, और वह हिन्दुस्तानी कहलाये। चूंकि यह ज़बान दोनों ज़बानोंकी जानकारीका नतीजा होगा, अिसलिअे वह दोनों क़ौमोंकी अेक क़ुदरती ज़बान बन रहेगी।

"महात्माजी, अगर आप सचमुच अपने अिस मुल्कके लिअे अेक आमफ़हम क़ौमी ज़बान चाहते हैं, तो मुझे यक़ीन है कि आप मेरे अिस सुझावको मंजूर कर लेंगे, और अपनी सिफ़ारिशके साथ अिसे देशके सामने पेश करेंगे। मगर मैं मानता हूँ कि आप अैसा नहीं करेंगे। क्योंकि आप बराबर हिन्दीकी हिमायत करते आये हैं, और अुसीको मुल्क पर लादनेकी भरसक कोशिश करते रहे हैं। और आप यह भी जानते होंगे कि अगर हिन्दी व अुर्दू दोनों अनिवार्य बना दी गअीं, तो अुर्दू हिन्दीको मैदानसे खदेड़ देगी, क्योंकि हिन्दीके मुक़ाबले अुर्दू ज़्यादा सही, ज़्यादा मँजी हुअी, ज़्यादा अर्थसूचक और ज़्यादा खूबसूरत है। मगर मेरी यह तजवीज़ दोनों ज़बानोंको यकसा मौक़ा देती है। अगर आपका खयाल है कि हिन्दी मुल्ककी अपनी क़ुदरती भाषा है, तो आपको यह विश्वास होना चाहिये कि वह अुर्दूको खदेड़ देगी, जैसा कि आपने पिछले साल भी मुझे लिखा था। आपका यह कहना कि दोनों ज़बानोंको लाज़िमी बनानेकी कोअी ताक़त आपके हाथमें नहीं है, बेमतलब-सा है। अगर आप अिस तजवीज़को अपनी सिफ़ारिशके साथ मुल्कके सामने रखना पसन्द करेंगे, तो ज़रूर ही अुसका असर भी होगा।"

अिन्होंने खतके नीचे अपनी सही तो दी है, लेकिन साथ ही अुस पर निजी भी लिखा है। अिसलिअे यहाँ मैं अिनका नाम नहीं दे रहा। नामका कोअी खास महत्त्व भी नहीं। मैं जानता हूँ कि जो खयाल अिन भाअीके हैं, वही और भी बहुतेरे मुसलमानोंके हैं। मेरे हजार अिनकार करने पर भी यह बुराअी दूर नहीं हो पाअी है।

लेकिन जहाँ तक मुझसे ताल्लुक़ है, अिन भाओीको मेरे मूल लेखसे तसल्ली हो जानी चाहिये, जो अिसी विषय पर २३ जनवरीको लिखा गया था, और १ फरवरीके 'हरिजनसेवक' में छप चुका है।

मैं पत्र-लेखककी अिस बातसे पूरी तरह सहमत हूँ कि जो लोग अेक राष्ट्रभाषाके हिमायती हैं, अुन्हें अुसके हिन्दी और अुर्दू दोनों रूप सीखने चाहियें। अिन्हीं लोगोंकी कोशिशसे हमें वह भाषा मिलेगी, जो सबकी भाषा या लोकभाषा कहलायेगी। भाषाका जो रूप लोगोंको, फिर वे हिन्दू हों या मुसलमान, ज़्यादा जँचेगा और जिसे लोग ज़्यादा समझ सकेंगे, बिलाशक वही देशकी लोकभाषा बनेगी। अगर लोग मेरी अिस तजवीज़को आम तौर पर अपना लें, तो फिर भाषाका सवाल न तो राजनीतिक सवाल रह जायगा, और न वह किसी झगड़ेकी जड़ ही बन सकेगा।

मैं पत्र-लेखककी अिस बातको माननेको तैयार नहीं कि 'अुर्दू ज़्यादा विकसित, ज़्यादा ख़ूबसूरत, ज़्यादा लुभावनी, ज़्यादा मुख़्तसर, और ज़्यादा अर्थसूचक यानी थोड़ेमें बहुत कहनेवाली ज़बान है'। ये सब चीज़ें किसी अेक भाषाकी अपनी बपौती नहीं होतीं। भाषा तो जैसी हम बनाना चाहें, बन जाती है। अंग्रेज़ीकी जो ख़ूबियाँ आज हमें मालूम होती हैं, वे अंग्रेज़ोंकी कोशिशसे ही अुसमें आअी हैं। दूसरे शब्दोंमें, भाषा हमारी ही कृति है, और वह अपने सरजनहारके रंगमें रँगी रहती है। हरअेक भाषामें अपना अनन्त विस्तार करनेकी शक्ति रहती है। आधुनिक बंगलाको बनानेवाले बंकिम और रवीन्द्र ही न थे? अिसलिअे अगर अुर्दू आज हिन्दीसे हर बातमें बढ़ी-चढ़ी है, तो अुसकी यही वजह हो सकती है कि अुसके विधाता हिन्दीके विधाताओंसे ज़्यादा लायक़ रहे हों। मगर अिस पर मैं अपनी कोअी राय नहीं दे सकता, क्योंकि भाषा-शास्त्रीकी दृष्टिसे मैंने दोनोंमें से किसी अेकका भी अध्ययन नहीं किया। अपने सार्वजनिक कामके लिअे जितना ज़रूरी है, अुतना ही मैं अिन्हें जानता हूँ।

लेकिन क्या अुर्दू हिन्दीसे अुतनी ही भिन्न है, जितनी बँगला मराठीसे? क्या अुर्दू अुसी हिन्दीका नाम नहीं, जो फ़ारसी लिपिमें लिखी जाती है और संस्कृतसे नये शब्द लेनेके बजाय फ़ारसी या अरबीसे नये शब्द लेनेकी तबीयत रखती है? अगर हिन्दू और मुसलमानोंके बीच किसी तरहकी अनबन न होती, तो लोग अिस चीज़का खुशीसे स्वागत करते। जब आपसकी यह अदावत मिट जायगी, जैसा कि अेक दिन अिसे मिटना ही है, तो हमारी सन्तान हमारे अिन झगड़ों पर हँसेगी और अपनी अुस सर्वमान्य भाषा हिन्दुस्तानी पर गर्व करेगी, जो असंख्य लेखकों और लोगों द्वारा अुनकी अपनी आवश्यकता, रुचि और योग्यताके अनुसार कअी भाषाओंसे खुले दिलके साथ लिये गये शब्दोंके सुमेलसे बनाअी जायगी।

यहाँ मैं अपने पत्र-लेखककी अेक भूलको दुरुस्त कर देना चाहता हूँ। अुनका कुछ अैसा खयाल मालूम होता है कि आखिरकार हिन्दुस्तानी तमाम प्रान्तीय भाषाओंकी जगह ले बैठेगी। यह न तो कभी मेरा सपना रहा, और न ही अुन लोगोंका, जो देशके लिअे अेक राष्ट्रभाषाकी चिन्ता कर रहे हैं। हम सब सपना तो यह देख रहे हैं कि मुल्कमें हिन्दुस्तानी अुस अंग्रेज़ीकी जगह ले ले, जो आज पढ़े-लिखे लोगोंके बीच व्यवहारका अेक माध्यम बन गअी है। अिसका नतीजा यह हुआ है कि पढ़े-लिखोंके और आम रिआयाके बीच आज अेक खाअी-सी खुद गअी है। अिस दुर्भाग्यका प्रतीकार तभी हो सकता है, जब अन्तर्प्रान्तीय व्यवहारके लिअे हम अुस भाषाको अपनायें, जो देशकी लोकभाषा हो, यानी जिसे देशके ज्यादा-से-ज्यादा लोग बोलते हों। अिसलिअे दरअसल झगड़ा हिन्दी-अुर्दूका नहीं, बल्कि हिन्दी और अुर्दूका अंग्रेज़ीसे है। नतीजा अिसका अेक ही हो सकता है — दोनोंकी फ़तह; हालाँकि आज ये दोनों बहनें बड़ी भारी अड़चनोंके बीच जी रही हैं, और फ़िलहाल अिनमें आपसी अनबन भी है।

पत्र-लेखकको हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके साथके मेरे सम्बन्धसे शिकायत है। मुझे अुसके साथ अपने अिस संबंधका अभिमान है। अब तकका अुसका अितिहास अुज्जवल रहा है। 'हिन्दी' शब्दसे हिन्दू-मुसलमान दोनोंका समान रूपसे बोध होता था। दोनोंने हिन्दीमें लिखकर अुसके भण्डारको समृद्ध बनाया है। स्पष्ट ही पत्र-लेखकको यह पता नहीं है कि सम्मेलनके साथ मेरे सम्बन्धका क्या असर हुआ है। सम्मेलनने मेरी प्रेरणासे, न सिर्फ़ अपनी बुद्धिमानीका, बल्कि देशभक्ति और अुदारताका परिचय देते हुअे हिन्दीकी अुस परिभाषाको अपनाया, जिसमें अुर्दू भी शामिल है। वह पूछते हैं कि क्या मैं किसी अुर्दू अंजुमनमें कभी शामिल हुआ हूँ? मुझसे किसीने कभी अिसके लिअे गम्भीरतापूर्वक कहा ही नहीं। अगर कोअी कहता, तो मैं अुसके साथ भी वही शर्त करता, जो मैंने, मुझे सम्मेलनका सभापति बननेके लिअे कहनेवालोंके साथ की। मैं अपने अुर्दू-भाषी मित्रोंसे, जो मुझे न्योतने आते, कहता कि वे मुझको जनतासे यह कहने दें कि वह अुर्दूकी अैसी व्याख्या करे, जिसमें देवनागरी लिपिमें लिखी हिन्दी भी शुमार हो। लेकिन मुझे अैसा कोअी मौक़ा ही न मिला।

मगर अब, जैसा कि मैं अपने पहली फरवरीवाले लेखमें अिशारा कर चुका हूँ, मैं चाहता हूँ कि किसी अैसी संस्था या समितिका संगठन हो, जो अपने सदस्योंके लिअे हिन्दी और अुर्दूका, अुनके दोनों रूपों और दोनों लिपियोंके साथ, अध्ययन करनेकी हिमायत करे, और अिस अुम्मीदके साथ अिस चीज़का प्रचार करे कि आखिरकार किसी दिन ये दोनों क़ुदरती तौर पर मिलकर अेक सर्वसाधारण अन्तर्प्रान्तीय भाषाका चोला पहन लेंगी, और हिन्दुस्तानी कहलाने लग जायेंगी। अुस समय अिनका समीकरण हिन्दी + अुर्दू = हिन्दुस्तानी न होकर हिन्दुस्तानी = हिन्दी = अुर्दू होगा।

(हरिजनसेवक, ८-२-'४२)

३८
हिन्दुस्तानी सीखो

१

'अच्छे कामका आरंभ घर ही से होना चाहिये।' जब मैंने अुस दिन स्व० जमनालालजीके मित्रोंकी सभामें यह कहा कि जो कांग्रेसकी सिफ़ारिशके मुताबिक़ हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषा मानते हों, अुनके लिअे अुर्दू सीख लेना ज़रूरी है, तब मुझे अूपरकी अंग्रेज़ी कहावत याद हो आअी थी। अिसलिअे सेवाग्रामसे ही मैंने अुर्दूके प्रचारका सत्कार्य शुरू कर दिया है, और मुझे अिसका बहुत अुत्साहपूर्ण और जोशीला जवाब मिला है। पिछले बुधवारको, यानी २५ फरवरीके दिन, आश्रममें अुर्दूकी पढ़ाअी शुरू हुअी। छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, क़रीब-क़रीब सभी अुर्दू सीखने लगे हैं। आध-आध घण्टेकी दो बैठकोंमें वे अुर्दूकी वर्णमाला सीख चुके हैं। अिस टिप्पणीके छपने तक वे अुर्दूकी बारहखड़ी और अुसके हिज्जे वग़ैरा भी जान चुके होंगे। यानी सिर्फ़ तीन घण्टोंमें वे लगभग सारी बारहखड़ी और संयुक्ताक्षर सीख चुकेंगे। अेक ही दिनमें, चार घण्टेके अन्दर, यह सब सीख लेनेवाले अेक सज्जन भी निकल आये हैं। हाँ, अुर्दू पढ़नेका सवाल ज़रा टेढ़ा है, लेकिन मुहावरेसे यह मुश्किल भी हल हो जायगी। जहाँ चाह होती है, वहाँ सब आसान मालूम होता है। हमारा स्वदेशप्रेम अितना प्रबल होना चाहिये कि वह हममें यह चाह पैदा कर सके।

(हरिजनसेवक, ८-३-'४२)

२

प्र०—कृपाकर कहिये, मैं क्या करूँ? मैं वर्धावाले प्रस्तावको माननेवालोंमें हूँ।

अु० — यानी अगर कांग्रेसकी माँग मंजूर कर ली जाय, तो आप युद्ध-प्रयत्नमें पूरी तरह हाथ बँटायेंगे। सो कुछ भी क्यों न हो, मगर रचनात्मक कार्यक्रमके बारेमें वर्धामें जो प्रस्ताव पास हुआ है, वह आपको चौदह प्रकारके रचनात्मक कार्यमें पूरी तरह हाथ बँटानेके लिअे निमंत्रित करता है। अिसलिअे, और वैसे स्वतंत्र रूपसे भी, आपको हिन्दुस्तानी सीख लेनी चाहिये, ताकि आप देशकी आम जनताके सीधे सम्पर्कमें आ सकें। और, जैसा कि मैं कह चुका हूँ, जब तक हिन्दी और अुर्दू मिलकर अेकरूप नहीं हो जाती हैं, तब तक हिन्दुस्तानीका मतलब अुर्दू + हिन्दी रहेगा। अिस हिन्दुस्तानीको मुहब्बत और मेहनतके साथ सीख लेनेमें आपको संकोच या आनाकानी नहीं करनी चाहिये। आपका दृढ़ निश्चय सब मुश्किलोंको आसान बना देगा। आप थोड़ी-बहुत हिन्दी तो जानते ही हैं। अब आपको अुसमें अच्छी तरक़्क़ी कर लेनी चाहिये। फ़ारसी लिपि सीखना बहुत आसान है। अुसके ३७ अक्षरोंके लिअे बहुत थोड़ी मूल संज्ञायें हैं। हाँ, अक्षरोंको जोड़कर लिखनेमें कुछ कठिनाअी ज़रूर होती है, लेकिन अगर रोज़ अेक घण्टा खर्च करें, तो आप ज़्यादा-से-ज़्यादा अेक हफ़्तेमें पूरी वर्णमाला और बारहखड़ी सीख लेंगे। फिर तो अभ्यासके लिअे रोज़का आध घण्टा देना काफ़ी होगा। अिस तरह छः महीनोंमें आप अुर्दूकी कामचलाअू जानकारी हासिल कर सकेंगे। दो भिन्न लिपियोंकी और अेक ही भाषाकी दो धाराओंकी परस्पर तुलना करना बहुत दिलचस्प हो सकता है। लेकिन यह सब हो तभी सकता है, जब आपको देशसे और देशकी जनतासे प्रेम हो। अंग्रेज़ी जैसी कठिन भाषा पर अधिकार करनेकी कोशिशमें हमारे मन थक न गये हों, तो प्रान्तीय भाषाओंको सीखनेमें हमें ज़्यादा मेहनत न अुठानी पड़े, बल्कि अुन्हें सीखना हमारे मनोरंजनका अेक विषय बन जाय। लेकिन आज तो हिन्दुस्तानीको अुसके दोनों रूपोंमें सीखना रचनात्मक कार्यक्रमकी पहली सीढ़ी है। अगर आप देशके ग़रीब-से-ग़रीब लोगोंके साथ अपना सम्बन्ध बढ़ाना चाहते हैं, अुनसे अेकरस होना चाहते हैं, तो आपको नियमित

रूपसे कातना भी चाहिये; और अिसके सिवा रचनात्मक कार्यक्रमके अन्य अंगोंमें भी दिलचस्पी लेनी चाहिये। सच्चे अर्थमें पूर्ण स्वराज्यकी स्थापना तभी हो सकेगी, जब हम अिस कार्यक्रम पर पूरी तरह अमल करके दिखायेंगे।

(हरिजनसेवक, १५-३-'४२)

३९

हिन्दुस्तानी बोलीका अितिहास

१

डॉक्टर ताराचन्द, जिन्होंने राष्ट्रभाषाके प्रश्नका अच्छा अभ्यास किया है, श्री काका साहबको अुनके अेक प्रश्नके अुत्तरमें, अपने दो फरवरीवाले खतमें लिखते हैं:—

"हिन्दुस्तानी और ब्रज दोनों बोलचालकी ज़बानें थीं। पहले जब ये केवल बोलचालके काम आती थीं, अिनकी क्या हालत थी, कहना कठिन है। तवारीखसे अितना मालूम होता है कि बारहवीं सदीमें सआद सलमानने अेक 'दीवान' हिन्दीमें लिखा था। पर अुस 'दीवान' का अेक भी शेर अब नहीं मिलता। तेरहवीं सदीसे हिन्दी या हिन्दुस्तानीका पता लगने लगता है। चौदहवीं और पन्द्रहवीं सदीमें हिन्दुस्तानीका अच्छा साहित्य दक्खिनमें तैयार हो गया था। अिस साहित्यकी भाषा वही खड़ी बोली है, जो आधुनिक हिन्दीका आधार है। ब्रजभाषाका कोअी लेख सोलहवीं सदीसे पहलेका अभी तक देखनेमें नहीं आया। पृथ्वीराजरासोमें कुछ पद ब्रजमें हैं, लेकिन अिसके रचनाकालके बारेमें, और खासकर अिसके ब्रजके हिस्सोंके बारेमें कुछ भी निश्चय नहीं है। ज्यादातर लोग अिन्हें सोलहवीं सदीका मानते हैं।

"व्रजसे पहले राजस्थानीका, डिंगलका, रिवाज था। रासो अधिक मात्रामें डिंगलमें ही लिखा हुआ है। व्रजका सबसे पहला कवि सूरदास है, जो सोलहवीं सदीका है।

"हिन्दुस्तानीका सबसे पहला साहित्य मुसलमानोंका लिखा ही मिलता है। मुसलमान साधु-सन्तोंने अिसमें धर्मकी व्याख्या की है और सूफ़ीमतके सिद्धान्त बयान किये हैं। फिर कवियोंने कवितायें लिखीं। मुसलमानोंका लिखा होनेकी वजहसे अिस साहित्यमें हिन्दी और फ़ारसीके शब्दोंका मेल है। अिसकी ध्वनियोंमें फ़ारसी-अरबीकी ध्वनियाँ, मसलन् क़, ग़, ज़, मिल गयी हैं। ये ध्वनियाँ व्रजमें नहीं हैं, लेकिन आधुनिक हिन्दीमें हैं।

"मुसलमानोंने जिस बोलचालकी ज़बानको अपने काममें लिया, वह मेरठ व दिल्लीके आस-पासकी बोली है। वह आज भी दिल्लीसे रुहेलखण्डके बीचके अिलाक़ेमें बोली जाती है। अिस बोलीको खड़ीबोली (हिन्दुस्तानी) कहते हैं।

"हिन्दुस्तानी, आधुनिक हिन्दी और अुर्दू, अिसी बोलीके तीन रूप हैं। आधुनिक हिन्दी हिन्दुस्तानीका साहित्यिक रूप है, जिसमें संस्कृतके तद्भव और तत्सम शब्द आज़ादीके साथ और बहुतायतके साथ अिस्तेमाल होते हैं। अुर्दूमें फ़ारसी और अरबीके तत्सम बहुत मिले हुअे हैं। हिन्दुस्तानीसे मेरा मतलब अुस साहित्यकी भाषासे है, जिसका आधार खड़ीबोली है, पर जो न तो केवल संस्कृतके तत्समोंको अपनाती है, न केवल अरबी-फ़ारसीके, बल्कि दोनोंको। किसीके लिखनेकी शैली अैसी है कि जो संस्कृतकी तरफ़ झुकती है, किसीकी फ़ारसीकी तरफ़। लेकिन हिन्दुस्तानी लिखनेवाले, जहाँ तक बन पड़ता है, संस्कृत और अरबी-फ़ारसी दोनोंके लफ़्ज़ोंकी भरमारसे परहेज़ करते हैं।

"मेरा कहना यह है कि हमें न हिन्दीको, जिसमें अरबी-फ़ारसीसे परहेज़ और संस्कृतसे अधिक मेल है, और न अुर्दूको, जिसमें संस्कृतसे

परहेज और फ़ारसी-अरबीसे मेल है, देशकी आम भाषा मानना चाहिये। या तो हिन्दुओंकी हिन्दी और मुसलमानोंकी अुर्दू मानकर दोनोंको अेक-सा दरजा दे देना चाहिये, या कोशिश यह करनी चाहिये कि हिन्दुस्तानी, जो दोनोंके बीचकी भाषा है, आम भाषा, कुल हिन्दकी भाषा मान ली जाय। जब तक हम यह कहते रहेंगे कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है, तब तक झगड़ेमें कमी नहीं हो सकती। या तो अुर्दूको भी राष्ट्रभाषा मान लीजिये या अैसी भाषाको स्वीकार कीजिये, जो दोनोंके मूल खज़ानोंसे लफ़्ज़ अुधार ले सके।

"मुझे तो विश्वास है कि मेरा निवेदन सच पर निर्भर है। पर मैं जानता हूँ कि भावके झक्कड़के सामने सचकी लौ मिलमिलाने लगती है, और अुसका प्रकाश मध्यम पड़ जाता है। मैं यह चाहता हूँ कि आप अिस झगड़ेकी आँधीसे देशको बचानेमें मदद करें। ज़बानका सवाल समाजका और समाजका सवाल स्वराजका सवाल है। ज़बानके सवालके हल पर थोड़ा-बहुत स्वराजका दारोमदार ज़रूर है। अिसीसे मैं अिसमें दिलचस्पी लेता हूँ, और चाहता हूँ कि आपकी सहायताका सौभाग्य हासिल करूँ।"

(हरिजनसेवक, १५-३-'४२)

२

डॉक्टर ताराचन्द और हिन्दुस्तानी

श्री मुरलीधर श्रीवास्तव अेम० अे० ने डाकके थैलेके लिअे नीचे लिखा प्रश्न भेजा था —

> "जब मनमें किसी चीज़के लिअे पक्षपात पैदा हो जाता है, तो मनुष्य अितिहासको भी विकृत बनाने बैठ जाता है। आपकी तरह डॉक्टर भी हिन्दुस्तानीके चुस्त हिमायती हैं। अुन्हें अपने विचार रखनेका अुतना ही अधिकार है, जितना आपको या मुझे

अपने विचार रखनेका है। अुन्होंने यह सिद्ध करनेकी कोशिश की है कि हिन्दुस्तानी (खड़ीबोली) का साहित्य व्रजभाषाके साहित्यसे पुराना है, और अुसके अुत्साहमें अुन्होंने यह कहकर कि १६ वीं सदीसे पहले व्रजमें कोअी चीज़ लिखी ही नहीं गअी, व्रजभाषाके अितिहासको बहुत ग़लत तरीक़ेसे पेश किया है। अुनके कथनानुसार १६वीं सदीमें सूरदास ही पहले कवि थे, जिन्होंने व्रजमें अपनी रचनायें कीं। चूंकि गत २९ मार्चके 'हरिजन' में आपने अिन विद्वान् डॉक्टर साहबके अेक पत्रका अवतरण दिया है, और चूंकि 'हरिजन' की प्रतिष्ठा और अुसका प्रचार व्यापक है, अिसलिअे यह आवश्यक हो जाता है कि अिस भूलकी ओर ध्यान दिलाया जाय। सूरदाससे पहलेके व्रज-साहित्यके लिअे केवल कबीरकी रचनायें ही पढ़ लेनी काफ़ी होंगी — अमीर ख़ुसरोकी तो बात ही क्या, जिनकी कुछ कवितायें व्रजभाषामें भी मिलती हैं। सूरदाससे पहलेके कअी सन्तों और भक्तोंकी अनेक छोटी-छोटी रचनायें व्रजमें पाअी जाती हैं, और वे हिन्दी साहित्यके किसी भी प्रामाणिक अितिहासमें देखी जा सकती हैं।"

पत्र-लेखकके अिस पत्रका जो अंश प्रस्तुत प्रश्नसे सम्बन्ध नहीं रखता था, अुसे मैंने निकाल दिया है। यह पत्र मैंने काकासाहब कालेलकरके पास भेज दिया था। अुन्होंने अिसे डॉक्टर ताराचन्दके पास भेजा था। डॉक्टर ताराचन्दने अिसका नीचे लिखा जवाब भेजा है, जो अपनी कथा आप कहता है —

"मैंने अपनी जो राय दी थी कि व्रजभाषाका साहित्य सोलहवीं सदीसे ज्यादा पुराना नहीं है, अुसके कारण अिस प्रकार हैं:

१. व्रजभाषा अेक आधुनिक भाषा है, जो तृतीय प्राकृत या 'न्यू अिण्डो-आर्यन' वर्गकी मानी जाती है। अिस वर्गका जन्म मध्यम प्राकृत या 'मिडिल अिण्डो-आर्यन' से हुआ है। दुर्भाग्यसे मध्यम और तृतीयके

बीचकी अवस्थाओंका निश्चित रूपसे कोअी पता नहीं लगाया जा सकता, लेकिन ज्यादातर विद्वान् अिस बातमें अेक राय हैं कि 'मध्यम प्राकृत' का समय अीस्वी सन् पूर्व ६०० से अीस्वी सन् १००० तक रहा।

२. मध्यम प्राकृतोंको, जो अेक ज़मानेमें सिर्फ़ बोलीभर जाती थीं, महावीर और बुद्ध द्वारा चलाये गये धार्मिक आन्दोलनोंके कारण साहित्यिक विकास करनेका अुत्तेजन मिला। अिन प्राकृत भाषाओंमें पाली सबसे महत्त्वकी भाषा बन गअी, क्योंकि वह बौद्धोंके पवित्र धर्मग्रन्थोंको लिखनेके लिअे माध्यमस्वरूप अपनाअी गअी थी। महत्त्वकी दृष्टिसे दूसरा स्थान अर्धमागधीका रहा, जिसमें जैनियोंके धर्मग्रन्थ लिखे गये। अिनके सिवा भी कुछ और प्राकृत भाषायें अुन दिनों प्रचलित थीं; मसलन्, महाराष्ट्री, जिसमें गीत और कविता लिखी जाती थी, और शौरसेनी, जिसका अुपयोग नाटकोंमें स्त्री-पात्रोंकी भाषाके रूपमें किया जाता था, वग़ैरा।

३. अीस्वी सन्‌की छठी सदीमें आते-आते प्राकृत भाषायें स्थिर और मृत भाषायें बन गअी थीं। साहित्य तो तब भी अुनमें लिखा जाता था, लेकिन अुनका विकास बन्द हो चुका था। अिसी सदीमें सामान्य बोलचालकी भाषाओंका, जिनमें से साहित्यिक प्राकृतका जन्म हुआ था, साहित्यकी दृष्टिसे अुपयोग होने लगा। प्राकृत भाषाओंके अिस साहित्यिक विकासके प्रचारको अपभ्रंशके नामसे पहचाना जाता है। अिसका समय अीस्वी सन् ६०० से १००० तक रहा। फिर अिन अपभ्रंश भाषाओंमें अेक नागर भाषाने महत्त्वका स्थान प्राप्त किया। अुत्तर हिन्दुस्तानके ज़्यादातर हिस्सोंमें अिसी नागरके विविध रूप साहित्यिक अभिव्यक्तिके वाहन बनकर काममें आने लगे थे, लेकिन नागर और अुसके विविध रूपोंके सिवा शौरसेनी-जैसी कुछ दूसरी प्राकृत भाषाओंके भी अपभ्रंशोंका विकास हुआ था।

४. हिन्दुस्तानकी आधुनिक भाषाओंका या तृतीय प्राकृतोंका विकास अिन्हीं अपभ्रंश भाषाओंसे हुआ है। नागर अपने अेक प्रकार द्वारा

राजस्थानी और गुजराती भाषाओंकी जननी बनी, जिसे टेस्सीटोरीने प्राचीन पश्चिमी राजस्थानीका नाम दिया है।

शौरसेनी अपभ्रंशका रूप हेमचन्द्रके (सन् ११७२) प्राकृत व्याकरणमें प्रकट हुआ है। लेकिन शौरसेनी अपभ्रंशका नागरके साथ कोअी सम्बन्ध निश्चित करना कठिन है। मालूम होता है कि शौरसेनी अपभ्रंशके रूपमें और भी परिवर्तन हुअे, और वे प्राचीन पश्चिमी हिन्दी, अवहत्थ, काव्य-भाषा आदि विविध नामोंसे पुकारे गये।

५. अिस भाषाके सामने आने पर मध्यम प्राकृत भाषायें मंचसे हट जाती हैं, और तृतीय प्राकृत या 'न्यू अिण्डो-आर्यन' भाषाओंका समय शुरू होता है। पुरानी पश्चिमी हिन्दी, जो नवीन मध्यदेशीय भाषाका बहुत पहला रूप है, ११ वीं सदीमें निश्चित रूप धारण करती मालूम होती है। अिसी पुरानी पश्चिमी हिन्दीसे अुत्तरी मध्यदेशकी हिन्दुस्तानी (खड़ी) निकली, मध्यदेशकी ब्रज निकली और दक्षिणकी बुन्देली निकली। १२ वीं सदीमें ये सब बोलियाँ थीं। आगेकी कुछ सदियोंमें अिन्होंने साहित्यिक रूप धारण किया।

६. अिन भाषाओंके विकासका जो अध्ययन मैंने किया है, अुससे मैं अिस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि हिन्दुस्तानी (खड़ी) ही वह भाषा थी, जिसका साहित्यिक भाषाके रूपमें सबसे पहला विकास हुआ। १४ वीं सदीके आखिरी पचीस सालोंसे लेकर अब तक हमें हिन्दुस्तानी (दक्खिनी अुर्दू) का सिलसिलेवार अितिहास मिलता है। दूसरी तरफ़ सोलहवीं सदीसे पहलेकी ब्रजभाषाका अितिहास बहुत ही शंकास्पद है।

७. आअिये, १६ वीं सदीसे पहलेके तथाकथित ब्रजभाषा-साहित्यका कुछ विचार किया जाय।

(अ) पृथ्वीराज रासोका रचयिता चन्द बरदाअी वह पहला कवि है, जिसने, कहा जाता है, कि ब्रज (पिंगल) का अुपयोग किया था। यह

चन्द वरदायी पृथ्वीराज (१२ वीं सदी) का समकालीन माना जाता है । रासोके सम्बन्धमें अेक प्रबल मत यह है कि यह अेक नक़ली काव्य है। बुहलर, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, ग्रियर्सन और दूसरे विद्वान् अुसकी प्रामाणिकतामें संदेह रखते हैं । अुसकी भाषामें आधुनिक और अप्रचलित भाषाका अजीब मिश्रण है । अुसकी कथा-वस्तु अितिहासके विपरीत पड़ती है, और अुसके रचयिताके बारेमें भी शक है । अिन प्रमाणोंके आधार पर पंडित रामचन्द्र शुक्ल अिस नतीजे पर पहुँचे थे कि 'यह ग्रंथ साहित्यके या अितिहासके विद्यार्थीके किसी कामका नहीं है।'

(आ) अमीर खुसरो दूसरा ग्रंथकार है, जिसके लिअे दावा किया जाता है कि वह व्रजका लेखक था। सन् १३२५ में अुसकी मृत्यु हुअी। हिन्दीमें अुसकी कविताओं, पहेलियों और दो सखुनोंका कोअी प्रामाणिक हस्तलिखित ग्रंथ अभी तक मिला नहीं है। लाहौरके प्रोफ़ेसर महमूद शेरानीने अिस बातको अच्छी तरह साबित कर दिया है कि खालिक़बारी (हिन्दी और फ़ारसी शब्दोंका पद्यबद्ध कोश), जो खुसरोकी रचना कही जाती है, अुसकी रचना नहीं हो सकती। अुसकी हिन्दी कविताकी भाषा अितनी आधुनिक है कि भाषाशास्त्रका अेक साधारण जानकार भी यह ताड़े बिना नहीं रह सकता कि यह १३ वीं या १४ वीं सदीकी नहीं हो सकती। अुसकी अधिकांश रचनायें बिलकुल आधुनिक हिन्दुस्तानी या खड़ी बोलीमें हैं, और कुछ पर व्रजकी छाप है । डॉक्टर हिदायत हुसैनने खुसरोकी रचनाओंकी अेक प्रामाणिक सूची तैयार की है, जिसमें वे अुसकी हिन्दी कविताओंको कोअी स्थान नहीं दे सके हैं। कुछ हिन्दी लेखकोंने खुसरोके खिज्रखाँ और देवलरानी नामक काव्यका वह अंश पढ़ा है, जिसमें हिन्दीकी तारीफ़ की गअी है। अिस परसे अुन्होंने यह नतीजा निकाला कि खुसरो हिन्दीका प्रशंसक और कवि था। लेकिन अुस अंशको ध्यानसे पढ़नेसे यह बिलकुल साफ़ हो जाता है कि वहाँ खुसरोका मतलब व्रज या हिन्दुस्तानीसे नहीं था। अिस नगण्य-से

प्रमाणके आधार पर ब्रजके अितिहासका ठेठ खुसरोसे सम्बन्ध जोड़ना विज्ञान-सम्मत तो नहीं कहा जा सकता।

(अि) आगे चलकर यह कहा गया है कि नामदेव, रैदास, धना, पीपा, सेन, कबीर आदि सन्त और भक्त ब्रजके कवि थे। अिनकी बानी और पद गुरुग्रंथमें दिये गये हैं। वे कहाँ तक प्रामाणिक माने जा सकते हैं, सो अेक अनसुलझी समस्या ही है। नामदेव अेक मराठा सन्त थे, जो १३ वीं सदीमें हो गये; अुन्होंने हिन्दीमें कुछ लिखा था या नहीं, सो निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। क्योंकि गुरुग्रंथका संकलन १७ वीं सदीके शुरूमें हुआ था। दूसरे सन्तों और भक्तोंकी रचनाओंके कोअी प्रामाणिक हस्तलिखित भी नहीं मिल रहे हैं।

अिन सन्तों और भक्तोंमें १५ वीं सदीके कबीर ही सबसे ज्यादा मशहूर हैं। गुरुग्रंथमें अुनकी बहुतसी रचनाअें पाअी जाती हैं। अुनकी भाषा पर पंजाबीका ज़बरदस्त असर है। काशीकी नागरी-प्रचारिणी-सभाने रायबहादुर श्यामसुन्दरदासजी द्वारा सम्पादित कबीरकी ग्रंथावली प्रकाशित की है, जो सन् १५०४ के अेक हस्तलिखितके आधार पर तैयार की गअी कही जाती है। लेकिन अिस तिथिकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमें भी गंभीर शंकाअें अुठाअी गअी हैं (देखिये, डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल-कृत 'हिन्दी काव्यमें निर्गुणवाद')। बहरहाल, अिस संस्करणकी भाषा भी गुरुग्रंथमें पाये जानेवाले पदोंकी भाषासे मिलती-जुलती है, और बहुत ज़्यादा पंजाबीपन लिये है। कबीरने खुद कहा है कि अुन्होंने पूरबी बोलीका अुपयोग किया है, और अुनकी कअी अैसी रचनायें हैं, जिनकी भाषा पर राजस्थानीका बहुत प्रभाव मालूम होता है। अैसी हालतमें कबीरके ग्रंथोंकी भाषाके बारेमें निश्चित रूपसे कुछ कहना कठिन है। पंडित रामचन्द्र शुक्लने अिस सवालको यह कहकर हल करनेकी कोशिश की है कि कबीरने अपनी साखियोंमें साधुकरीका और रमैनी व शब्दोंमें काव्यभाषा या ब्रजका अुपयोग किया है।

लेकिन अुनका यह हल शायद ही सन्तोषजनक हो; क्योंकि अिससे कबीरकी अपनी बातका खंडन होता है। दूसरे, प्रामाणिक दस्तावेज़ोंके अभावमें अिसको सिद्ध करना भी संभव नहीं है।

८. अिस प्रकार जितनी ही आप अिन साहित्यिक रचनाओंकी जाँच-पड़ताल करते हैं, अुतनी ही मज़बूतीके साथ आपको अिस नतीजे पर पहुँचना पड़ता है कि अिन रचनाओंकी भाषाओंके बारेमें आम तौर पर लोगोंकी जो राय बनी हुअी है, दरअसल अुसके लिअे बहुत कम आधार है। कुछ दूसरी बातें भी अिस परिणामको पुष्ट करती हैं। यह तो अेक जानी हुअी बात है कि कोअी भी बोली या ज़बान तब तक साहित्यिक पद और प्रतिष्ठाको प्राप्त नहीं होती, जब तक अुसकी पीठ पर कोअी मजबूत सामाजिक बल न हो। यह बल या तो धार्मिक हो सकता है या राजनीतिक। पाली और अर्धमागधीकी जो प्रतिष्ठा बढ़ी, सो अिसलिअे कि ये दोनों बौद्ध और जैन सुधारोंकी वाहन बनी थीं। हिन्दुस्तानीने जो साहित्यिक दर्जा हासिल किया, सो अिसलिअे कि अुसे मुस्लिम अुपदेशकों और बादशाहोंका सहारा मिल गया था। राजस्थानी, जो १४ वीं, १५ वीं और १६ वीं सदियोंमें अुत्तरी हिन्दुस्तानके अेक बड़े हिस्सेकी साहित्यिक ज़बान थी, अिसलिये बढ़ी और लोकप्रिय हुअी कि अुसके पीछे मेवाड़के महान् सिसोदियाओंका बल था। जब मुग़लोंने मेवाड़के राणाओंको हरा दिया, तो राजस्थानी भी अेक प्रादेशिक भाषा बनकर रह गअी।

अिसी तरह जब हम व्रजभाषाका विचार करते हैं, तो हमें १६ वीं सदी तक अुसका समर्थन करनेवाली किसी राजनीतिक या धार्मिक हलचलका पता नहीं चलता। व्रज कभी किसी सत्ताका राजनीतिक केन्द्र नहीं रहा। श्री वल्लभाचार्यके व्रजमें आकर बसने और वहाँ कृष्णभक्तिके अपने सम्प्रदायका प्रचार शुरू करनेसे पहले अेक धार्मिक केन्द्रके नाते भी व्रजका कोअी महत्त्व न था। स्पष्ट ही

वल्लभाचार्यके अिस आन्दोलनने व्रजकी बोलीको वह बढ़ावा दिया, जिससे वह अेक साहित्यिक भाषाका रूप धर सकी। अुत्तरी हिन्दुस्तानमें सूरदासने और वल्लभाचार्यके दूसरे शिष्योंने (अष्टछाप) व्रजभाषाके प्रभुत्वको अिस क़दर बढ़ाया कि अुसका अेक रूप सुदूर बंगालमें भी कृष्णभक्तिको व्यक्त करनेके माध्यमके रूपमें अपनाया गया।

९. कबीरकी और दूसरे भक्तोंकी रचनायें, फिर अुनकी असल भाषा कुछ भी क्यों न रही हो, खास तौर पर बरज़बान याद कर ली जाती थीं, और अिस तरह अुनका मौखिक प्रचार ही अधिक होता था। जब व्रजकी बाढ़ जोरदार बनी, तो बड़ी आसानीसे अुनकी रचनाओं पर भी व्रजका असर पड़ा और अुनमें व्रजपना आ गया।

१०. जिन कारणोंसे मैं यह मानता हूँ कि व्रजभाषामें कोअी असली साहित्य नहीं है, जो १६ वीं सदीसे पहलेका कहा जा सके, वे कारण अूपर मैं संक्षेपमें दे चुका हूँ। लेकिन अिस तरहके विचार सिर्फ़ मेरे ही नहीं हैं। प्रयाग विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागके अध्यक्ष डॉ० धीरेन्द्र वर्माने भी, जो सचमुच ही हिन्दुस्तानीके खास पक्षपाती नहीं हैं, हिन्दी साहित्यके अपने अितिहासमें और व्रजभाषाके व्याकरणमें अिन्हीं विचारोंको व्यक्त किया है, जो अुनकी अिन पुस्तकोंमें देखे जा सकते हैं।"

(हरिजनसेवक २८-६-'४२)

राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी दस प्रश्न

प्रश्न १. फ़ारसी लिपिका जन्म हिन्दुस्तानमें नहीं हुआ। मुग़लोंके राज्यमें यह हिन्दुस्तानमें आअी, जैसे अंग्रेज़ोंके राज्यमें रोमन लिपि। पर राष्ट्रभाषाके लिअे हम रोमन लिपिका प्रचार नहीं करते, तो फिर फ़ारसी लिपिका प्रचार क्यों करना चाहिये?

अुत्तर—अगर रोमन लिपिने फ़ारसी लिपिके समान ही घर किया होता, तो जो आप कहते हैं वही होता। मगर रोमन लिपि तो सिर्फ़ मुट्ठीभर अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों तक सीमित रही है, जब कि फ़ारसी तो करोड़ों हिन्दू-मुसलमान लिखते हैं। आपको फ़ारसी और रोमन लिपि लिखनेवालोंकी संख्या ढूंढ़ निकालनी चाहिये।

प्र० २. अगर आप हिन्दू-मुस्लिम अेकताके लिये अुर्दू सीखनेको कहते हों, तो हिन्दुस्तानके बहुतसे मुसलमान अुर्दू नहीं जानते। बंगालके मुसलमान बँगला बोलते हैं और महाराष्ट्रके मराठी। गुजरातमें भी देहातमें तो वे गुजराती ही बोलते हैं। दक्षिण भारतमें तामिल वग़ैरा बोलते होंगे। ये सब मुसलमान अपनी प्रान्तीय भाषाओंसे मिलते-जुलते शब्दोंको ज़्यादा आसानीसे समझ सकते हैं। अुत्तर भारतकी तमाम भाषाअें संस्कृतसे निकली हैं, अिसलिअे अुनमें परस्पर बहुत ही समानता है। दक्षिण भारतकी भाषाओंमें भी संस्कृतके बहुत शब्द आ गये हैं। तो फिर अिन सब भाषाओंके बोलनेवालोंमें अरबी-फ़ारसी-जैसी अपरिचित भाषाओंके शब्दोंका प्रचार क्यों किया जाय?

अु० — आपके प्रश्नमें तथ्य अवश्य है; मगर मैं आपसे कुछ ज़्यादा विचार करवाना चाहता हूं। मुझे क़बूल करना चाहिये कि फ़ारसी लिपि

सीखनेके लिअे जो आग्रह मैं करता हूँ, अुसमें हिन्दू-मुस्लिम अेकताकी दृष्टि रही है। देवनागरी और फ़ारसी लिपिकी तरह हिन्दी और अुर्दूके बीच भी बरसोंसे झगड़ा चला आ रहा है। अिस झगड़ेने अब जहरीला रूप पकड़ लिया है। सन् १९३५ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने अिन्दौरमें हिन्दीकी व्याख्यामें फ़ारसी लिपिको स्थान दिया। १९२५ में कांग्रेसने कानपुरमें राष्ट्रभाषाको हिन्दुस्तानी नाम दिया। दोनों लिपियोंकी छूट दी गअी थी, अिसलिअे हिन्दी और अुर्दूको राष्ट्रभाषा माना गया। अिस नवमें हिन्दू-मुस्लिम अेकताका हेतु तो रहा ही था। यह सवाल मैंने आज नया नहीं अुठाया। मैंने अिसे मूर्त्त स्वरूप दिया, जो प्रसंगानुकूल ही था। अिसलिअे अगर हम राष्ट्रभाषाका संपूर्ण विकास करना चाहें, तो हमें हिन्दी व अुर्दूको और देवनागरी व फ़ारसी लिपिको अेकसा स्थान देना होगा। अन्तमें तो जिसे लोग ज्यादा पचायेंगे, वही ज्यादा फैलेगी।

बहुतेरी प्रांतीय भाषायें संस्कृतसे निकट संबन्ध रखती हैं, और यह भी सच है कि भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके मुसलमान अपने-अपने प्रांतकी ही भाषायें बोलते हैं। अिसलिअे यह ठीक ही है कि अुनके लिअे देवनागरी लिपि और हिन्दी आसान रहेगी। यह क़ुदरती लाभ मेरी योजनासे चला नहीं जाता। बल्कि मैं यह कहूँगा कि अिसके साथ मेरी योजनामें फ़ारसी लिपि सीखनेका लाभ और मिलता है। आप अिसको बोझ मानते हैं। लाभ मानना कि बोझ, यह तो सीखनेवालेकी वृत्ति पर अवलम्बित है। अगर अुसमें अुमड़ता हुआ देशप्रेम होगा, तो वह फ़ारसी लिपि और अुर्दू भाषाको बोझरूप कभी न मानेगा। और जबरदस्तीको तो मेरी योजनामें स्थान ही नहीं है। जो अिसमें लाभ समझेगा, वही दोनों लिपि और दोनों भाषा सीखेगा।

प्र० ३. हिन्दुस्तानका बहुत बड़ा हिस्सा नागरी लिपि जानता है, क्योंकि बहुतसी प्रान्तीय भाषाओंकी लिपि नागरी अथवा नागरीसे मिलती-

जुलती है। पंजाव, सिन्व और सरहदी सूवोंमें नागरीका प्रचार कम है। क्या ये लोग आसानीसे नागरी सीख नहीं सकते?

अु०—अिसका जवाव अूपर दिया जा चुका है। सरहदी सूवेवालोंको और दूसरोंको देवनागरी तो सीखनी ही होगी।

प्र० ४. भाषा ज्यादातर तो वोलनेके लिअे है। वोलने और वातचीत करनेके लिअे लिपिकी ज़रूरत नहीं। लिपि वहुत गौण वस्तु है। अगर राष्ट्रभाषा मातृभाषाकी लिपि द्वारा सिखाअी जाय, तो क्या वह ज्यादा आसानीसे नहीं सीखी जा सकती? अगर अैसा किया जाय, तो राष्ट्रीय दृष्टिसे अिसमें क्या नुक़सान है?

अु०—आपका कहना सच है। मैं मानता हूँ कि अगर हिन्दी और अुर्दू प्रांतीय भाषाओंके द्वारा ही सिखाअी जायँ, तो वे आसानीसे सीखी जा सकती हैं। मैं जानता हूँ कि अिस क़िस्मकी कोशिश दक्षिणके प्रान्तोंमें हो रही है, पर वह पद्धतिपूर्वक नहीं हो रही। मैं देखता हूँ कि आपका सारा विरोध अिस मान्यताके आवार पर है कि लिपिकी शिक्षा वोझरूप है। मैं लिपिकी शिक्षाको अितना कठिन नहीं मानता। परन्तु प्रान्तीय लिपिके द्वारा राष्ट्रभाषाका प्रचार किया जाय, तो अुसमें मेरा कोअी विरोध हो ही नहीं सकता। जहाँ लोगोंमें अुत्साह होगा, वहाँ अनेक पद्धतियाँ साथ-साथ चलेंगी।

प्र० ५. अगर हम मान भी लें कि जव तक पंजाव, सिन्व और सरहदी सूवेके लोग नागरी नहीं सीख लेते, तव तक अुनके साथ मिलने-जुलनेके लिअे अुर्दू जाननेकी आवश्यकता है, तो अिसके लिअे कुछ लोग अुर्दू सीख लें—मसलन्, प्रचारक लोग। सारे हिन्दुस्तानको अुर्दू सीखनेकी क्या ज़रूरत है?

अु०—सारे हिन्दुस्तानके सीखनेका यहाँ सवाल ही नहीं। मैं मानता ही नहीं कि सारा हिन्दुस्तान राष्ट्रभाषा सीखेगा। हाँ, जिन्हें राष्ट्रमें भ्रमण करना है और सेवा करनी है, अुनके लिअे यह सवाल

है ज़रूर। अगर आप यह स्वीकार कर लें कि दो भाषा और दो लिपि सीखनेसे सेवा-क्षमता बढ़ती है, तो आपका विरोध और आपकी शंका शान्त हो जायगी।

प्र० ६. आजकल राष्ट्रभाषा नागरी व फ़ारसी दोनों लिपियोंमें लिखी जाती है। जिसे जिस लिपिमें सीखना हो, सीखे। हरअेक शख़्सको लाज़िमी तौर पर दोनों लिपियाँ सीखनी ही चाहियें, यह आग्रह क्यों किया जाता है?

अु० — अिसका भी अेक ही जवाब है। मेरे आग्रहके रहते भी सिर्फ़ वे ही लोग अिसे स्वीकार करेंगे, जो अिसमें लाभ देखेंगे। जिन्हें अेक ही लिपि और अेक ही भाषासे संतोष होगा, वे मेरी दृष्टिमें आधी राष्ट्रभाषा जाननेवाले कहलायेंगे। जिन्हें पूरा प्रमाणपत्र चाहिये, वे दोनों लिपियाँ और दोनों भाषायें सीखेंगे। अिससे तो आप भी अिनकार न करेंगे कि देशमें अैसे लोगोंकी भी काफ़ी संख्यामें ज़रूरत है। अगर अिनकी संख्या बढ़ती न रही, तो हिन्दी और अुर्दूका सम्मिलन न हो पायेगा, और न कांग्रेसकी व्याख्यावाली अेक हिन्दुस्तानी भाषा कभी तैयार हो सकेगी। अेक अैसी भाषाकी अुत्पत्ति तो हमेशा अिष्ट है ही, जिसकी मददसे हिन्दू और मुसलमान दोनों अेक दूसरेकी बात आसानीसे समझ सकें। अैसे स्वप्नका सेवन हममें से बहुतेरे कर रहे हैं। किसी दिन वह सच्चा भी साबित होगा।

प्र० ७. अहिन्दी-भाषी प्रान्तोंके लोगोंके लिअे, जो राष्ट्रभाषा नहीं जानते, अेक साथ दो लिपियोंमें राष्ट्रभाषा सीखना क्या ज़रूरतसे ज्यादा बोझिल न होगा? पहले अेक लिपि द्वारा वह अच्छी तरह सीख ली जाय, तो फिर दूसरी लिपि तो बड़ी आसानीसे सीख ली जा सकेगी।

अु० — अिसका पता तो अनुभवसे लगेगा। मैं मानता हूँ कि जो अिनमें से अेक भी लिपि नहीं जानता, वह दोनों लिपियाँ अेकसाथ नहीं सीखेगा। वह स्वेच्छासे पहली अथवा दूसरी लिपि पहले सीखेगा, और

वादमें दूसरी। शुरूकी पाठयपुस्तकोंमें शब्द दोनोंमें लगभग अेक ही होंगे। मेरी दृष्टिमें मेरी योजना अेक महान् और आवश्यक प्रयोग है। यह राष्ट्रको पुष्टि देनेवाला सिद्ध होगा, और कांग्रेसके प्रस्तावको अमली जामा पहनानेमें अिसका वहुत वड़ा हिस्सा रहेगा। अिसलिअे मुझे आशा है कि लाखों सेवक और सेविकायें अिस योजनाका स्वागत करेंगी।

प्र० ८. भाषाके स्वरूपमें देश-कालकी परिस्थितिके अनुसार परिवर्तन होते ही रहेंगे। अिसे कोअी रोक नहीं सकता। अिससे राष्ट्रभाषामें विदेशी भाषाके जो वहुतसे शब्द आ गये हैं, और रूढ़ हो गये हैं, वे अव निकाले नहीं जा सकते। परन्तु परम्परासे राष्ट्रभाषाकी लिपि तो नागरी ही चली आती है। वीचमें मुग़ल राज्यके वक़्त फ़ारसी लिपि आ गयी। अव मुग़लोंका राज्य नहीं है, अिसलिअे जिस तरह गुजराती और मराठीमें वहुतसे अरवी और अंग्रेज़ी शब्द होते हुअे भी अिन भाषाओंने अपनी लिपि नहीं छोड़ी, अुसी तरह राष्ट्रभाषा भी विदेशी शब्दोंको क़ायम रखते हुअे अपनी परम्परागत नागरी लिपिको ही क्यों न अपनाये रहे?

अु०—यहाँ परम्परागत वस्तुको छोड़नेकी नहीं, वल्कि अुसमें कुछ अिजाफ़ा करनेकी वात है। अगर मैं संस्कृत जानता हूँ और साथ ही फ़ारसी-अरवी भी सीख लेता हूँ, तो अिसमें वुराअी क्या है? मुमकिन है कि अिससे न संस्कृतको पुष्टि मिले, न अरवीको। फिर भी अरवीसे मेरा परिचय तो वढ़ेगा न? क्या सद्ज्ञानकी वृद्धिका भी कभी द्वेष किया जा सकता है?

प्र० ९. भारतीय भाषाओंके अुच्चारणको व्यक्त करनेकी सवसे ज्यादा योग्यता नागरी लिपिमें है, और आजकलकी फ़ारसी लिपि अिस कामके लिअे वहुत ही दोषपूर्ण है। क्या यह सच नहीं?

अु०—आप ठीक कहते हैं, परन्तु आपके विरोधमें अिस प्रश्नके लिअे स्थान नहीं है। क्योंकि जो चीज यहाँ है, अुसका तो विरोध है ही नहीं। परस्पर वृद्धि करनेकी वात है।

प्र० १०. राष्ट्रभाषाकी आवश्यकता क्या है? क्या अेक मातृभाषा और दूसरी विश्वभाषा काफ़ी न होगी? अिन दोनों भाषाओंके लिअे अेक रोमन लिपि हो, तो क्या बुरा है?

अु०—आपका यह प्रश्न आश्चर्यमें डालनेवाला है। अंग्रेजी तो विश्वभाषा है ही, मगर क्या वह हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा बन सकती है? राष्ट्रभाषा तो लाखों लोगोंको जाननी ही चाहिये। वे अंग्रेजी भाषाका बोझ कैसे अुठा सकेंगे? हिन्दुस्तानी स्वभावसे राष्ट्रभाषा है, क्योंकि वह लगभग २१ करोड़की मातृभाषा है। सम्भव है कि २१ करोड़की अिस भाषाको बाक़ीके अधिकतर लोग आसानीसे समझ सकें। लेकिन अंग्रेजी तो अेक लाखकी भी मातृभाषा शायद ही कही जा सके। अगर हिन्दुस्तानको अेक राष्ट्र बनना है, अथवा वह अेक राष्ट्र है, तो हमें अेक राष्ट्रभाषा तो चाहिये ही। अिसलिअे मेरी दृष्टिसे अंग्रेजी विश्वभाषाके रूपमें ही रहे और शोभा पाये; अिसी तरह रोमन लिपि भी विश्वलिपिके रूपमें रहे और शोभा पाअे—रहेगी और शोभेगी—हिन्दुस्तानकी राष्ट्र-भाषाकी लिपिके रूपमें कभी नहीं।

(हरिजनसेवक, २६-४-'४२)

चतुराओीभरी युक्ति

स०—जिसे आप हिन्दुस्तानी कहते हैं, अुस राष्ट्रभाषाके अंगके रूपमें अुर्दू सीख लेनेकी आपकी सलाह तो जानो अच्छी ही है। लेकिन निज़ाम राज्यमें अुर्दूका जो प्रचार किया जा रहा है, अुसके बारेमें आप क्या कहते हैं? तेलगू भाषाकी अेक परीक्षाके प्रश्न-पत्रका पहला प्रश्न अिस प्रकार है—

> "यदि संघ-शासनके सुयोगके लिअे हिन्दुस्तानको अेक सर्व-सामान्य भाषाकी अनिवार्य आवश्यकता हो, और हिन्दुस्तानीका पक्ष काफ़ी मज़बूत हो, तो मुझे यह लगता है कि अिस युनिवर्सिटीको चाहिये कि वह अुर्दूको तुरन्त ही शिक्षाका माध्यम बना दे—खासकर अिसलिअे कि वह अिस प्रान्तकी मातृभाषा है। जो लोग अिस भाषाके अधिक समृद्ध बनने तक राह देखना चाहते हैं, वे बड़ी ग़लती करते हैं। और अुनकी दलीलें भूल-भुलैया-जैसी हैं। जब तक युनिवर्सिटियाँ ज्ञानके सभी अंग-अुपांगोंको सिखानेमें अिस भाषाका अुपयोग नहीं करतीं, तब तक यह दरिद्र ही बनी रहेगी।"

यहाँ यह याद रखना चाहिये कि अिस प्रदेशके अधिकांश लोगोंकी मातृभाषा अुर्दू नहीं, तेलगू है। परीक्षाके प्रश्न-पत्रों द्वारा अुर्दूके पक्षमें प्रचार करनेकी अिस चतुर युक्तिके विषयमें आप क्या कहियेगा?

ज०—मैं मानता हूँ कि यह चतुर और अनोखी युक्ति है। जो प्रश्न तीव्र मतभेदका बना हुआ है, अुसके बारेमें प्रचार करनेके लिअे परीक्षाके प्रश्न-पत्रोंका अुपयोग करना शायद ही अुचित कहा जा सके। मैं यह भी मानता हूँ कि निज़ाम राज्यकी प्रजाकी मातृभाषा

अुर्दू नहीं है। मैं नहीं जानता कि राज्यकी कुल आबादीमें कितने फ़ीसदी लोग तेलगू जाननेवाले हैं; राष्ट्रभाषाकी मेरी कल्पनामें महान् प्रान्तीय भाषाओंको अुनके स्थानसे भ्रष्ट करनेका समावेश नहीं होता, बल्कि अुसके अनुसार तो राष्ट्रभाषाका ज्ञान प्रान्तीय भाषाके ज्ञानके अुपरान्त प्राप्त करनेकी बात है। और, न मैं यह आशा और अपेक्षा ही रखता हूँ कि देशके करोड़ों लोग कभी अखिल भारतीय राष्ट्रभाषाको सीखेंगे। जिन लोगोंको राजनीतिक क्षेत्रमें काम करना है, और जिन्हें अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार चलाना है, वे ही अिसे सीखेंगे। अेक पत्र-लेखक तो यह सुझाते हैं कि मुझे जनताको राष्ट्रभाषाके बदले पड़ोसी प्रान्तोंकी भाषायें सीखनेकी सलाह देनी चाहिये। और वह कहते हैं—"आसामवालोंको हिन्दी अथवा अुर्दू, और अब जैसा कि आप कहते हैं, हिन्दी और अुर्दू सीखनेकी अपेक्षा बँगला सीखनेमें अधिक लाभ है।" अगर अंग्रेजीको केवल अन्य भाषाके रूपमें ही नहीं, बल्कि समूची अुच्च शिक्षाके माध्यमके रूपमें सीखनेका असह्य बोझ हमारे सिर पर न होता, तो हमारे बालकोंके लिअे अपने पड़ोसियोंकी भाषाको और अखिल भारतीय व्यवहारके लिअे राष्ट्रभाषाको भी सीखना बायें हाथका खेल बन जाता। मेरी अपनी राय तो यह है कि जो भी कोअी लड़का या लड़की हिन्दुस्तानकी ६ भाषायें न जाने, मानना चाहिये कि अुसके संस्कार और शिक्षणमें कमी रही है। जब अंग्रेजी जाननेवाले भारतीय अंग्रेजीको छोड़कर दूसरी किसी भाषाको — अपनी मातृभाषाको भी — सीखनेके विचारसे कांपते हैं, तो समझना चाहिये कि यह अुनके थके हुअे दिमाग़का अेक अचूक प्रमाण है, क्योंकि अिसके विरोधमें अधिकतर अंग्रेजी जाननेवाले हिन्दुस्तानी ही हैं। मैंने कभी यह अनुभव नहीं किया कि हिन्दीके साथ अुर्दू सीखनेमें आश्रमवालोंको कोअी कठिनाअी मालूम हुअी है। और मैं यह जानता हूँ कि दक्षिण अफ्रीकामें तामिल और तेलगू मजदूर अेक-दूसरेकी भाषा बोल सकते थे, और वे कामचलाअू हिन्दी भी जानते थे।

किसीने अुन्हें कहा नहीं था कि अुन्हें हिन्दी सीख लेनी चाहिये। किसी तरह, अपने-आप ही, अुन्हें यह पता चल गया था कि अुन्हें हिन्दी जाननी चाहिये। निस्सन्देह वे हिन्दीके विद्वान् नहीं थे, लेकिन आपसी व्यवहारके लिअे जितनी जरूरी थी, अुतनी हिन्दी वे सीख चुके थे। और वे अपने पड़ोसी जूलुओंकी भाषा भी सीख गये थे। न सीखते तो वे अपना काम-धन्धा न चला पाते। अिस प्रकार वहाँ बहुतेरे हिन्दुस्तानी अपनी मातृभाषाके सिवा हिन्दुस्तानकी दूसरी दो भाषायें जानते थे, और जूलूके साथ टूटी-फूटी अंग्रेजी भी बोल लेते थे। यह कहनेकी ज़रूरत नहीं कि अुनमें से बहुतेरे अेक भी भाषाको लिखना नहीं जानते थे, और अधिकतर तो अपनी मातृभाषाओंको भी व्याकरणकी दृष्टिसे अशुद्ध ही लिख सकते थे। अिसका बोधपाठ स्पष्ट ही है।

अगर लिपिके सवालको छोड़ दें, तो आप अपने पड़ोसीकी भाषाको बिना किसी कोशिश और कठिनाअीके सीख सकते हैं, और अगर आप ताज़ा हैं, और आपका दिमाग़ थक नहीं गया है, तो आप जितनी चाहें अुतनी लिपियाँ भी बिना किसी कठिनाअीके सीख सकते हैं। अिस तरहका अभ्यास हमेशा रसप्रद और स्फूर्तिदायक होता है। भाषाओंका अभ्यास अेक कला है, और सो भी अेक बहुमूल्य कला!

(हरिजनसेवक, १७–५–'४२)

४२

हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा

१

जिस हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका जिक्र मैंने 'हरिजनसेवक' में किया था, वह अब बनने जा रही है। अुसका कच्चा ढाँचा बन गया है। वह कुछ मित्रोंके पास भेजा गया है। थोड़े ही दिनोंमें सभाकी योजना वगैरा जनताके सामने रखी जायगी। बाज़ लोगोंका यह खयाल बन गया है कि यह सभा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी विरोधिनी होगी। जिस सम्मेलनके साथ सन् १९१८ से मेरा सम्बन्ध बना हुआ है, अुसका विरोध मैं जान-बूझकर कैसे कर सकता हूँ? विरोध करनेका कोअी मज़बूत सबब भी तो होना चाहिये न? लेकिन, वैसा कुछ है नहीं। हाँ, यह सही है कि अुर्दूके बारेमें मैं सम्मेलनके चन्द सदस्योंसे आगे जाता हूँ। वे मानते हैं, मैं पीछे जा रहा हूँ। अिसका फ़ैसला तो वक़्त ही करेगा।

यह स्पष्ट करनेके लिअे कि सम्मेलनके प्रति मेरे मनमें कोअी विरोधी भाव नहीं है, मैंने श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनसे पत्र-व्यवहार किया था, जिसके फलस्वरूप सम्मेलनकी स्थायी समितिने नीचे लिखा निर्णय किया है :—

> "हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपने प्रारम्भसे ही हिन्दीको राष्ट्रभाषा मानता आया और मानता है। अुर्दू हिन्दीसे अुत्पन्न अरबी-फ़ारसी-मिश्रित अेक विशेष साहित्यिक शैली है। सम्मेलन हिन्दीका प्रचार करता है, अुसका अुर्दूसे विरोध नहीं है।
>
> "अिस समितिके विचारमें महात्मा गांधीकी प्रस्तावित हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके सदस्य हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और अुसकी अुप-

समितियोंके सदस्य रह सकते हैं, किन्तु व्यावहारिक दृष्टिसे अुचित यह होगा कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके पदाधिकारी नीचे प्रस्तावित हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके पदाधिकारी न हों।"

मैं अिससे अधिक अुदारताकी आशा नहीं कर सकता था। मेरी यह राय रही है और अब भी है कि अगर पदाधिकारी अेक ही रह सकते, तो संघर्षका सवाल ही न अुठ पाता। अिसमें कुछ अुठ सकता है, लेकिन दोनों ओरसे सज्जनताका व्यवहार होने पर संघर्ष हो ही नहीं सकता। हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी सफलतासे राष्ट्रभाषाका सवाल राजनीतिके क्षेत्रसे बाहर निकल आयेगा। राजनीतिसे तो अुसका कभी सम्बन्ध होना ही न चाहिये था।

(हरिजनसेवक, २६–४–'४२)

२

[गांधीजी और श्री राजेन्द्रबाबू वग़ैराकी सहीसे ता० २–५–१९४२ के दिन नीचे लिखा बयान छपा था :]

"लोगोंमें राष्ट्रभाषाको फैलानेका काम करनेसे यह पता चला है कि जिस भाषाको कांग्रेसने 'हिन्दुस्तानी' का नाम दिया है, वह मिली-जुली अुर्दू-हिन्दीका आसान रूप है। यही ज़बान है, जो अुत्तर हिन्दुस्तानमें बोली और समझी जाती है, और हिन्दुस्तानके दूसरे हिस्सोंमें भी लोग अिसे बहुत-कुछ समझते और बरतते हैं। अिसीके साहित्यिक (अदबी) रूप हिन्दी और अुर्दू अेक-दूसरेसे दूर होते चले जा रहे हैं। ज़रूरत अिस बातकी है कि अिन दोनों रूपोंको भी अेक-दूसरेके नज़दीक लाया जाय, और देशके अुन हिस्सोंमें, जहाँ दूसरी ज़बानें बोली जाती हैं, हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषाके तौर पर फैलाया जाय। अिसलिअे हम अेक अैसी सभा बनाना चाहते हैं, जो आसान हिन्दी और आसान अुर्दू दोनोंका साथ-साथ प्रचार करे, और जिसका हर मेम्बर हिन्दुस्तानीकी अिन दोनों शकलों और

लिपियोंको जानें और ज़रूरतके वक़्त वरत सकें। अिससे अेक तो यह होगा कि सारे देशमें अेक आसान और साफ़ ज़बान चल जायगी; और दूसरे, होते-होते अिसी आसान ज़बानमें अैसा अदब या साहित्य पैदा होने लगेगा, जिसमें अूँचे ख़यालों और भावोंको भी ज़ाहिर किया जा सकेगा। अिस कामको पूरा करनेके लिअे हम लोग 'हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा' के नामसे आज ता० ३–५–१९४२ को अेक सभा बनाते हैं।"

३

[अिस सभाके हेतु और कामके बारेमें अुसके विधानमें नीचे लिखी धारायें हैं:—]

३. हेतु (मक़सद) —राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीका प्रचार करना, जो सारे हिन्दुस्तानकी सामाजिक (समाजी), राजनीतिक (सियासी), कारबारी, और अैसी दूसरी ज़रूरतोंके लिअे देशभरमें काम आ सके, और अलग-अलग भाषायें (ज़बानें) बोलनेवाले सूबोंमें मेलजोल और बातचीतकी भाषा बन सके।

नोट—हिन्दुस्तानी वह भाषा है, जिसे अुत्तर हिन्दुस्तानके शहरों और गाँवोंके हिन्दू, मुसलमान आदि सब लोग बोलते हैं, समझते हैं, और आपसके कार-बारमें बरतते हैं, और जिसे नागरी और फ़ारसी दोनों लिखावटोंमें लिखा-पढ़ा जाता है, और जिसके साहित्यिक (अदबी) रूप आज हिन्दी और अुर्दूके नामसे पहचाने जाते हैं।

४. **सभाके काम**—हेतु सफल करनेके लिअे सभाके काम अिस तरह किये जायँगे:—

(१) हिन्दुस्तानीका अेक कोश (लुग़त) तैयार करना, जिस पर सब भरोसा कर सकें। हिन्दुस्तानीका व्याकरण (क़वायद) तैयार करना और अलग-अलग सूबोंके लिअे अैसे ही दूसरे संदर्भ-ग्रंथ (हवालेकी किताबें) बनाना।

(२) स्कूलोंमें पढ़ानेके लिअे हिन्दुस्तानीकी किताबें तैयार करना।

(३) हिन्दुस्तानीमें आसान किताबें छापना।

(४) हिन्दुस्तानीका प्रचार करनेके लिअे जगह-जगह परीक्षायें (अिम्तहान) लेना और अैसी ही परीक्षायें लेनेवाली सभाओंको मंजूर करना और मदद देना।

(५) हिन्दुस्तानीमें पारिभाषिक शब्दों (अिस्तलाही लफ़्ज़ों) का कोश तैयार करना।

(६) सूबेकी सरकारों, शहरों और ज़िलोंके बोर्डों और राष्ट्रीय शिक्षा (क़ौमी तालीम) की संस्थाओंसे हिन्दुस्तानीको लाज़िमी विषय मनवानेकी कोशिश करना।

(७) अूपर लिखे हुअे और अैसे ही और कामोंके लिअे सभाकी शाखायें खोलना, समितियाँ यानी कमेटियाँ बनाना, चन्दा अिकट्ठा करना, हिन्दुस्तानीमें किताबें निकालनेवालोंको मदद देना, मदरसे, पुस्तकालय (किताबघर), वाचनालय (पढ़ाअीघर), अुस्तादोंके स्कूल, रात्रिशालायें और अिसी तरहकी और भी संस्थायें चलाना।

(८) जो संस्थायें अिन कामोंमें हाथ बँटा सकें, अुन्हें अपने साथ लेना या अपनी सभासे जोड़ लेना।

(९) अैसे और सब जतन करना जिससे सभाके सब काम पूरे हो सकें।

नोट — अिस सभाकी माल-मिलकियतसे सभाका कोअी सभासद सभासदकी हैसियतसे निजी फ़ायदा न अुठा सकेगा।

४

हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाने अपना काम पूरे जोशके साथ शुरू कर दिया है। यह सभा अैसे कार्यकर्त्ताओंका अेक मंडल है, जिन्हें सभाके

सन्देश और मिशनमें श्रद्धा है। सभाका संदेश यह है कि हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा अंग्रेजी नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानी यानी हिन्दी+अुर्दू है। कांग्रेसके हिन्दुस्तानी-सम्बन्धी प्रस्तावके कर्ता हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके प्राणरूप श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ही थे। अुन्होंने मुझे यह बात बिलकुल साफ़ तौरसे समझाअी थी कि आजकी हालतमें हिन्दुस्तानीका मतलब हिन्दी+अुर्दू होना चाहिये। जो लोग कांग्रेसके अधिवेशनोंमें हाज़िर रहते हैं, अुन सबको अिस बातकी सचाअीका अनुभव हुआ होगा। क्योंकि जब कोअी कांग्रेसी हिन्दीमें बोलने लगता है, तो अुर्दू बोलनेवाले अुसकी बातको पूरी तरह समझ नहीं पाते, हो सकता है कि वे बिलकुल ही न समझ पाते हों। यही बात अुर्दू बोलनेवालोंके बारेमें भी कही जा सकती है। अिसलिअे अगर हम चाहते हैं कि हमारी बात सब कोअी समझें, तो हमें चाहिये कि हम मालवीयजी महाराज और बाबू भगवानदासकी तरह—जिन्हें मैंने सुना है, और जो हिन्दी और अुर्दूको मिलाकर बोलते हैं—अपनी बातचीत और भाषण वग़ैरामें मिश्र भाषाका अिस्तेमाल करें। अतअेव हिन्दुस्तानके राष्ट्रवादियोंके लिअे यह ज़रूरी है कि वे हिन्दुस्तानीके दोनों प्रकारोंमें बोलनेका मुहावरा रखें। जो अिन दोनों ज़बानोंमें अपने ख़याल आसानीके साथ ज़ाहिर नहीं कर सकते, अुनके बारेमें यह कहा जायगा कि वे हिन्दुस्तानी बोलना नहीं जानते। अिसीलिअे हिन्दुस्तानीकी ठीक-ठीक जानकारी रखनेका दावा करनेवालेको अुर्दू और नागरी दोनों लिपियोंका अच्छा-सा परिचय होना चाहिये। हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी स्थापनाके खास कारणोंमें अेक यह है कि बहुत अरसेसे महसूस की जानेवाली अिस कमीको दूर किया जाय। अिस सभाके संस्थापक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सदस्य थे और हैं। लेकिन जब सिर्फ़ हिन्दीके प्रचारसे अुनकी महत्वाकांक्षा तृप्त न हो पाअी, तो अब अुन्होंने सम्मेलनकी स्वीकृतिसे हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा स्थापित की है। सहज ही अिस सभाका पहला काम यह होना चाहिये कि वह तमाम हिन्दी जाननेवाले लोगोंको अुर्दू

सीखनेके लिअे समझाये और अुसके लिअे ज़रूरी सहूलियतें पैदा कर दे। अिसी खयालसे मैं आजकल अंजुमन-अे-तरक्क़ी-अे-अुर्दूके विद्वान् मंत्री मौलाना अब्दुल हक़ साहबके साथ मदद और रहनुमाअीके लिअे लिखा-पढ़ी कर रहा हूँ। सभाकी कार्यकारिणीने अुर्दूकी पहली परीक्षा आगामी २२ नवम्बर, १९४२ को लेना तय किया है। परीक्षा सम्बन्धी पाठ्यक्रम और अन्य विवरण यथासंभव जल्दी ही प्रकाशित किया जायगा। अिस परीक्षामें सम्मिलित होनेकी अिच्छा रखनेवाले अपने नाम आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल, मंत्री, हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा-कार्यालय, वर्धाके पते भेजनेकी कृपा करें। मुझे आशा है कि जिन लोगोंने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी परीक्षायें पास की हैं, वे सब अिस आगामी अुर्दू परीक्षाको पास करनेका अुत्साह दिखायेंगे। बेशक, जो हिन्दी नहीं जानते, अुनसे भी मेरा निवेदन तो यही होगा कि वे अिस परीक्षामें शामिल हों। किसी भी वक़्त किसी भी भाषाको जाननेसे हमारी मानसिक अुन्नति ही होती है, और अुस भाषाके बोलनेवाले लोगोंके साथ हम ज़्यादा गाढ़ सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। अतअेव जो लोग सिर्फ़ हिन्दी जानते हैं, अुन्हें अुर्दू सीख लेनेसे और जो सिर्फ़ अुर्दू जानते हैं, अुन्हें हिन्दीकी जानकारी हासिल कर लेनेसे कितना क़ीमती लाभ होगा? अगर अेक जीती-जागती हिन्दुस्तानीका कभी जन्म होना है, तो वह तभी होगा, जब हिन्दी और अुर्दू दोनों सहज भावसे खुशी-खुशी अेकरूप बनेंगी। अिस प्रकारकी अेकरूपता तब तक संभव नहीं, जब तक अिन दोनों ज़बानों पर अेक-सा प्रभुत्व रखनेवाले बहुतसे लोग तैयार न हो जायें।

(हरिजनसेवक, ९–८–'४२)

४३

गुजरातमें हिन्दुस्तानी-प्रचार

अब तक गुजरातमें हिन्दुस्तानीके प्रचारका काम मेरी सलाह लेकर काकासाहब द्वारा तैयार की हुअी योजनाके अनुसार भाओी अमृतलाल नाणावटी चला रहे हैं, और हिन्दी-प्रचारका दूसरा काम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी ओरसे बनी हुअी वर्धाकी राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति करती है। ये दोनों काम राष्ट्रभाषाके प्रचारके लिअे माने जाते हैं। हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका तो मैं अगुआ भी कहा जाअूंगा। सन् १९२५ में कानपुरकी कांग्रेसने हिन्दुस्तानीके बारेमें प्रस्ताव पास किया, लेकिन अुस पर अमल करनेके लिअे ज़रूरी अुपाय नहीं किये गये। अिसलिअे सन् १९४२ की दूसरी मअीको हिन्दुस्तानीके प्रचारके लिअे वर्धामें हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा क़ायम हुअी। सभाने हिन्दुस्तानीकी व्याख्या अिस तरह की है:—

> "हिन्दुस्तानी वह भाषा है, जिसे अुत्तर हिन्दुस्तानके शहरों और गाँवोंके हिन्दू, मुसलमान आदि सब लोग बोलते हैं, समझते हैं, और आपसके कारबारमें बरतते हैं, और जिसे नागरी और फ़ारसी दोनों लिखावटोंमें लिखा-पढ़ा जाता है और जिसके साहित्यिक (अदबी) रूप आज हिन्दी और अुर्दूके नामसे पहचाने जाते हैं।"

लेकिन अिससे पहले कि सभाका काम जमाया जा सके, कांग्रेसके अगस्त-प्रस्तावके सिलसिलेमें सरकारने बहुतोंको जेलके अन्दर बन्द कर दिया। अुनमें सभाके मुख्य संस्थापक भी थे। श्री नाणावटी बाहर थे। अुन्होंने महसूस किया कि हिन्दुस्तानी-प्रचारका काम अुन्हें शुरू कर देना चाहिये। मैं मानता हूँ कि अिस कामको हाथमें लेकर अुन्होंने देशकी सेवा की है।

हिन्दी और अुर्दू अेक ही राष्ट्रभाषाकी दो साहित्यिक शैलियाँ हैं। ये दोनों शैलियाँ आज तो अेक-दूसरीसे दूर होती जा रही हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीकी दृष्टिसे अिन दोनों शैलियोंको अेक-दूसरीसे नज़दीक लाना ज़रूरी है। दोनों लिपियों और शैलियोंकी जानकारीके विना यह मुमकिन नहीं।

हिन्दू-मुस्लिम कलह भाषामें भी आ घुसा है। मुझे वचपन ही से हिन्दू-मुस्लिम अेकताकी धुन रही है। भाषामें घुसे हुअे कलहको मिटानेके लिअे भी दोनों लिपियों और शैलियोंका ज्ञान ज़रूरी है।

अगर कांग्रेसका काम अंग्रेज़ीके विना चलाना हो, और चलाना ही चाहिये, तो भी हरअेक कांग्रेसीका धर्म है कि वह दोनों शैलियों और लिपियोंकी जानकारी हासिल कर ले। अिससे हिन्दी-अुर्दू अेक-दूसरीमें शामिल हो जायँगी, और अिस तरह जो भाषा फैलेगी, वह स्वाभाविक हिन्दुस्तानी होगी।

यह पूछा गया है कि दोनों शैली और दोनों लिपि सीखनेकी लगन हिन्दू-मुसलमान दोनोंको होनी चाहिये या अेक ही को। मैं देखता हूँ कि अिस सवालकी जड़में ग़लतफ़हमी है। जो भाअी-वहन भाषाके ज्ञानको वढ़ायेंगे वे अुससे कुछ पायेंगे, जो नहीं वढ़ायेंगे वे खोयेंगे। फिर जिन्हें अेकता प्यारी है, वे तो ज्यादा मेहनत करके भी दोनोंको सीखेंगे।

यह भी याद रहे कि पंजाव वग़ैरा प्रांतों या प्रदेशोंमें हिन्दू-मुसलमान वग़ैरा सव कोअी अुर्दू ही जानते हैं। हरअेक देशप्रेमीका धर्म है कि वह अिन सव तक पहुँचे।

हिन्दुस्तानके समान लम्वे-चौड़े देशमें तो हम जितनी ही भाषायें सीखते हैं, अुतने ही देशसेवाके लिअे ज्यादा लायक़ वनते हैं। ये दोनों शैलियाँ सिर्फ़ सेवक या कांग्रेसी ही सीखें या सव कोअी? मेरा जवाव है कि तमाम हिन्दुस्तानियोंको कांग्रेसी होना चाहिये; यानी सवको दोनों लिपि और शैली सीखनी चाहिये। दरअसल तो यह सवाल ही

ग़ैरमौज़ूं है, क्योंकि राष्ट्रभाषा सीखनेका शौक़ वहुत ही कम भाअी-वहनोंमें पाया गया है। कोअी वजह नहीं कि हज़ार दो हज़ार या लाख दो लाख लोगोंके अिम्तहानोंमें शामिल होनेसे हम फूल जायें। सिर्फ़ हिन्दी या सिर्फ़ अुर्दू सीखनेवाले भी जितने हम चाहते हैं, अुतने अ-हिन्दी या अ-अुर्दू प्रदेशोंमें नहीं मिलते।

क्या यह काफ़ी न होगा कि जिसे अुर्दू सीखना हो, वह अंजुमनोंसे सीखे, और हिन्दी सीखना हो, वह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे सीखे? हां, यह काफ़ी नहीं है। अिसीलिअे तो कांग्रेसको प्रस्ताव करना पड़ा और हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी ज़रूरत पैदा हुअी। दोनोंके क्षेत्र निर्दिष्ट हैं। और मेरे खयालसे तंग या संकुचित हैं। मैं यह ज़रूर चाहूंगा कि दोनों वहनें अेक-दूसरीको अपना लें। जव वह शुभ दिन आयेगा, तव हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका काम खतम माना जायगा। जव तक यह हालत पैदा नहीं होती, हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाको अपने धर्मका पालन करना ही है। मैं यह आशा अवश्य रखूंगा कि दोनों वहनें अिस मेल करानेवाली वहनको न सिर्फ़ निवाह लें, वल्कि अिसका स्वागत भी करें।

गुजरातमें हिन्दी-प्रचार और हिन्दुस्तानी-प्रचारका काम करनेवालोंमें वहुतसे तो मेरे साथी हैं। अुनमें से कुछने मुझसे रहनुमाअी चाही है। अिस वयानमें रास्ता सुझाया गया है। जो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी वनाअी वर्धा-समितिका काम करते हैं, अुन्हें मेरे हिन्दुस्तानी-प्रचार-सम्वन्धी विचार रुचे, तो वे अिस कामको भी हाथमें ले लें। और, जिन विद्यार्थियोंको हिन्दी शैली और देवनागरी लिपि ही सीखनी हो, अुन्हें वे खुशी-खुशी सिखायें, और सम्मेलनकी ही परीक्षाके लिअे तैयार करें। लेकिन वे खुद प्रचार तो दोनों शैली और दोनों लिपियोंका करें और जितनोंको अिसके लिअे तैयार कर सकें, करें। जहां तक भाषाका सम्वन्ध देशके कल्याणके साथ है, वहां तक हिन्दुस्तानीके प्रचारको मैं वहुत ज़रूरी मानता हूं। अिन दोनोंके वीच कभी द्वेषभाव न रहे।

अब सवाल यह अुठेगा कि आज तक जिन्होंने सिर्फ़ हिन्दी या सिर्फ़ अुर्दू सीखी है या आगे जो सिर्फ़ हिन्दी या अुर्दू सीखकर आयें, वे क्या करें? अैसे लोगोंको चाहिये कि वे बाक़ीकी अुर्दू या नागरी लिपि और शैली सीख लें, और दोनों लिपियोंमें ली जानेवाली हिन्दुस्तानीकी परीक्षामें शामिल हों। जिन्हें दोमें से अेक लिपि और शैली आती है, अुनके लिअे तो प्रश्नपत्र छुड़ाना बहुत आसान हो जायगा।

सेवाग्राम, २७–११–'४४

४४

कुछ सवाल-जवाब

[वर्धा-समितिके मंत्री श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन द्वारा ता० ८–११–'४४ के दिन लिखकर पूछे गये सवाल और गांधीजी द्वारा अुनके लिखकर दिये गये जवाब:]

स०—१. सन् १९४२ में जिस समय हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी स्थापना हुअी थी, अैसा लगता है कि अुस समय आपकी अिच्छा और प्रयत्न था कि जो लोग हिन्दुस्तानी-सभाके मेम्बर हों, वे राष्ट्रभाषाकी दोनों शैलियाँ तथा लिपियाँ अनिवार्य तौर पर सीखें। क्या आज भी आप केवल मेम्बरोंसे ही अुक्त ज्ञानकी अपेक्षा रखते हैं अथवा चाहते हैं कि देशके सभी आबालवृद्ध दोनों शैलियाँ तथा दोनों लिपियाँ अनिवार्य तौर पर सीखें?

ज०—१. ज़ाहिर है कि सभाके सभ्यके लिअे कम-से-कम यही क़ैद हो, जो आपने बताअी है। सभाका अुद्देश्य तो विधानसे स्पष्ट है। मेरी चाह अवश्य है कि सब हिन्दवासी दोनों लिपि सीखें, और दोनों हिन्दू-मुस्लिम समझ सकें, अैसी भाषा बोलें।

स०—२. हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके कार्यक्रमके बारेमें कुछ लोग समझते हैं कि अिसका अुद्देश्य दोनों शैलियोंका प्रचार करना मात्र है। किन्तु कोअी-कोअी कहते हैं, नहीं, दोनों शैलियोंके प्रचारके अतिरिक्त अेक तीसरी शैली—जो न अुर्दू कहलायेगी, न हिन्दी, बल्कि हिन्दुस्तानी—का प्रचार करना भी है। सन् १९४२ में आपका कहना था कि हिन्दुस्तानी रूपी सरस्वती तो प्रकट ही नहीं हुअी। क्या आज अुस समयसे कुछ भिन्न स्थिति है? यदि आज भी अप्रकट है, तो हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा प्रचार किस चीजका करेगी?

ज०—२. हिन्दी और अुर्दू शैली गंगा-यमुना हैं। हिन्दुस्तानी सरस्वती है। वह अप्रकट है और प्रकट भी। सभाका प्रयत्न अुसे पूर्ण प्रकट करनेका रहना चाहिये।

स०—३. हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अन्तर्गत अनेक संस्थायें देवनागरी लिपि और हिन्दीका प्रचार कर रही हैं। अंजुमन-अे-तरक्की-अे-अुर्दू फ़ारसी लिपि तथा अुर्दूका। क्या हिन्दुस्तानी-सभा अिन दोनों संस्थाओंके कार्यको अेक साथ मिलाकर करनेवाली तीसरी सभा-मात्र होगी? अथवा अुनके कार्यके अतिरिक्त कोअी तीसरा कार्य करनेवाली दोनों संस्थाओंके कार्यकी पूरक संस्था होगी? अथवा दोनोंके कार्यको व्यर्थ कर अपना ही तीसरा कार्य चलानेवाली संस्था बनेगी?

ज०—३. हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा दोनोंकी पूरक होगी, दोनोंसे मदद मांगेगी। लेकिन अिस सभाका कार्य दोनोंसे भिन्न होगा, और समझें तो अभिन्न भी। दोनोंके कार्यको व्यर्थ करे, तो खुद व्यर्थ हो जायगी। संगमके सिवा सरस्वती कैसी?

स०—४. क्या दक्षिण भारत तथा अन्य अ-हिन्दी प्रान्तोंके लिअे हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी नीति तथा कार्यक्रम वही रहेगा, जो अन्य प्रान्तोंके लिअे? अर्थात् दोनों लिपियों तथा शैलियोंका अनिवार्य प्रचार?

ज०—४. अिस सभाका कार्य तो सारे देशके लिअे होगा—होना चाहिये। प्रान्त-प्रान्तकी भिन्नताके लिअे प्रणालीमें भिन्नता आ सकती है।

स०—५. क्या दक्षिण भारत तथा अन्य अ-हिन्दी प्रान्तोंमें पिछले अनेक वर्षोंसे राष्ट्रभाषा-प्रचारका जो कार्य चालू है, हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी अिस नअी प्रवृत्तिसे अुस कार्यको वैसे ही चालू रखनेमें कोअी वाधा तो अुपस्थित न होगी?

ज०—५. वाधा होनी नहीं चाहिये, अगर दोनों मिलकर काम करें।

ता० ९–११–'४४

४५

अखिल भारतीय हिन्दुस्तानी-प्रचार-सम्मेलन

[अखिल भारतीय हिन्दुस्तानी-प्रचार-सम्मेलन, वर्धा (ता० २६/२७–२–'४५) के सभापति-पदसे दिये गये गांधीजीके तीन भाषण।]

१

सोमवार ता० २६–२–'४५ को मौनवार होनेकी वजहसे गांधीजीने सम्मेलनके लिअे जो प्रास्ताविक निवेदन लिखा था, अुसमें से नीचेका भाग लिया गया है:—

भाअियो और बहनो,

मुख्य अध्यापक श्री श्रीमन्नारायणके निमंत्रणसे आप लोग यहाँ जमा हुअे हैं, अिससे मैं खुश होता हूँ। डॉक्टर अब्दुल हक़ साहब आज ही आनेवाले थे; अुम्मीद है कि कल ज़रूर आ जायँगे। अुनकी मदद यह हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा और मैं लेना चाहता हूँ। अिसी तरह श्री टण्डनजी आनेवाले थे, और मैं खुश हो रहा था कि वे आयेंगे। भाअी श्रीमन्नारायणने अुनको तार भी दिया था। दुःख है कि वे बीमार पड़ गये हैं, और अिस कारण नहीं आ सकते हैं। हम अुम्मीद करें कि वे जल्दी अच्छे हो जायँगे।

आपके सामने काम अेक तरहसे छोटा है, और दूसरी तरह अुतना ही बड़ा है जैसे छोटा। हमें जो करना है, वह छोटा है, लेकिन नतीजेके हिसाबसे बहुत बड़ा है। डॉक्टर ताराचन्द हमें कहते हैं कि असलमें जिसे हम बहुत नामोंसे आज पुकारते हैं, वह अेक ही भाषा थी, जो अुत्तरमें हिन्दू-मुसलमान बोलते थे। दुःख है कि जो अेक थे, वे दो हो गये हैं; और अुनकी भाषा भी दो-जैसी हो गयी है या हो रही है—हिन्दी और अुर्दू! टण्डनजीकी मेहनतसे कांग्रेसने कानपुरमें दोनों बोल सकें अैसी भाषाको हिन्दुस्तानी नाम दिया, और लिपियां दो रखीं—नागरी और अुर्दू। लेकिन कांग्रेस अपने ठहरावके मुताबिक़ काम न कर सकी। अुस कामको स्वर्गीय जमनालालजीके प्रयाससे अिस सभाने सन् १९४२ अीस्वीमें अुठा तो लिया, पर जमनालालजी चल दिये। १९४२ में कांग्रेसके नेता लोग और दूसरे गिरफ्तार हो गये। अुनमें मैं भी था। बीमारीके कारण मैं छूटा। बीमारीमें भी मैंने भाअी नाणावटीजीका हिन्दुस्तानीके बारेमें काम देखा। मुझे खुशी हुअी और मैंने पाया कि अुस काममें कामयाबी हासिल हो सकती है। जो अेक भाषा पहले दोनों बोलते थे, वह आज क्यों अेक नहीं बन सकती, मैं नहीं जानता हूं। अुत्तरमें अुन्हीं हिन्दू-मुसलमानोंकी हम औलाद हैं, जो अेक बोली बोलते थे और लिखते थे। हिन्दी-अुर्दू अलग बनानेमें जो मेहनत पड़ती है, अुससे आधी भी पुरानी बोलीको जिन्दा करनेमें नहीं पड़नी चाहिये। अुत्तरके देहातोंमें रहनेवाले हिन्दू-मुसलमान अेक ही बोली बोलते हैं, कोअी लिखते भी हैं। अपनी यह मेहनत हम कैसे सफल कर सकते हैं, अिसका विचार करना आपका काम है। और अुस विचारके मुताबिक़ काम करना हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका काम है।

मुझे खेद है कि मैं कमज़ोरीके कारण दिनभर बन पड़े वहां तक ख़ामोश रहता हूं। अिन तीन मासमें शायद तीन बार दिनमें बोलना पड़ा था। आज तो सोमवारका ही मौन है। लेकिन मुझे अुम्मीद है कि मेरी ख़ामोशीसे हमारे काममें कुछ असुविधा न होगी।

अब यह सम्मेलन मैं आप ही के हाथोंमें छोड़ता हूँ। भाअी श्रीमन्नारायण वाक़ीकी कार्रवाअी करेंगे और करवायेंगे।

आजका सम्मेलन मेरी हाज़िरीमें तो ठीक साढ़े पाँच बजे तक बैठेगा। कल हमारा काम तीन बजेसे शुरू होगा; अुस वक़्त मैं अपने और विचार आपके सामने रखूँगा।

आप लोगोंको रहनेमें और खाने-पीनेमें कुछ असुविधा हो, तो आप माफ़ करेंगे। श्रीमती जानकीदेवीने जितना हो सका, अुतना बन्दोबस्त बजाजवाड़ीमें किया है।

२

हिन्दुस्तानी कान्फरेन्समें गांधीजी

[ता० २७ की बैठकके शुरूमें दिया गया भाषण।]

मुझे अिसका दुःख है कि आप लोगोंको मैं जितना वक़्त देना चाहता हूँ, नहीं दे सकता। अिसके लिअे मुझे माफ़ करें। मेरी खामोशी सारे दिन चलती है। वह अैसी नहीं है कि टूट ही न सके, लेकिन मैं चाहता हूँ कि जितने दिन रह सकूँ, रहूँ और मेरा काम ठीकसे चले; अिसलिअे खामोशी रखता हूँ। अगर मैं अपनी ताक़त अेकदम खर्च कर डालूँ, तो अेक महीनेमें टूट जाअूँ। पर मेरा सत्याग्रह और मेरी अहिंसा यह नहीं सिखाती। अगर ज़रूरत हो, तो अिस ताक़तको दोनों हाथोंसे लुटा दूँ, नहीं तो कंजूस भी हो सकता हूँ। आजकल तो कंजूसी ही से काम लेता हूँ।

हिन्दुस्तानी-प्रचार क्या है, यह मैं आपको बता देना चाहता हूँ। हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका मक़सद यह है कि ज्यादा-से-ज्यादा लोग हिन्दी और अुर्दू शैलियाँ और नागरी व अुर्दू लिपियाँ सीखें। अेक दिन था, जब अुत्तरमें रहनेवाले अेक ही ज़बान बोलते थे। अुनकी औलाद हम हैं। आज हम यह महसूस कर रहे हैं कि हिन्दी और अुर्दू अेक

दूसरीसे दूर-दूर होती जा रही हैं। हिन्दीवाले कठिन संस्कृतके और अुर्दूवाले कठिन अरबी-फ़ारसीके लफ़्ज़ चुन-चुनकर अिस्तेमाल कर रहे हैं। मैं मानता हूँ कि यह चीज़ चलनेवाली नहीं है। देहातके लोगोंको तो रोटीकी पड़ी है। वे जो ज़बान आज तक बोलते आये हैं, वही आगे भी बोलते रहेंगे।

हिन्दी और अुर्दूके जो अलग-अलग फ़िरक़े पैदा हो गये हैं, अुन्हें रोकनेका काम मेरे-जैसे लोगोंका है। मैं दोनोंसे कहूँगा कि आपका यह तरीक़ा ठीक नहीं है। आपके अिन बड़े-बड़े लफ़्ज़ोंको देहाती लोग समझेंगे भी नहीं। अगर हम दोनों लिखावटोंको सीख जायँ, तो आखिरमें दोनों भाषायें अेक हो जायँगी। लिखावटोंका सवाल अितना टेढ़ा नहीं है। भले ही हमेशाके लिअे दो लिपियाँ रहें, या दोनोंको छोड़कर हरअेक प्रान्त अपनी-अपनी लिपिमें राष्ट्रभाषा लिखने लगे, तो भी कोअी हर्ज नहीं। मगर ज़बान तो अेक ही हो जानी चाहिये। आज हम आलसी बन गये हैं। अंग्रेज़ीका बोझ आज हमारे सिर पर है, लेकिन अंग्रेज़ी भी अितनी मुश्किल नहीं है। हम छः महीनोंमें अंग्रेज़ी सीख सकते हैं, मगर हम तो अंग्रेज़ीमें सोचना और शास्त्र (अिल्म) सीखना चाहते हैं, अिसलिअे वक़्त लगता है। अंग्रेज़ीके पीछे ज़िन्दगीके चौदह अुम्दा साल हम बरबाद करते हैं, और अितना करने पर भी हम अुसे पूरी तरह सीख नहीं पाते। अगर आज किसी अंग्रेज़ीदाँसे यह कहो कि वह हिन्दुस्तानीमें अपनी बातें समझाये, तो वह कहता है कि कैसे समझाअूँ? क्योंकि अंग्रेज़ीमें पढ़ाअी होनेके कारण वह हिन्दुस्तानीमें अपने खयाल ज़ाहिर नहीं कर सकता। फिर वह हिन्दुस्तानी लड़कोंको कैसे सिखावेगा? यह है हमारी दुर्दशा! अिससे आलस भी पैदा होता है।

दो लिपियाँ सीखनेसे डरना न चाहिये। कोअी कहे कि आठ-दस दूसरी अच्छी लिपियाँ हैं, तो क्यों न सीखें? मैं तो कहता हूँ कि

दक्षिणकी भी अेक लिपि तो सीख ही लो। ज़बानें भी वहाँ चार हैं। अिससे आप भड़कें नहीं।

आप हिन्दुस्तानमें रहते हैं। हिन्दुस्तानियोंकी सेवा — खिदमत — करना चाहते हैं, तो अुसके लिअे दो लिपियाँ सीखनेकी मेहनतसे डरना क्या? ज़बान तो अेक ही सीखनी है। हमारी बदनसीबी है कि हमें दो लिपियाँ लेनी पड़ती हैं। मगर मैं तो हिन्दकी सब ज़बानें खुशीसे सीख लूँ। दिलमें शौक़ हो तो मेहनत कम पड़ती है। आपकी तादाद आज बहुत ही कम है, भले ही हो। लेकिन आप सब तो दो लिपियाँ सीख ही लें। अुसका नतीजा कितना बड़ा होगा, अिसमें मैं नहीं जाना चाहता।

कुछ अुर्दू बोलनेवाले बड़ी-बड़ी बातें कहते वक़्त जिन लफ़्ज़ोंका अिस्तेमाल करते हैं, अुन्हें सुनकर मैं घबरा अुठता हूँ; हालाँकि अुनके साथमें काफी बैठता हूँ। अैसा क्यों? मैंने अिसका अिलाज पाया है, और अुसको आपके सामने रखा है।

वर्धा, २७–२–'४५
(तीन बजे दिनको)

३

अुपसंहार

[सम्मेलनके अुपसंहार-रूपमें किया गया तीसरा भाषण।]

ताराचन्दजीसे मैं जल्दी खत्म करनेको नहीं कह सकता था, क्योंकि मैं खुद अुनकी बातोंमें गिरफ़्तार हो गया था। अुन्होंने अैसी बातें कहीं, जो वे पंडितोंके मजमेमें भी कह सकते हैं। हम तो पंडित नहीं हैं, फिर भी सब लोगोंके साथ मैं भी रससे सुन रहा था। अुन्होंने कोअी बात दुहराअी भी नहीं, अिसलिअे मैंने अुन्हें नहीं रोका।

श्री आनन्द कौसल्यायनने जो कहा वह मैं समझा। वे दब-दबकर बोले हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी तरफ़से अुन्होंने यह कहा कि दो लिपियोंका बोझ हो सके तो निकाल दिया जाय। मैं आज भी हिन्दी-

साहित्य-सम्मेलनमें हूँ। अुसमें मैं अपने आप नहीं गया था। जमनालालजी जिस काममें जाते, अुसमें अपने साथ मुझे भी घसीट ले जाते थे। वे मुझे अिन्दौर ले गये। वहाँ मैंने सम्मेलनको अेक नअी चीज़ दी। अुसे सब हज़म कर गये। मैंने कहा था—"हिन्दी वह ज़बान है, जिसे हिन्दू-मुसलमान दोनों बोलते हैं, और जिसे लोग दोनों लिपियोंमें लिखते हैं।" मेरा वह ठहराव मंजूर हो गया। मैंने अुसे सम्मेलनके नियमों (क़ायदों) में शामिल करा दिया। बादमें फिर वह नियम बदल दिया गया, सो दूसरी बात है; अिसलिअे अब अगर मैं सम्मेलनमें से निकल जाअूँ, तो मुझे दुःख न होगा।

हममें कअी अैसे हैं, जो हिन्दी और अुर्दूको मिलानेकी कोशिश करते हैं। कोअी कहते हैं—"अिसकी क्या आवश्यकता है?" मैं तो सच्ची डेमोक्रेसी (जनतन्त्र या जमहूरियत) चाहता हूँ। सिर्फ़ हाँ-में-हाँ मिलानेसे 'डेमोक्रेसी' से 'हिपोक्रेसी' (कपट) बन जाती है। अिसीलिअे मैंने कहा कि सिर्फ़ हाँ-में-हाँ न मिलाअिये; अपनी सच्ची राय बताअिये।

मैं नहीं चाहता कि हिन्दी मिट जाय या अुर्दू नष्ट हो जाय। मैं सिर्फ़ यह चाहता हूँ कि दोनों हमारे कामकी हो जायें। सत्याग्रहका क़ानून है कि अेक हाथकी ताली भी हो सकती है। वह बजती नहीं, पर अुससे क्या? आप अेक हाथ बढ़ावेंगे, तो दूसरा अपने आप बढ़ जावेगा। हक़ साहबने नागपुरमें जो बात कही थी, अुसे अुस वक़्त मैं न समझ सका। 'हिन्दी यानी अुर्दू' अिसे मैंने माना नहीं था। अुस वक़्त अुनकी बात मान लेता, तो अच्छा होता। दोस्त बनने आये थे, मगर विरोध हुआ और दुश्मन-से बन गये। पर मेरा दुश्मन तो कोअी है ही नहीं। फिर हक़ साहब ही मेरे दुश्मन कैसे बन सकते हैं? अिसलिअे आज फिर हम अेक मंच पर खड़े हो गये हैं। नागपुरमें भारतीय साहित्य-सम्मेलन किया था, लेकिन वह वहीं आरम्भ और वहीं खतम हुआ। हम लोग मिलने आये थे, और हो गये अलग-अलग। अैसे सम्मेलनसे

क्या फ़ायदा हो सकता था? वह हिन्दुस्तानी नहीं, बल्कि भारतीय साहित्य-सम्मेलन था, अिसलिअे अुस वक़्तके भाषणमें मैंने संस्कृतके शब्द भर दिये थे। अगर अुनके सामने बोलना पड़े, तो आज भी वही कहूँगा।

आनन्दजी कहते हैं कि सबको दो लिपियाँ सीखनेमें बड़ी मुसीबत अुठानी पड़ेगी। मैं कहता हूँ कि अुसमें कुछ भी मुसीबत नहीं है। और अगर हो भी, तो अुसे पार करना ही होगा। क्योंकि अगर अुसे पार न किया, तो अुससे भी बड़ी मुसीबतोंका मुक़ाबला हम कैसे कर सकेंगे?

मैं हिन्दू-मुस्लिम अेकताके लिअे जीता हूँ। मैं जानता हूँ कि हिन्दुस्तानीके प्रचारसे हिन्दू-मुस्लिम अेकता होगी, मगर अिस वक़्त मैं आपको यह लालच नहीं दे रहा हूँ।

मैं कहता हूँ कि हिन्दी और अुर्दू दोनोंका भला हो। अिन दोनोंसे मुझे काम लेना है। हिन्दुस्तानी आज भी मौजूद है। मगर हम अुसे काममें नहीं लाते। यह ज़माना हिन्दी और अुर्दूका है। वे दो नदियाँ हैं। अुनमें से हिन्दुस्तानीकी तीसरी नदी प्रकट होनेवाली है। अिसलिअे वे दोनों सूख जायँगी, तो हमारा काम नहीं चल सकता।

देहाती लोग मेरी ज़बान समझ लेंगे। ठूँस-ठूँस कर संस्कृत या अरबी-फ़ारसीके शब्द जिसमें भरे हुअे हैं, अैसी भाषा वे नहीं समझ सकेंगे। अगर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनवाले कहें कि हम तो संस्कृतभरी हिन्दी ही चलायेंगे, तो मेरे लिअे सम्मेलन मर जाता है। देहाती ज़बान तो अेक ही है, वह दो नहीं हो सकती। हिन्दीवाले चाहते हैं कि मैं हिन्दीकी ही नौबत बजाता रहूँ, अुर्दूका नाम न लूँ। मगर मैं तो अहिंसाको माननेवाला सत्याग्रही हूँ। मैं यह कैसे कर सकता हूँ? मैं अकेला यह काम नहीं कर सकता। अिसमें सबकी मदद चाहिये। मैं महात्मा हूँ, तो अुसका सबब यही है कि मैं अपनी मर्यादाओं (हदों) को समझकर अुनसे बाहर नहीं जाता। अिसीलिअे मौलवी अब्दुलहक़ साहब आये हैं। मेरे पास पंख नहीं हैं। बड़े-बड़े बुज़ुर्गोंको अिसलिअे बुलाया है कि वे मुझे पंख दें। देंगे

तो मैं अुडूंगा और कहूँगा — 'देखो, काम तो अच्छा हो गया न?' नहीं तो मैं खाकमें पड़ा हूँ, खाकसार ही रह जाअूंगा।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें भी मैं अेक बड़ा आदमी समझा जाता हूँ। अुस हैसियतसे नहीं, बल्कि आम तौर पर मैं यह कहना चाहता हूँ कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके ख़िलाफ़ कोअी काम न होगा। पर दोनों लिपियाँ सीखनेकी तकलीफ़ तो गवारा करनी ही होगी। मैं तो टानन्दजीसे भी काम लेना चाहता हूँ।

मुझसे कहा गया है कि 'मुस्लिम लड़के तो नागरी लिपि नहीं सीखते'। मैं कहता हूँ — 'अगर अैसा है, तो तुमने कुछ नहीं खोया, अुन्होंने खोया। अेक और लिपि सीख ली, तो अुससे नुक़सान क्या हुआ? अितनी-सी बातसे अितना बड़ा हित जो होता है!' यही बात मैंने हसरत मोहानी साहबसे भी कही थी। लेकिन अुस वक़्त वह काम न चला; क्योंकि सत्याग्रह शुरू हो गया। मैं यह नहीं कहता कि आप सब लोग जेल जायें, मगर मैं जेल गया। दूसरे जो जेलोंमें पड़े हैं, सो भी कोअी मूर्खताकी बात नहीं है। जवाहर, वल्लभभाअी, मौलाना साहब जेलमें बैठे हैं, वे कोअी पागल नहीं हैं। अगर वे खुशामद करके बाहर आ जायें, तो मेरी नजरमें वे मर जायें। अगर वे अन्दर ही मर जायेंगे, तो मैं अेक भी आँसू नहीं बहाअूंगा। कहूँगा—'अच्छे मरे!' क्योंकि वहाँ बैठे-बैठे भी वे हिन्दकी खिदमत कर रहे हैं।

अगर हिन्दी और अुर्दू मिल जायें, तो गंगा-जमनासे बड़ी सरस्वती हुगलीकी तरह बन जायगी। हुगली तो गंदी है। मैं अुसका पानी नहीं पीता। पर अगर यह हुगली बन गअी, तो यह बड़ी ख़ूबसूरत होगी।

अब रही पैसेकी बात। आपमेंसे जो लोग पैसा देना चाहेंगे, वे मेरे पास या श्रीमन्नारायणके पास दे दें। हरअेकको अपनी हैसियतके मुताबिक पैसा देना चाहिये। जो लोग पैसा दें, कामके लिअे दें, नामके लिअे कोअी पैसा न दें।

वर्धा, २७-२-'४५

कान्फरेन्सके ठहराव

१. अिस कान्फरेन्सकी रायमें हिन्दुस्तानी ज़बानको फैलाने और तरक़्क़ी देनेके लिअे अिस बातकी ज़रूरत है कि हिन्दी जाननेवाले अुर्दू लिखावटको और अुर्दू जाननेवाले नागरी लिखावटको जल्दी-से-जल्दी सीख लें। और जो लोग अिन दोनोंमें से किसीको भी नहीं जानते, वे भी दोनों ही को सीखें, ताकि सब लोग हिन्दुस्तानीके रूपों—हिन्दी और अुर्दू—को पढ़ और समझ सकें, और अिस तरीक़ेसे हिन्दुस्तानीका विकास और प्रचार हो सके।

२. देशके सब लोग अिस बातको मानते और समझते हैं कि हमारे क़ौमी जीवनको मज़बूत करने और अलग-अलग सूबोंके लोगोंमें मेल-जोल और व्यवहारकी अेक भाषा बनानेके लिअे यह ज़रूरी है कि हिन्दुस्तानी ज़बानको तरक़्क़ी दी जाय, और अुसकी रूपरेखा ठीक की जाय, क्योंकि अिस बातके लिअे यही भाषा सबसे ज़्यादा कामकी है।

यह कान्फरेन्स फ़ैसला करती है कि पन्द्रह तक मेम्बरोंकी अेक कमेटी बनाअी जाय, जो हिन्दुस्तानी भाषाकी डिक्शनरियाँ तैयार करे, भाषाके क़ायदे तैयार करे, अुसके लफ़्ज़ोंका भण्डार बढ़ावे, अुनके रूप बाँधे, और अच्छी-अच्छी और कामकी किताबें लिखवाये। किसी मेम्बरकी जगह खाली होगी, तो अुसे बाक़ी मेम्बर भर सकेंगे। कमेटीका अेक 'कन्वीनर' होगा, जो मुनासिब वक़्त और जगह पर कमेटीकी मीटिंग बुलाया करेगा।

यह कमेटी अपने कामका अेक ढाँचा तैयार करेगी, खर्चका ब्यौरा बनायेगी, अुसे महात्मा गांधीके पास मंज़ूरीके लिअे भेजेगी, और महात्माजीको समय-समय पर अपने कामकी रिपोर्ट देती रहेगी।

अिस कमेटीके मेम्बरोंके नाम महात्मा गांधी, डॉक्टर ताराचन्द और सैयद सुलेमान नदवी शाया करेंगे।

पूर्ति

[आठवें पृष्ठ पर १६ वीं सतरमें 'कामकी सिद्धिके अुपाय' का जिक्र करके कहा गया है कि मातृभाषाके बारेमें जो अुपाय सुझाये गये हैं, वैसे ही अुपाय जरूरी हेरफेरके साथ राष्ट्रभाषाके लिअे भी अुपयोगी हो सकते हैं। अुस भाषणमें मातृभाषाके सिलसिलेमें जो अुपाय सुझाये गये थे, वे यों थे :—]

"अगर मातृभाषाको शिक्षाका माध्यम बनाना अिष्ट हो, तो यह सोचना चाहिये कि अुसका अमल करनेके लिअे हमें किन अुपायोंसे काम लेना चाहिये। मुझे जो अुपाय सूझ रहे हैं, वे ज्यों-के-त्यों, बिना दलीलके, नीचे दिये देता हूँ—

१. अंग्रेजी जाननेवाले गुजरातीको जाने-अनजाने भी आपसके व्यवहारमें अंग्रेजीका अिस्तेमाल न करना चाहिये।

२. जिसे अंग्रेजी व गुजराती दोनोंकी अच्छी जानकारी है, अुसे चाहिये कि वह अंग्रेजीकी अच्छी किताबों या विचारोंको गुजरातीमें जनताके सामने पेश करे।

३. शिक्षण-संस्थाओंको पाठ्य-पुस्तकें तैयार करानी चाहियें।

४. धनवानोंको चाहिये कि वे गुजरातीकी मारफ़त तालीम देनेवाले मदरसे जगह-जगह क़ायम करें।

५. अिन कामोंके साथ ही परिषदों और शिक्षण-समितियोंको सरकारसे यह निवेदन करना चाहिये कि सारी शिक्षा मातृभाषाके जरिये ही दी जाय। अदालतों और धारासभाओंका काम गुजरातीके जरिये होना चाहिये, और जनताका सब काम भी अुसी भाषामें होना चाहिये। अंग्रेजीके जानकारोंको ही अच्छी नौकरी मिल सकती है, अिस

रिवाजको बदलकर नौकरोंको अुनकी लियाक़तके मुताबिक़, भाषाका भेद न रखते हुअे, पसन्द किया जाना चाहिये। सरकारके पास अिस मतलबकी अर्जियाँ जानी चाहियें कि वह अैसे मदरसे क़ायम करे, जिनमें नौकरी करनेवाले लोगोंको गुजराती भाषाके ज़रिये ज़रूरी जानकारी मिल सके।

अूपरकी अिस योजनामें अेक आपत्ति नज़र आयेगी, और वह यह है कि धारासभामें तो मराठी, सिन्धी, और गुजराती सदस्य हैं, और शायद कानड़ी भी हों। यह अेक बड़ी आपत्ति है, किन्तु अनिवार्य नहीं। तेलगू-वालोंने अिस सवालकी चर्चा शुरू की है, और अिसमें शक नहीं कि किसी-न-किसी दिन भाषाके अनुसार नये विभाग करने होंगे; लेकिन जब तक यह नहीं होता, तब तक सदस्यको यह अधिकार मिलना चाहिये कि वह हिन्दीमें अथवा अपनी मातृभाषामें भाषण कर सके। अगर यह सुझाव अिस वक़्त हँसीके लायक़ मालूम पड़े, तो माफ़ी माँगते हुअे मैं यही कहूँगा कि बहुतेरे सुझाव पहली नज़रमें और शुरू-शुरूमें हँसीके लायक़ मालूम पड़ते हैं। मेरी यह राय है कि शिक्षाके माध्यमके शुद्ध निर्णय पर देशकी अुन्नतिका आधार है। अिसलिअे मुझे अपने सुझावमें भारी रहस्य मालूम होता है। जब मातृभाषाकी क़ीमत बढ़ेगी, अुसे राज्य-पद प्राप्त होगा, तब अुसमें अैसी शक्तियाँ पायी जायँगी कि जिनकी हमने कल्पना भी नहीं की होगी।"

राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी

भाग दूसरा

१

राष्ट्रभाषाका प्रश्न

गांधीजी और टण्डनजीका पत्र-व्यवहार

२, महाबलेश्वर,
२८-५-'४५

भाओी टण्डनजी,

मेरे पास अुर्दू खत आते हैं, हिन्दी आते हैं और गुजराती। सब पूछते हैं, मैं कैसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें रह सकता हूँ और हिन्दुस्तानी सभामें भी? वे कहते हैं, सम्मेलनकी दृष्टिसे हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है, जिसमें नागरी लिपि ही को राष्ट्रीय स्थान दिया जाता है, जब कि मेरी दृष्टिमें नागरी और अुर्दू लिपिको यह स्थान दिया जाता है, और अुस भाषाको जो न फ़ारसीमयी है, न संस्कृतमयी। जब मैं सम्मेलनकी भाषा और नागरी लिपिको पूरा राष्ट्रीय स्थान नहीं देता हूँ, तब मुझे सम्मेलनमें से हट जाना चाहिये। अैसी दलील मुझे योग्य लगती है। अिस हालतमें क्या सम्मेलनसे हटना मेरा फ़र्ज़ नहीं होता है? अैसा करनेसे लोगोंको दुविधा न रहेगी, और मुझे पता चलेगा कि मैं कहाँ हूँ।

कृपया शीघ्र अुत्तर दें। मौनके कारण मैंने ही लिखा है, लेकिन मेरे अक्षर पढ़नेमें सबको मुसीबत होती है, अिसलिअे अिसे लिखवाकर भेजता हूँ। आप अच्छे होंगे?

आपका,
मो० क० गांधी

१०, क्लास्थवेट रोड, अिलाहाबाद
८-६-'४५

पूज्य बापूजी, प्रणाम।

आपका २८ मअीका पत्र मुझे मिला। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके कामोंमें कोअी मौलिक विरोध मेरे विचारमें नहीं है। आपको स्वयं हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका सदस्य रहते हुअे लगभग २७ वर्ष हो गये। अिस बीच आपने हिन्दी प्रचारका काम राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे किया। वह सब काम ग़लत था, अैसा तो आप नहीं मानते होंगे। राष्ट्रीय दृष्टिसे हिन्दीका प्रचार वांछनीय है, यह तो आपका सिद्धांत है ही। आपके नये दृष्टिकोणके अनुसार अुर्दू-शिक्षणका भी प्रचार होना चाहिये। यह पहले कामसे भिन्न अेक नया काम है, जिसका पिछले कामसे कोअी विरोध नहीं है।

सम्मेलन हिन्दीको राष्ट्रभाषा मानता है। अुर्दूको वह हिन्दीकी अेक शैली मानता है, जो विशिष्ट जनोंमें प्रचलित है।

वह स्वयं हिन्दीकी साधारण शैलीका काम करता है, अुर्दू शैलीका नहीं। आप हिन्दीके साथ अुर्दूको भी चलाते हैं। सम्मेलन अुनका तनिक भी विरोध नहीं करता। किन्तु राष्ट्रीय कामोंमें अंग्रेजीको हटानेमें वह अुसकी सहायताका स्वागत करता है। भेद केवल अितना है कि आप दोनों चलाना चाहते हैं। सम्मेलन आरम्भसे केवल हिन्दी चलाता आया है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सदस्योंको हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके सदस्य होनेमें रोक नहीं है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी ओरसे निर्वाचित प्रतिनिधि हिन्दुस्तानी अेकेडेमीके सदस्य हैं, और हिन्दुस्तानी अेकेडेमी हिन्दी और अुर्दू दोनों शैलियाँ और लिपियाँ चलाती है।

अिस दृष्टिसे मेरा निवेदन है कि मुझे अिस बातका कोअी अवसर नहीं लगता कि आप सम्मेलन छोड़ें।

अेक बात अिस सम्बन्धमें और भी है। यदि आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अब तक सदस्य न होते, तो संभवतः आपके लिअे यह ठीक होता कि आप हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका काम करते हुअे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें आनेकी आवश्यकता न देखते। परन्तु जब आप अितने समयसे सम्मेलनमें हैं, तब अुसे छोड़ना अुसी दशामें अुचित हो सकता है, जब निश्चित रीतिसे अुसका काम आपके नये कामके प्रतिकूल हो। यदि आपने अपने पहले कामको रखते हुअे अुसमें अेक शाखा बढ़ाअी है, तो विरोधकी कोअी बात नहीं है।

मुझे जो बात अुचित लगी, अूपर निवेदन किया। किन्तु यदि आप मेरे दृष्टिकोणसे सहमत नहीं हैं, और आपका आत्मा यही कहता है कि सम्मेलनसे अलग हो जाअूं, तो आपके अलग होनेकी बात पर बहुत खेद होते भी नतमस्तक हो आपके निर्णयको स्वीकार करूँगा।

हालमें हिन्दी और अुर्दूके विषयमें अेक वक्तव्य मैंने दिया था। अुसकी अेक प्रतिलिपि सेवामें भेजता हूँ। निवेदन है कि अुसे पढ़ लीजियेगा।

विनीत,

पुरुषोत्तमदास टण्डन

पुनः—अिस समय न केवल आप किन्तु हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके मंत्री श्रीमन्नारायणजी तथा कअी अन्य सदस्य सम्मेलनकी राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके सदस्य हैं। अेक स्पष्ट लाभ अिससे यह है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति और हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके कामोंमें विरोध न हो

सकेगा। कुछ मतभेद होते हुअे भी साथ काम करना हमारे नियंत्रणका अंश होना अुचित है।

पु० दा० टण्डन

पंचगनी,
१२-६-'४५

भाअी पुरुषोत्तमदास टण्डनजी,

आपका पत्र कल मिला। आप जो लिखते हैं, अुसे मैं बराबर समझा हूँ, तो नतीजा यह होना चाहिये कि आप और सब हिन्दी-प्रेमी मेरे नये दृष्टिकोणका स्वागत करें और मुझे मदद दें। अैसा होता नहीं है। और गुजरातमें लोगोंके मनमें दुविधा पैदा हो गयी है। और मुझसे पूछ रहे हैं कि क्या करना? मेरे ही भतीजेका लड़का और अैसे दूसरे हिन्दीका काम कर रहे हैं, और हिन्दुस्तानीका भी। अिससे मुसीबत पैदा होती है। पेरीनबहनको आप जानते हैं। वे दोनों काम करना चाहती हैं। लेकिन अब मौक़ा आ गया है कि अेक या दूसरेको छोड़ें। आप जो कहते हैं, वह सही है, तो अैसा मौक़ा आना ही न चाहिये। मेरी दृष्टिसे अेक ही आदमी हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका मंत्री या प्रमुख बन सकता है। बहुत काम होनेके कारण न हो सके वह दूसरी बात है। और जो मैं कहता हूँ वही अर्थ आपके पत्रका है, और होना चाहिये। तब तो कोअी मतभेदका कारण ही नहीं रहता, और मुझको बड़ा आनन्द होगा। आपका जो वक्तव्य आपने भेजा है, मैं पढ़ गया हूँ। मेरी दृष्टिसे हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा बिलकुल आप ही का काम कर रही है, अिसलिअे वह आपके धन्यवादकी पात्र है। और कम-से-कम अुसमें आपको सदस्य होना चाहिये। मैंने तो आपसे विनय भी किया कि आप अुसके सदस्य बनें, लेकिन आपने अिनकार किया है, अैसा कहकर कि जब तक डॉक्टर अब्दुलहक़ न बनें, तब तक आप भी

बाहर रहेंगे। अब मेरी दरख्वास्त यह है कि अगर मैं ठीक लिखता हूँ, और हम दोनों अेक ही विचारके हैं, तो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी ओरसे यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिये। अगर अिसकी आवश्यकता नहीं है, तो मेरा कुछ आग्रह नहीं है। कम-से-कम हम दोनोंमें तो अिस बारेमें मतभेद नहीं है, अितना स्पष्ट होना चाहिये। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें से निकलना मेरे लिअे कोअी मजाककी बात नहीं है। लेकिन जैसे मैं कांग्रेसमें से निकला, तो कांग्रेसकी ज्यादा सेवा करनेके लिअे, अुसी तरह अगर मैं सम्मेलनमें से निकला, तो भी सम्मेलनकी अर्थात् हिन्दीकी ज्यादा सेवा करनेके लिअे निकलूँगा।

जिनको आप मेरे नये विचार कहते हैं, वे सचमुच तो नये नहीं हैं। लेकिन जब मैं सम्मेलनका प्रथम सभापति हुआ, तब जो कहा था और दोबारा सभापति हुआ, तब अधिक स्पष्ट किया था, अुसी विचार-प्रवाहका मैं अभी स्पष्ट रूपसे अमल कर रहा हूँ, अैसा कहा जाय। आपका अुत्तर आने पर मैं आखिरका निर्णय कर लूँगा।

आपका,

मो० क० गांधी

१०, कास्थवेट रोड, अिलाहाबाद

११–७–'४५

पूज्य बापूजी, प्रणाम।

आपका पंचगनीसे लिखा हुआ १३ जूनका पत्र मिला था। अुसके तुरन्त बाद ही राजनीतिक परिवर्तनों और पंचगनीसे हटनेकी बात सामने आअी। मेरे मनमें यह आया था कि राजनीतिक कामोंकी भीड़से थोड़ी सुविधा जब आपके पास देखूँ तब मैं लिखूँ। आज ही सवेरे मेरे मनमें आया कि अिस समय आपको कुछ सुविधा होगी। अुसके बाद श्री प्यारेलालजीका ९ तारीखका पत्र आज ही मिला, जिसमें अुन्होंने सूचना दी है कि आप मेरे अुत्तरकी राह देख रहे हैं।

आपने अपने २८ मअीके पत्रमें मुझसे पूछा था कि मैं कैसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें रह सकता हूँ, और हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभामें भी? अिस प्रश्नका अुत्तर मैंने अपने ८ जूनके पत्रमें आपको दिया। मेरी बुद्धिमें जो काम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कर रहा है, अुससे आपके अगले कामका कोअी विरोध नहीं होता। अिस १३ जूनके पत्रमें आपने अेक दूसरे विषयकी चर्चा की है। आपने लिखा है कि 'आप और सब हिन्दीप्रेमी मेरे नये दृष्टिकोणका स्वागत करें और मुझे मदद दें।' मैंने मौखिक रीतिसे आपको स्पष्ट करनेका यत्न किया था, और जिस वक्तव्यकी नक़ल मैंने आपको भेजी थी, अुसमें भी मैंने स्पष्ट किया है कि मैं आपके अिस विचारसे कि प्रत्येक देशवासी हिन्दी और अुर्दू दोनों सीखे, सहमत नहीं हो पाता। मेरी बुद्धि स्वीकार नहीं करती कि आपका यह नया कार्यक्रम व्यावहारिक है। मुझे तो दिखाअी देता है कि बंगाली, गुजराती, मराठी, अुड़िया आदि बोलनेवाले अिस कार्यक्रमको स्वीकार नहीं करेंगे।

हिन्दी और अुर्दूका समन्वय हो, अिस सिद्धान्तमें पूरी तरहसे मैं आपके साथ हूँ। किन्तु यह समन्वय, जैसा मैंने आपसे बम्बअीमें निवेदन किया था और जैसा मैंने वक्तव्यमें भी लिखा है, तब ही सम्भव है, जब हिन्दी और अुर्दूके लेखक और अुनकी संस्थायें अिस प्रश्नमें श्रद्धा दिखायें। मैंने अिस प्रश्नको प्रयागमें प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सामने थोड़े दिन हुअे, रखा था। मेरे अनुरोधसे वहाँ यह निश्चय हुआ है कि अिस प्रकारके समन्वयका हिन्दीवाले स्वागत करेंगे। आवश्यकता अिस बातकी है कि अुर्दूकी संस्थायें भी अिस समन्वयके सिद्धांतको स्वीकार करें। अुर्दूके लेखक न चाहें और आप और हम समन्वय कर लें, यह असंभव है। अिस कामके करनेका क्रम यही हो सकता है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी-विद्यापीठ, अंजुमन-तरक्क़ी-अे-अुर्दू, जामिया-मिलिया तथा अिस प्रकारकी दो अेक अन्य संस्थाओंके प्रतिनिधियोंसे निजी बात की जाय, और यदि अुनके संचालकोंका रुझान समन्वयकी ओर हो, तो अुनके प्रतिनिधियोंकी अेक बैठक की जाय, और

अिस प्रश्नके पहलुओं पर विचार हो। भाषा और लिपि दोनों ही के समन्वयका प्रश्न है, क्योंकि अनुभवसे दिखाओी पड़ रहा है कि साधारण कामोंमें तो हम अेक भाषा चलाकर दो लिपिमें लुसे लिख लें, किन्तु गहरे और साहित्यिक कामोंमें अेक भाषा और दो लिपिका सिद्धान्त चलेगा नहीं। भाषाका स्थायी समन्वय तभी होगा, जब हम देशके लिअे अेक साधारण लिपिका विकास कर सकें। काम बहुत बड़ा अवश्य है, किन्तु राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे स्पष्ट ही बहुत महत्त्वका है।

मेरे सामने यह प्रश्न १९२० से रहा है, किन्तु यह देखकर कि अुसके अुठानेके लिअे जो राजनीतिक वायुमण्डल होना चाहिये, वह नहीं है, मैं अुसमें नहीं पड़ा, और केवल राष्ट्रभाषाके हिन्दी रूपकी ओर मैंने ध्यान दिया—यह समझकर कि जिसके द्वारा प्रान्तीय भाषाओंको हम अेक राष्ट्रभाषाकी ओर लगा सकेंगे। मैं स्वीकार करता हूँ कि पूर्ण काम तभी कहा जा सकता है कि जब हम अुर्दूवालोंको भी अपने साथ ले सकें। किन्तु अुस कामको व्यावहारिक न देखकर देशकी अन्य भाषा-भाषी बड़ी जनताको हिन्दीके पक्षमें करना, अेक बहुत बड़ा काम राष्ट्रीयताके अुत्थानमें कर लेना है। अस्तु, अिस दृष्टिसे मैंने काम किया है। अुर्दूके विरोधका तो मेरे सामने प्रश्न हो ही नहीं सकता। मैं तो अुर्दूवालोंको भी अुसी भाषाकी ओर खींचना चाहूँगा, जिसे मैं राष्ट्रभाषा कहूँ। और अुस खींचनेकी प्रतिक्रियामें स्वभावतः अुर्दूवालोंका मत लेकर भाषाके स्वरूप परिवर्तनमें भी बहुत दूर तक कुछ निश्चित सिद्धान्तोंके आधार पर जानेको तैयार हूँ। किन्तु जब तक वह काम नहीं होता, तब तक अिसीसे संतोष करता हूँ कि हिन्दी द्वारा राष्ट्रके बहुत बड़े अंशोंमें अेकता स्थापित हो।

आपने जिस प्रकारसे काम अुठाया है, वह अूपर मेरे निवेदन किये हुअे क्रमसे बिलकुल अलग है। मैं अुसका विरोध नहीं करता, किन्तु अुसे अपना काम नहीं बना सकता।

आपने गुजरातके लोगोंके मनमें दुविधा पैदा होनेकी वात लिखी है। यदि अैसा है, तो आप कृपया विचार करें कि अिसका कारण क्या है? मुझे तो यह दिखाअी देता है कि गुजरातके लोगों (तथा अन्य प्रान्तोंके लोगों) के हृदयोंमें दोनों लिपियोंके सीखनेका सिद्धान्त घुस नहीं रहा है। किन्तु आपका व्यक्तित्व अिस प्रकारका है कि जव आप कोअी वात कहते हैं, तो स्वभावतः अिच्छा होती है कि अुसकी पूर्ति की जाय। मेरी भी तो अैसी ही अिच्छा होती है, किन्तु वुद्धि आपके वताये मार्गका निरीक्षण करती है, और अुसे स्वीकार नहीं करती।

आपने पेरीनवहनके वारेमें लिखा है। यह सच है कि वे दोनों काम करना चाहती हैं। अुसमें तो कोअी वाधा नहीं है। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति और हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके कार्यकर्ताओंमें विरोध न हो, और वे अेक-दूसरेके कामोंको अुदारतासे देखें, अिसमें यह वात सहायक होगी कि हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा और राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिका काम अलग-अलग संस्थाओं द्वारा हो, अेक ही संस्था द्वारा न चले। अेकके सदस्य दूसरेके सदस्य हों, किन्तु अेक ही पदाधिकारी दोनों संस्थाओंके होनेसे व्यावहारिक कठिनाअियाँ और वुद्धिभेद होगा। अिसलिअे पदाधिकारी अलग-अलग हों। आपको याद दिलाता हूँ कि अिस सिद्धान्त पर आपसे सन् '४२ में वातें हुअी थीं। जव हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा वनने लगी, अुसी समय मैंने निवेदन किया था कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिका मंत्री और हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका मंत्री अेक होना अुचित नहीं। आपने अिसे स्वीकार भी किया था। और जव आपने श्रीमन्नारायणजीके लिअे हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका मंत्री वनना आवश्यक वताया, तव ही आपकी सम्मतिसे यह निश्चय हुआ था कि कोअी दूसरा व्यक्ति राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके मंत्रि-पदके लिअे भेजा जाय। और अुसके कुछ दिन वाद आनन्द कौसल्यायनजी भेजे गये थे। यही सिद्धान्त पेरीनवहनके सम्वन्धमें लागू है। जिस प्रकार श्रीमन्नारायणजी हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके मंत्री होते हुअे राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके स्तम्भ रहे हैं, अुसी प्रकार पेरीनवहन दोनों संस्थाओंमें से अेकको मंत्रिणी

हों, और दूसरीमें खुलकर काम करें। अिसमें तो कोअी कठिनता नहीं है। यही सिद्धान्त सब प्रान्तोंके सम्बन्धमें लगेगा। सम्भवतः श्रीमन्नारायणजी अुन सब स्थानोंमें, जहां राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिका काम हो रहा है, हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी शाखायें खोलनेका प्रयत्न करेंगे। अुन्होंने राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके कुछ पदाधिकारियोंसे हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका काम करनेके लिअे पत्र-व्यवहार भी किया है। आपसमें विरोध न हो, अिसके लिअे यह मार्ग अुचित है कि दोनों संस्थाओंकी शाखायें अलग-अलग हों, और अुनके मुख्य पदाधिकारी अलग हों। साथ ही, मेल और समझौता रखनेके लिअे दोनोंकी सदस्यता सबके लिअे खुली रहे। यह तो मेरी बुद्धिमें अैसा काम है, जिसका स्वागत होना चाहिये।

आपने मेरे वक्तव्यको पढ़नेकी कृपा की, और अुससे आपने यह परिणाम निकाला कि हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा बिलकुल मेरा ही काम करेगी, और मुझे अुसका सदस्य होना चाहिये। आपने यह भी लिखा कि आपने मुझे सदस्य होनेके लिअे कहा था। किन्तु मैंने यह कहकर अिनकार किया कि जब तक अब्दुल हक़ साहब अुसके सदस्य न बनेंगे, मैं भी बाहर रहूँगा। यह सच है कि मैं हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका सदस्य नहीं बना हूँ। अिस सम्बन्धमें सन् '४२ में काका कालेलकरजीने मुझसे कहा था और हालमें डॉ० ताराचन्दने। आपने बम्बअीमें पंचगनी जानेसे पहले अेक लिफ़ाफ़ेमें दो पत्र मुझे भेजे थे। अुनमें से अेकमें आपने अिस विषयमें लिखा था। किन्तु मुझे बिलकुल स्मरण नहीं है कि कभी आपने मौखिक रीतिसे मुझसे हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका सदस्य बननेके लिअे कहा हो, और मैंने अब्दुल हक़ साहबका हवाला देकर अिनकार किया हो। मुझे लगता है कि आपने अेक सुनी हुअी बातको अपने सामने हुअी बातमें, स्मृतिभ्रमसे, परिणत कर दिया है। सन् '४२ में काकाजीने जब चर्चा की, अुस समय मैंने अुनसे मौलवी अब्दुल हक़ तथा अुर्दूवालोंको लानेकी बात अवश्य कही थी।

तात्पर्य वही था जो आज भी है, अर्थात् यह कि जब तक अुर्दू और हिन्दीके लेखक हिन्दी और अुर्दूके समन्वयमें शरीक नहीं होते, तब तक यह प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा यदि अुस काममें कुछ भी सफलता प्राप्त करेगी, तो वह अवश्य मेरे धन्यवादकी पात्री होगी। आज तो हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभामें शामिल होनेमें मेरी कठिनता अिसलिअे बढ़ गअी है कि वह हिन्दी और अुर्दू दोनोंको मिलानेके अतिरिक्त हिन्दी और अुर्दू दोनों शैलियों और लिपियोंको अलग-अलग प्रत्येक देश-वासीको सिखानेकी बात करती है।

यह तो मैंने आपके पत्रकी बातोंका अुत्तर दिया। मेरा निवेदन है कि अिन बातोंसे यह परिणाम नहीं निकलता कि आप अथवा हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके अन्य सदस्य सम्मेलनसे अलग हों। सम्मेलन हृदयसे आप सबोंको अपने भीतर रखना चाहता है। आपके रहनेसे वह अपना गौरव समझता है। आप आज जो काम करना चाहते हैं, वह सम्मेलनका अपना काम नहीं है। किन्तु सम्मेलन जितना करता है, वह आपका काम है। आप अुससे अलग जो करना चाहते हैं, अुसे सम्मेलनमें रहते हुअे भी स्वतंत्रतापूर्वक कर सकते हैं।

विनीत,

पुरुषोत्तमदास टण्डन

सेवाग्राम,
१५–७–'४५

भाअी टण्डनजी,

आपका ता० ११–७–'४५ का पत्र मिला। मैंने दो बार पढ़ा। बादमें भाअी किशोरलालभाअीको दिया। वे स्वतंत्र विचारक हैं, आप जानते होंगे। अुन्होंने लिखा है, सो भी भेजता हूँ। मैं तो अितना ही कहूँगा कि जहाँ तक हो सका, मैं आपके प्रेमके अधीन रहा हूँ। अब

समय आया है कि वही प्रेम मुझे आपसे वियोग करायेगा। मैं मेरी बात नहीं समझा सका हूँ। यही पत्र आप सम्मेलनकी स्थायी समितिके सामने रखें। मेरा खयाल है कि सम्मेलनने हिन्दीकी मेरी व्याख्या अपनाओी नहीं है। अब तो मेरे विचार अिसी दिशामें आगे बढ़े हैं। राष्ट्रभाषाकी मेरी व्याख्यामें हिन्दी और अुर्दू लिपि और दोनों शैलीका ज्ञान आता है। अैसे होनेसे ही दोनोंका समन्वय होनेका है, तो हो जायगा। मुझे डर है कि मेरी यह बात सम्मेलनको चुभेगी। अिसलिअे मेरा अिस्तीफ़ा क़बूल किया जाय। हिन्दुस्तानी-प्रचारका कठिन काम करते हुअे मैं हिन्दीकी सेवा करूँगा और अुर्दूकी भी।

आपका,
मो० क० गांधी

१०, कास्थवेट रोड, अिलाहाबाद,
२–८–'४५

पूज्य बापूजी, प्रणाम।

आपका १५ जुलाअी का पत्र मिला। मैं आपकी आज्ञाके अनुसार खेदके साथ आपका पत्र स्थायी समितिके सामने रख दूंगा। मुझे तो जो निवेदन करना था, अपने पिछले दो पत्रोंमें कर चुका।

आपके पत्रके साथ भाअी किशोरलाल मशरूवालाजीका पत्र मिला है। अुनको मैं अलग अुत्तर लिख रहा हूँ। वह अिसके साथ है। कृपया अुन्हें दे दीजियेगा।

विनीत,
पुरुषोत्तमदास टण्डन

२

हिन्दुस्तानी क्यों?

[ता० २५-१-'४६ को मद्रासमें दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभाकी रजत-जयन्तीके मौक़े पर गांधीजीने नीचे लिखा भाषण किया था—]

भाअियो और वहनो,

मुझे आज जो दो ग्रन्थ दिये गये हैं, अुनमें अभी मुझको जो वताया गया है, वह सव दिया गया है। दोनों अूंची ज़वानमें लिखे गये हैं, लेकिन अेक ही लिपिमें। हमारा कार-वार दोनों लिपियोंमें होना चाहिये और हम करेंगे, क्योंकि हिन्दुस्तानीकी दो लिपियाँ हैं। अितना तो हमें करना ही चाहिये।

अव तक जो कुछ हमारा कार्य हुआ है, वह अच्छा ही हुआ है। आपसे मुझे यह कहना है कि यदि हमारे प्रचार-कार्यमें हमें यश प्राप्त हुआ है, तो अुसमें जो लोग लगे हुअे हैं, अुनका परिश्रम भी लगा हुआ है। दूसरे, आपसे यह भी कहना है कि हम सभाकी सव कारंवाअी क़ानूनन् करें, तो अुसमें हमारा समय तो वहुत जानेवाला है। मैं भी चाहता हूं कि आप लोगोंका समय वचा लूं और अपना भी वचा लूं। अिसलिअे मैंने सत्यनारायणजीसे कहा है कि सवको खड़ा करके वोलनेकी विधि छोड़ दें। अिस विधिसे हमारा कुछ वनता-विगड़ता नहीं है।

आप सव लोगोंने अभी हँस दिया, जव कि हमारे कृष्णस्वामीने अंग्रेज़ी शब्दोंको मिलाकर जान-वूझकर वातें की थीं। वे हिन्दुस्तानी जानते नहीं, अैसी वात नहीं है। लेकिन प्रैक्टिस, हेविट, आदि शब्दोंका प्रयोगकर अुन्होंने हमें यह वताया कि हमारी कैसी कंगाली है। अंग्रेज़ी शब्दोंको मिलाकर अपनी भाषामें वोलना, यह तो मैं नहीं कह सकूंगा

कि अुसको दबाना है। अंग्रेज़ी ज़बानका हम लोगों पर कितना प्रभाव पड़ा है, और ज़्यादातर दक्षिणके लोगों पर, — अैसा कह सकता हूँ — मैं अिसकी तुलना करनेके लिअे नहीं आया हूँ, तो भी मुझे कुछ अैसा डर है कि दक्षिणमें और मद्रासमें लोग अंग्रेजीमें बोलनेका नियम रखते हैं। अैसा नियम लेनेवाले या जिन्होंने लिया है, अैसे बहुतोंके नाम मैं आपके सामने पेश कर सकता हूँ। ये सब अपने आपको मजबूर कर लेते हैं। अगर मुझको किसीने मजबूरीसे गुलाम बनाया है, तो मैं कोशिश करूँगा कि अुस गुलामीसे मैं अपनेको किसी तरह छुड़ा लूँ। गुलामी, चाहे वह सोनेकी ज़ंजीरसे भी क्यों न बँधी हो, मेरे लिअे ठीक हो सकती है, तो वह मेरा पागलपन ही हो सकता है।

आप सब लोग हिन्दुस्तानी सीख लें। कोअी आदमी यहाँ अुत्तरसे, अुत्तरसे ही क्यों, आन्ध्र देशसे तमिल देशमें चला आया, तो अुससे कहना कि यहाँकी चारों ज़बानें सीखो — चार ही क्यों, दस-बारह ज़बान सीख लो। यह कोअी नअी बात नहीं है। लेकिन जितनी शक्ति आपको अुसमें खर्च करनी पड़ती है, अुसमें से कुछ तो आप हिन्दुस्तानीके लिअे खर्च करते, तो आसानीसे आप हिन्दुस्तानी सीख सकते।

हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानकी भाषा है। वह सब प्रान्तोंकी भाषा होनी चाहिये। अिसके यह माने नहीं हैं कि तमिलनाड़में तामिलका, आन्ध्र-देशमें तेलगूका, मलाबारमें मलयालमका, और कर्नाटकमें कन्नड़ीका कोअी स्थान नहीं है। प्रान्तोंकी अपनी-अपनी भाषायें हैं, और होनी चाहियें। लेकिन जब हम अेक दूसरे प्रान्तमें चले जाते हैं, तो हमारी अेक अैसी सामान्य भाषा होनी चाहिये, जो सब लोग समझ सकें। हो सकता है कि सबके सब न समझें। लेकिन अितना तो हो सकता है कि ज़्यादासे ज़्यादा समझें। यह तभी हो सकता है, जब लोग जान-बूझकर और ध्यानसे हिन्दुस्तानी समझ लें और सीख लें। आज जो मैं बताना चाहता हूँ, वह हिन्दुस्तानीमें बताना चाहता हूँ। सब लोगोंमें अेक तरहका

हिन्दुस्तानी वातावरण बन जाता है। अिसमें ज़रूर थोड़ा-सा परिश्रम होगा, लेकिन जब अेक बार वायुमंडल बन जायगा, तो अिसे सिखानेके लिअे किसीको ज़्यादा परिश्रम न करना पड़ेगा। अिस वायुमें से वह अपनी ज़रूरतकी चीज़ खींच लेगा। वह किस तरहसे खींच लेगा, वह शास्त्र क्या है, यह तो शास्त्रको समझनेवाले ही कह सकेंगे। यह आपको मैं समझा नहीं सकूँगा। लेकिन अिसमें मैं अपने अनुभवका पाठ दे सकता हूँ। हिन्दुस्तानीका जब वातावरण फैल जाता है, तब हम अुसमें से अपनी ज़रूरतकी चीज़को ले लेंगे। जैसे, कहीं संगीत चलता है—वह भी मधुर संगीत—तो आप अुसको समझ लेते हैं, अनुभव कर लेते हैं। वह मुझको सिखानेकी ज़रूरत ही क्या? अैसे ही, यदि हिन्दुस्तानीको करोड़ों आदमी समझने लग जायँ, तो देशमें अेक हिन्दुस्तानी वातावरण बन जायगा, और अुससे हिन्दुस्तानी सरल होगी और आसान होगी।

मुझको दुःख है कि आप लोग सब, मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह बराबर समझते नहीं हैं। आप मुझसे बड़ी मुहब्बत करते हैं। क्योंकि आप जानते हैं कि मैं कंगालोंके लिअे, दरिद्र लोगोंकी सेवाके लिअे, रहता हूँ। अगर मैं हिन्दुस्तानीमें बोलूँ तो भी आप अुसे शान्तिसे सुन लेते हैं। कारण मेरी आवाज़ आप लोगोंको मधुर लगती है। मैं आज तो यहाँ सीधी कामकी बात कह रहा हूँ। कामकी बात कहूँ, तो मुझे अैसा लगा था कि आप समझ सकें, अैसे लफ्ज़ोंमें, अैसे शब्दोंमें, बातें कहूँ। तब आप अुसका अर्थ अुसमें से निकाल लेंगे, और फिर अुसके अनुसार काम करने लग जायँगे।

रजत-जयन्तीकी रिपोर्ट अभी आपने सुनी। आप समझते हैं कि यहाँ २५ बरसोंमें काम कैसे हुआ। २५ बरस क्या, अब तो २७ बरस हो गये हैं। २७ बरसोंमें हमने काफ़ी अच्छा काम किया है। अुसे मैं अच्छा मानता हूँ। लेकिन मैं कहूँगा कि यह क्या है, जब मैं अिसका मुक़ाबला करोड़ोंकी जनतासे करता हूँ। यह समुद्रमें बूंदके जैसा है। अितना ही हमारा

काम हो गया। हमारा प्रयत्न यह होना चाहिये कि लोग हिन्दुस्तानी जबान सीखें, लिखें और बोला करें। शक्ति लगाकर आपको यह कार्य करना चाहिये।

मैं आपको अेक और गूर, भेद, रहस्य बताता हूँ। हिन्दुस्तानीमें प्रेम भी है। वह यह है कि जब अेक आदमीके हृदयमें हिन्दुस्तानीका प्रेम जाग्रत हो जायगा, तब वह अपनी लड़कीसे, पत्नीसे अिसी जबानमें बोलने लगेगा। अगर वह नौकर रखता है, तो अुससे और अपने मित्रोंसे भी अिसीमें बोलेगा।

लेकिन आज तो घर-घरमें अंग्रेजी जबानका प्रचार है! अंग्रेजी जबानकी मदिरा लोगोंने पी ली, और आज क्लबोंमें, घरोंमें, सब जगह वे अंग्रेजी जबान ही बोलते हैं। हिन्दुस्तानी सभ्यता अुनमें नहीं रहती। अैसी हालत और कहीं नहीं है। सिर्फ हमारे गुलाम मुल्कमें—हिन्दुस्तानमें यह हालत है। हमने अपनेको गुलामीकी जंजीरमें बांध लिया है। आपको मेहनत करके, परिश्रम करके, अपने घरोंमें भी यही भाषा बोलनी चाहिये। बाहर तो आप बोलेंगे ही। मैं चाहता हूँ कि आप सब-के-सब हिन्दुस्तानी सीख लें।

२७ बरसके परिश्रमके बाद आज अितना काम हुआ है कि हिन्दुस्तानीमें जब मैं बोलता हूँ, तो मेरी जबान, सामनेवाले जो यहाँ हैं, कुछ तो समझते हैं। हिन्दुस्तानी कोअी मुश्किल जबान नहीं है। आप दक्षिणके लोगोंमें बुद्धि है और विवेक भी। दक्षिणके लोग सारे हिन्दुस्तानमें पड़े हुअे हैं। वे वहाँ क्यों जाते हैं? वहाँके लोगोंको अुनकी दरकार है। हिन्दुस्तानको अुनकी दरकार है — अुनकी चतुराअीकी और बुद्धिकी।

विदेशी भाषा सीखनेके लिअे आपने बरसोंका समय गँवाया है। हमारी शक्तिका ठीक-ठीक अुपयोग होना चाहिये। मैं अपनी टूटी-फूटी बुद्धिसे कहूँगा कि वह कोअी आवश्यक चीज नहीं है। तो अेक-दो बरसमें

अुसे सीखनेके वदले अुसके लिअे १६ वरस क्यों लगाअूं? मैट्रिक्युलेट होनेके लिअे मैंने ७ वरस गँवाये थे, लेकिन अपनी भाषामें तो मैं अेक वरसमें मैट्रिक वन सकता हूँ। अेक वरसके कामके लिअे मैं ७–८ वरस गँवाअूं, अिससे ज्यादा वदनसीवी हमारी क्या हो सकती है? आपने अंग्रेज़ी सीखनेके लिअे जितना परिश्रम अुठाया है, अुसका अेक आना परिश्रम हिन्दुस्तानीके लिअे करेंगे, तो आप हिन्दुस्तानी वोल लेंगे, अिसमें कोअी सन्देह नहीं है।

अभी-अभी आपने सुना है कि नअी हिन्दुस्तानीके सवक़ ६ हफ्तेमें सिखानेकी व्यवस्था की गअी है। अिसमें ज्यादा कोअी परिश्रम नहीं है। जहाँ प्रेम है, वहाँ परिश्रमकी कोअी जगह नहीं रहेगी।

हिन्दुस्तानकी सेवा करनेके लिअे मैं १२५ वरस तक ज़िन्दा रहना चाहता हूँ। मैं प्रार्थनामें जैसा चाहता हूँ, वैसा वननेकी कोशिश करता हूँ, आपको भी साथ ले जाना चाहता हूँ। आज शामको आप प्रार्थनामें सुन लेंगे, गीतामें से, और दूसरेमें से, भारतकी सेवा करनेके लिअे मैं १२५ वरस तक जीना चाहता हूँ। मेरी अिच्छा तो है, और रोज़ मेरी प्रार्थना भी है। अिस तरह मैं ज़िन्दा न रहा, तो आप समझिये कि मैं स्थितप्रज्ञ नहीं हूँ।

दूसरा काम भी करनेके लिअे मैं यहाँ आया हूँ। हमारी सभाका नाम हिन्दी-प्रचार-सभा है। अव अिसका नाम हिन्दी-प्रचार-सभा नहीं रहेगा। हिन्दी शब्दके वदले अव हमें हिन्दुस्तानी शब्द लेना है। हिन्दुस्तानी सव लोगोंको समझना चाहिये। यहाँ मैं वुद्धिसे काम करनेके लिअे आ गया हूँ। श्रद्धाका यहाँ स्थान नहीं। जहाँ वुद्धिसे काम लेना है, अुस वक़्त श्रद्धाका नाम मैं लेना नहीं चाहता हूँ। अन्यथा वह पागलपन होगा। यहाँ मैं केवल वुद्धिका प्रयोग करना चाहता हूँ।

हिन्दुस्तानकी ४० करोड़की आवादी है। जव मैं अुर्दूकी वात करता हूँ, तो अैसा समझा जाता है कि यह मुसलमानोंकी भाषा है। वैसे ही

हिन्दीकी बात करता हूँ, तो वह हिन्दुओंकी भाषा है। अब यहाँ तो आपको अेक क़ौमकी भाषा सिखानेकी बात नहीं है, अेक धर्मकी भाषा सिखानेकी बात नहीं है। आपमें से कुछ जानते होंगे कि पंजाबमें सब पढ़े-लिखे हिन्दू और मुस्लिम अुर्दू जानते हैं। वे हिन्दी बोल नहीं सकते। काश्मीरमें भी अिस तरह अच्छी तरह अुर्दू लिखनेवाले हिन्दू हैं। संस्कृतमयी हिन्दी वे नहीं समझते, अुर्दू वे समझते हैं। अिसलिअे मैं आपसे कहूँगा कि आपका यह धर्म है कि आप अुर्दू लिपि भी सीखें। यह कोअी नअी बात मैं आपको नहीं कह रहा हूँ। जब मैं पहले अिन्दौरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें गया, तब जमनालालजीकी मददसे दक्षिणमें हिन्दी-प्रचारका कार्य शुरू हुआ। अिसकी जड़ वह है। अुसी वक़्त यह कहा गया था कि हिन्दी वह भाषा है, जो अुत्तरके मुसलमान और हिन्दू दोनों बोलते हैं और जिसे दोनों लिपियोंमें लिखते हैं — अुर्दू और देवनागरी लिपिके बारेमें अुस वक़्त मैंने जो कहा था, वही अब मैं दुहरा रहा हूँ। राष्ट्रभाषाका प्रचार करते हुअे हम अिस ओर चले जायँ और हमारा काम बराबर होता रहे, तो हम कह सकते हैं — तभी हमें यह कहनेका अधिकार होगा कि यह हिन्दुस्तान हमारा है।

हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषाके बारेमें जब मैंने अितनी बातें कहीं, तो प्रान्तीय भाषाओंके बारेमें भी अेक बात कहना चाहता हूँ। प्रान्तोंमें प्रान्तीय भाषा चलेगी और प्रान्तके लोगोंको अपने प्रान्तकी भाषा भी सीख लेनी चाहिये।

हम अपनेको हिन्दुस्तानी कहते हैं, हिन्दुस्तानी बनना और रहना चाहते हैं, तो आपका और मेरा कर्तव्य हो जाता है कि हम दोनों लिपियोंमें हिन्दुस्तानी भाषा सीखें।

सत्यनारायणजीने आप सबसे कहा है कि वे हिन्दुस्तानीके कामके लिअे ५ लाख रुपया अिकट्ठा करना चाहते हैं। मैं कहता हूँ कि अिसके लिअे मुझे खुशी तब होगी, जब ये ५ लाख रुपये यहाँके चार प्रान्तोंमें से निकल आयेंगे। यह कोअी बड़ी बात नहीं है। आप सबके प्रेमसे यह

कार्य हो सकता है। अण्णा आ गया, सत्यनारायण आ गया, कहो, कमल-नयन आ गया, पूछने पर पैसा दे दिया, और पीछे अिस काममें आपका दिल नहीं है, तो यह काम नहीं होगा। पैसा आपको देना है, तो सोच-समझकर देना है, और देनेके बाद अुसका हिसाब पूछना है।

३

हिन्दुस्तानी करोड़ों स्वाधीन मनुष्योंकी राष्ट्रभाषा

[ता० २७–१–'४६ को मद्रासमें दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभाकी रजत-जयन्तीके मौक़े पर गांधीजीने नीचे लिखा भाषण दिया था —]

आजका कार्य अेक पुण्यकार्य है। कअी बरसोंके बाद मैं यहाँ खास अिस समारम्भमें भाग लेनेके लिअे आया हूँ। हमारे सामने काम तो काफ़ी पड़ा है। थोड़ा-थोड़ा करके हम पूरा कर लेंगे। जब हम यहाँ अेक पुण्यकार्यके लिअे अिकट्ठा हुअे हैं, कुछ आदमी आपसमें बातें कर रहे हैं। यह तो शिष्टताका भंग हो गया। यह पुण्यकार्य है। आप सब शान्ति रखें, शान्तचित्त बनें, जिससे यहाँ जिन-जिन स्नातक-स्नातिकाओंको पदवी-दान करनेके लिअे मैं आया हूँ, अुन्हें सावधान कर समझा सकूँ कि हमारा जो कार्य है, वह अुन्हें विवेक रखकर करना है; विवेकहीन मनुष्य और पशु तो अेक-से हैं। आज जिन्हें पदवियाँ मिलेंगी, वे बादमें तो हमारा ही कार्य करेंगे। हिन्दुस्तानीका प्रचार करेंगे। अिसलिअे आप सबके पास यह विवेक-रूपी सम्पत्ति तो ज़रूर होनी चाहिये। यह सम्पत्ति अगर आपके पास न हो, तो आप यह काम कैसे कर सकेंगे?

दूसरी बात जो आज मैं कहनेवाला हूँ, अुसके बारेमें आपको सूचित करनेके लिअे मैंने सत्यनारायणजीसे कहा था। वह बात यह है कि आज आप लोग जो प्रतिज्ञा लेंगे, अुसमें हमारा राष्ट्रभाषाका नाम

अब हिन्दी न रहकर हिन्दुस्तानी रहेगा। हमारी राष्ट्रभाषा अेक लिपिमें नहीं, किन्तु दो लिपियोंमें लिखी जायगी। राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्यके लिअे द्रव्य देनेवालोंको भी यह बात पहले समझा देनी चाहिये। हमारा काम अुन्हें पसन्द है या नहीं, यह देखकर मदद दें। काम जो चलता है, वह कौड़ीसे भी चलता है। लेकिन कौड़ी भी कामके पीछे-पीछे चलती है। अगर हम अुस चीजको ठीक नहीं समझते, जिसका कि हम प्रचार करते हैं, तब तो वह सब व्यर्थ होनेवाला है। यह अेक सिद्धान्त नहीं, बल्कि अविचल अनुभव है। हमारी राष्ट्रभाषा अंग्रेजी नहीं हो सकती है। हमारे दिलसे हिन्दी शब्दके बदलेमें हिन्दुस्तानी शब्द निकलना चाहता है। और अैसे ही भारतके चालीस करोड़के दिल हो जायें, वह भी स्वाधीन भारतके, तो हमारी राष्ट्रभाषा सिवा हिन्दुस्तानीके दूसरी कैसे रह सकती है?

अिस हिन्दुस्तानीको आप अच्छी तरह समझ लें। हिन्दुस्तानी तो हिन्दू और मुसलमान दोनों बोलते हैं। लेकिन अुसमें आजकल दो प्रकार हो गये हैं। संस्कृतमयी हिन्दी और फ़ारसी-मिली मुश्किल अुर्दू। संस्कृतमयी हिन्दीमें संस्कृत शब्दोंकी बाढ़ आअी है, और फ़ारसी-मिली अुर्दूमें फ़ारसी और अरबी शब्दोंकी बाढ़ आ गअी है। अिससे हिन्दुस्तानीकी सुसम्पन्नता तो बढ़ती ही है। हिन्दी और अुर्दू नदियाँ हैं, और हिन्दुस्तानी सागर है। अिन दोनोंमें से हमें किसीसे घृणा नहीं होनी चाहिये, हमें तो दोनोंको अपना लेना है। हिन्दुस्तानीका पेट अितना बड़ा है कि वह दोनोंको अपना लेगी। अिसके फलस्वरूप वह अेक भारतीय और प्रौढ़ भाषा बन जायगी, जिसे हमारे और दुनियाके लोग सीखेंगे। हिन्दुस्तानमें करोड़ों लोगोंकी आबादी है। हिन्दुस्तानी अुन करोड़ों आदमियोंकी, और वह भी स्वाधीन मनुष्योंकी, भाषा बन जायगी, तो सचमुच वह अेक बड़ी बात होगी। आज जो पदवियाँ लेने आये हैं, वे अिस बातको किसी भाँति समझ लें और अुसके मुताबिक़ कार्य करें।

(रजत-जयन्ती-रिपोर्टसे)

४

हिन्दुस्तानी बनाम अंग्रेज़ी

हिन्दुस्तानीसे किसी हिन्दवासीको नफ़रत कैसे हो सकती है? संस्कृतमयी भाषा चाहनेवाले डरते हैं कि हिन्दीको नुक़सान पहुँचेगा। अुर्दू बोलनेवाले डरते हैं कि फ़ारसी-अरबीमयी अुर्दूको। दोनोंका डर निकम्मा है। प्रचारसे भाषा नहीं फैलती। अैसा होता तो 'वोलापुक' या 'अेस्पेरेण्टो' को जनतामें स्थान मिलता। लेकिन अैसा नहीं हुआ। चन्द लोगोंके आग्रहसे भी किसी भाषाको स्थान नहीं मिलता। लेकिन जो लोग शक्तिशाली, मेहनती, कलाशील, साहसिक, व्यापारी हैं, अुनकी भाषा चलती है और पराक्रमी बनती है। प्रयत्न करना हमारा काम है। लोग जिसे अपनावेंगे, वही अुनकी भाषा बन सकती है। गोकि अंग्रेज़ी तेजस्वी भाषा है, तो भी वह राष्ट्रभाषा तो बन ही नहीं सकती। अगर अंग्रेज़ोंका राज्य जब तक सूरज और चाँद है, तब तक रहनेवाला है, तो वह अुनके अमलोंकी भाषा ज़रूर होगी, लेकिन आम जनताकी कभी नहीं। और चूँकि अमलदार लोग राज्यकर्ता होंगे और तालीमका काम अंग्रेज़ोंके हाथमें रहेगा, अिसलिअे प्रान्तोंकी भाषा कंगाल बनती जायगी। स्वर्गीय लोकमान्यने अेक दफ़ा कहा था कि अंग्रेज़ोंने प्रान्तीय भाषाकी सेवा की है। यह बात सच्ची थी। अेक हद तक अुनको यह करना था। लेकिन प्रान्तीय भाषाओंकी तरक्क़ी करना अुनका काम नहीं था, न वे कर सकते थे। यह काम तो लोकनायकोंका और लोगोंका ही है। अगर वे अपनी मातृभाषाको भूलें — जैसे कि भूल रहे थे और आज भी कुछ भूल रहे हैं — तो लोग कंगाल रहेंगे।

अब तो हम जानते हैं कि अंग्रेज़ी राज्य अखण्डित नहीं। शायद अिसी बरसमें वह खतम हो जायगा। वे खुद यह कहते हैं, हम भी

मानते हैं। अैसी हालतमें हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीके सिवा और कोअी हो ही नहीं सकती।

आजकी हिन्दुस्तानीके दो रूप हैं—हिन्दी और अुर्दू। हिन्दी नागरी लिपिमें लिखी जाती है; अुर्दू, अुर्दू लिपिमें। अेकका सिंचन होता है संस्कृतसे, दूसरीका अरबी-फ़ारसीसे। अिसलिअे आज तो दोनोंको रहना है। दोनों मिलकर ही हिन्दुस्तानी बनेगी। आअिन्दा अुसकी क्या शकल होगी, हम नहीं जानते, न कोअी कह सकता है। जाननेकी जरूरत ही नहीं। तेअीस करोड़से अधिक लोग आज हिन्दुस्तानी बोलते हैं। जब आबादी तीस करोड़की थी, तब हिन्दुस्तानी भाषा बोलनेवालोंकी संख्या २३ करोड़ थी। अगर हम चालीस करोड़ हुअे हैं, तो दोनों रूपोंमें बोलनेवाले अधिक होने चाहियें। सो कुछ भी हो, राष्ट्रभाषा अिसीमें है। दोनों बहनोंको आपसमें झगड़ा नहीं करना है। मुक़ाबला तो अंग्रेजीसे है। अुसमें मेहनत कम नहीं। हिन्दुस्तानीकी बढ़तीसे प्रान्तोंकी भाषाको बढ़ना ही है, क्योंकि हिन्दुस्तानी लोगोंकी भाषा है, मुट्ठीभर राज्यकर्त्ताओंकी नहीं। अिस राष्ट्रभाषाके प्रचारके लिअे मैं दक्षिण गया था। वहाँ कल तक हिन्दी ही अिसका नाम रखा था। अब नाम हिन्दुस्तानी हुआ है। थोड़े ही महीनोंमें बहुतसे लड़के-लड़कियोंने दोनों लिपियाँ सीख ली हैं। अुनको मैंने प्रमाणपत्र भी दिये। वहाँ भी खटका तो लिपिका नहीं, लेकिन अंग्रेजीका है। अिसमें राज्यकर्त्ताओंका दोष भी नहीं। हम ही अंग्रेजीका मोह नहीं छोड़ते। यह मोह हिन्दुस्तानी-नगरमें भी था। अब आशा रखी जाती है कि यह मिटेगा। कैसा भी हो, दक्षिणके प्रान्तोंमें काम जरूर हुआ है, लेकिन जिस जगह हमें पहुँचना है, अुसे देखते हुअे तो अभी और बहुत-कुछ करना होगा।

(हरिजनसेवक, १०–२–’४६)

५

पाठकोंसे

'हरिजन' फिर निकल रहा है। अितने सालोंसे कअी विषयों पर मैं अपने विचार 'हरिजन' की मारफत प्रकट करता था। सन् १९४२ में यह सोता सूख गया था, अब फिर बहने लगेगा। सच पूछा जाय तो सभी 'हरिजन' — हिन्दुस्तानी, गुजराती और अंग्रेज़ी—मेरे साप्ताहिक पत्र ही हैं। लेकिन अगर कहूँ कि गुजराती खास तौर पर अैसा है, तो वह ग़लत न होगा। चूँकि वह मेरी मातृभाषा है, अिसलिअे अुसमें मुझे खत लिखनेवालोंकी संख्या बहुत ज़्यादा है, और मैं जवाब ज़्यादा आसानीसे और छूटसे दे सकता हूँ। अिसलिअे मैं गुजराती ही लिखूँ और बाक़ी सब तरजुमा होकर ही छपे, तो मुझको कम मेहनत पड़े और मैं गुजराती 'हरिजन' को ज़्यादा सजा सकूँ।

लेकिन पकड़ा हुआ रास्ता झट छूट नहीं पाता, और मोह भी जाने-अनजाने अपना काम करता है। मुझे अंग्रेज़ी आती है। मेरी अंग्रेज़ी भाषामें कुछ आकर्षण है, यह मैं समझ गया हूँ। लेकिन वह क्या है, सो मैं नहीं जानता। यही बात हिन्दुस्तानीके बारेमें भी है, मगर कुछ कम अंशोंमें। बरसों पहले ब्रजकिशोर बाबूने मुझको अिसका अनुभव कराया था। अुस वक़्त मैं प्रान्तीय हिन्दी-सम्मेलनका सभापति बनाया गया था। तब मेरी हिन्दी आजके मुक़ाबले ज़्यादा कच्ची थी। मैंने अुनको अपना भाषण सुधारनेके लिअे दिया, लेकिन अुन्होंने सुधारनेसे अिनकार किया। अिसलिअे जैसा था, अुसीसे काम चला। पाठक मेरी व्याकरण रहित और टूटी-फूटी हिन्दीको निबाह लेते हैं। अिस तरह बाबाजीके दोनों नहीं, तीनों बिगड़ते हैं; फिर भी फ़िलहाल तो जैसा चल रहा

था, वैसा ही चलने देना चाहता हूँ। आखिर जहाज़ कहाँ पहुँचकर लंगर डालेगा, सो आज कहा नहीं जा सकता। अिसलिअे अगर गुजरातीमें मेरे अंग्रेजी लेखोंका तरजुमा ही ज्यादा आये, तो गुजराती पाठक अुसे दर-गुज़र करें। अितना आश्वासन दे सकता हूँ कि जो तरजुमा छपेगा, वह मेरी नज़रोंसे गुजरा होगा, अिसलिअे ज़्यादातर अनर्थ नहीं होगा। 'ज़्यादातर' कहना पड़ता है, क्योंकि जल्दीकी वजहसे मुमकिन है, मैं तरजुमा देख न सकूं, और अगर अहमदाबाद ही में हुआ, तब तो देख ही न सकूंगा। जो भी हो, मैं माने लेता हूँ कि पाठक पहलेकी तरह अिस बार भी निबाह लेंगे।

(हरिजनसेवक, १०-२-'४६)

६

अुफ़! यह हमारी अंग्रेजी!!!

कितना अच्छा होता, अगर हमारे अखबार हमारी अपनी ज़बानोंमें ही निकलते होते! अुस हालतमें हमारी हालत अुन अन्धोंकी-सी न होती, जिनमें से अेक हाथीकी पूंछको हाथी समझता था, दूसरा अुसके दाँतोंको, तीसरा सूंड़को और चौथा पैरको! सबको अपनी अक़्लमन्दीका ग़रूर था, मगर असलमें सभी ग़लती पर थे। अिसी तरह, मैंने भी अपने ग़रूरमें कहा था और फिर कहता हूँ कि राजाजीका विरोध अेक गुट्ट तक ही सीमित था और है। मेरे अेक बुजुर्ग दोस्तका और दूसरोंका कहना है कि विरोधको गुट्टका नाम देकर मैंने बड़ी ग़लती की है। मैंने जिस विशेषणका प्रयोग किया है, वह कांग्रेस-संस्थाके लिअे नहीं था, न हो सकता है; फिर वह संस्था प्रान्तकी हो या अखिल भारतीय हो या और कोअी हो, क्योंकि कांग्रेस तो राजाकी तरहं कोअी ग़लती कर ही

नहीं सकती। ग़लती तो कोअी गुट्ट ही आम तौर पर करता है। लेकिन अिसमें शक नहीं कि मैं और मेरे टीकाकार दोनों सही हैं; अलबत्ता, अपने-अपने ढंगसे, और दोनों ग़लत भी हैं। पराअी ज़बानके अेक शब्दका अिस्तेमाल करने पर यह अितना बड़ा झमेला खड़ा हो गया है! अगर मैंने राष्ट्रभाषामें या मेरी अपनी गुजरातीमें लिखा होता, तो हम अेक शब्दके प्रयोग पर अुलझे न होते। राजाजीके अिस किस्सेको मैं यह कहकर खतम किया चाहता हूँ कि अगर मैंने गुट्ट या 'क्लीक' शब्दका ग़लत अिस्तेमाल किया है या राजाजीको ग़लत समझा है, तो अिसमें किसीको मेरा अनुसरण करनेकी ज़रूरत नहीं। मेरे हाथमें कोअी क़ानूनी हुकूमत नहीं। अगर मैंने ग़लत समझा या कहा है, तो अिसमें नुक़सान मेरा अपना ही है, क्योंकि अुससे मेरा जो नैतिक बल है, अुसे मैं बहुत हद तक या कुछ हद तक खो बैठूँगा।

लेकिन अभी, अिस वक़्त तो, मुझे अुन रिपोर्टरसे झगड़ना है, जिन्होंने गोसेवा-संघकी सभामें दी गयी मेरी तक़रीर (भाषण)का अंग्रेज़ीमें तरजुमा करनेकी कोशिश करते हुअे मुझसे, जो कुछ मैंने कहा और कहना चाहा था, अुससे बिलकुल अुलटी बात कहलवा दी है। जो बात सरस, कोमल, सराहनाके रूपमें कही गअी थी, अुसे अेक कठोर कटाक्षका रूप दे दिया गया है। मैंने कहा था कि स्वर्गीय जमनालालजीकी विधवा धर्मपत्नी श्री जानकीबाअी अपने स्वर्गीय पतिकी अुसी तरह पहली और सच्ची अुत्तरा-धिकारिणी हैं, जिस तरह स्वर्गीय रमाबाअी अपने स्व० पति न्यायमूर्ति रानडेकी थीं। अिसमें 'अगर-मगर' का कोअी सवाल ही न था। श्री जानकी-बाअीके बाद अुनके बच्चोंका नम्बर आता है। ये अपने कर्तव्यमें चूक सकते हैं, हम नहीं। क्योंकि मृतात्माकी स्मृतिका सम्मान करनेके लिअे हममें से जो वहाँ अिकट्ठा हुअे थे, वे भी स्व० जमनालालजीके वारिस ही थे, बशर्ते कि हम सच्चे हों। हम अपनी अिच्छासे अुनके वारिस हैं, किसी रिश्ते-दारीकी वजहसे नहीं। मुझे विश्वास है कि अपनी टूटी-फूटी हिन्दुस्तानीमें

मैंने जो प्रशंसा कोमल भावसे की थी, अुसको समझनेमें श्री जानकीवहनने, अुनके बच्चोंने, अिस काममें लगे हुअे भाअियोंने और अुन सब मित्रोंने, जो अुस दिन वहाँ बने पण्डालमें मौजूद थे, कोअी भूल न की होगी। अूँची और समान हेतुवाली सेवाके काममें सभी कोअी वारिस हैं, क्योंकि सेवाकी बपौतीका तो पार नहीं। मुझे अपने अिस सन्देश पर गर्व था। मगर पराअी भाषामें भेजे जानेके कारण अिसका सारा मतलब ही खत्म हो गया! अगर अिसकी रिपोर्ट हिन्दुस्तानीमें ली और भेजी जाती, तो यह सीधा पाठकोंके दिल तक पहुँचा होता।

मैं अुस रिपोर्टको पढ़ नहीं पाया हूँ। मैं चाहता हूँ कि अुस सभामें दूसरी जो दो बातें मैंने कही थीं, अुन्हें यहाँ थोड़ेमें कहकर अुस रिपोर्टको पूरा कर दूँ। मवेशियोंकी हिफ़ाजतका सवाल हिन्दुस्तानका अेक बड़ा सवाल है। महज भाषण करनेसे या पैसेसे यह हल नहीं हो सकता। यह तो तभी हल हो सकता है, कि जब गो-सेवा-संघके पास बहुतसे अैसे पशु-विशारद हों, जो अिस मसलेको समझते हों और अिसे हल करनेमें लगे हों, और व्यापारी-समाज हो कि जो अिस कामको नाम कमाने या धन कमानेका जरिया न बनाकर शुद्ध सेवाभावसे करे। अगर ये लोग अपनी सिद्ध बुद्धिका अुपयोग पशुओंकी रक्षा करनेमें करें, तो ये हिन्दुस्तानकी बहुत बड़ी सेवा कर सकते हैं। अिस प्रश्नकी विशालतासे अुन्हें घबराना न चाहिये। हरअेक आदमी सोचे कि वह क्या कर सकता है, और जो कुछ करे पूरी तरह करे, और अिसका खयाल न रखे कि अुसके पड़ोसी या दूसरे लोग कुछ करते हैं या नहीं। अिसलिअे गो-सेवा-संघके केन्द्रीय दफ़्तरका यह काम है कि वह अपनी ताक़त ज्यादा दूध पैदा करनेमें और बबकि हर बाशिन्देको सस्ता दूध पहुँचानेमें लगा दे। आखिर वे देखेंगे कि अुन्होंने हिन्दुस्तानके मवेशियोंके सवालको हल कर लिया है।

अन्तमें मैंने अुनसे कहा कि श्री अरुणा आसफअलीने जो अुलाहना अुनको नेक खयालके साथ दिया है, अुसे वे ध्यानमें रखें। अुनका कहना था कि कहीं अपने अुपकारी अिन चौपायोंका विचार करनेमें हम अिनके वड़े भाअी, हिन्दुस्तानके दो पैरवालोंका, यानी चालीस करोड़ हिन्दुस्तानियोंका खयाल न भूल जायँ, जिनके विना ये चौपाये अेक दिन भी जी नहीं सकते। अिसलिअे हरअेक भले आदमीका अपने तअीं और देशके तअीं यह फ़र्ज़ है कि वह सिर्फ़ अुतना ही खाये, जितना तन्दुरुस्तीके साथ जीनेके लिअे ज़रूरी है। मौज-शौक़के लिअे कोअी अेक कौर भी ज़्यादा न खाये। हर समझदार औरत, मर्द और वच्चेको चाहिये कि वह देशके लिअे कुछ-न-कुछ अुगाये, जहाँ पहले अेक दाना अुगता हो, वहाँ दो अुगानेकी कोशिश करे। अगर सव लोगोंने सोच-समझकर, अीमानदारीसे और मिल-जुलकर हिम्मतके साथ काम किया, तो वे देखेंगे कि वे आनेवाली मुसीवतका विना किसी हाय-हायके, वेफ़िकरीके साथ और वाअिज्ज़त सामना कर सकते हैं।

(हरिजनसेवक, २४–२–'४६)

७

हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा, वर्धा

अिस सभाकी बैठक १५ और १६ फरवरीको हुअी थी। सभाकी कार्रवाअीका आवश्यक हिस्सा नीचे दिया है:

श्री काका कालेलकर, श्री सत्यनारायण, डॉक्टर ताराचन्द, श्री मगनभाअी देसाअी और श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल (मंत्री) की अेक समिति मुक़र्रर की जाय, जो सभाके विधानमें ज़रूरी सुधार सुझाये।

नीचे लिखे सहायक सभासदोंको परिपत्र-चुनावके ज़रिये नियम ५ के मुताबिक़ सभाका सभासद बनाया जा सकता है:

डॉ० जाफ़र हसन, डॉ० सैयद महमूद, श्री अे० अेम० ख्वाजा, श्री जुगतराम दवे, श्री श्रीनार्यसिंह, श्री हरिभाअू अुपाध्याय, श्री प्यारेलाल, डॉ० सुशीला नय्यर, श्री यशोधरा दासप्पा, श्री प्रेमा कण्टक, श्री देवप्रकाश नय्यर, श्री श्रीपाद जोशी।

हिन्दुस्तानीकी पहली तीन परीक्षायें, जहाँ तक संभव हो, वर्धासे न चलाकर अुनकी ज़िम्मेदारी प्रान्तों पर डाली जाय। चौथी या आख़िरी परीक्षा वर्धासे चलाअी जाय।

अिस आखिरी परीक्षाको चलानेकी और बाक़ीकी परीक्षाओंकी देखरेख करनेकी जिम्मेवारी नीचे लिखे सदस्योंकी समिति पर रहेगी:

श्री काका कालेलकर, श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल और श्री अमृतलाल ठा० नाणावटी (मंत्री)।

चौथी परीक्षाका पाठ्यक्रम कुछ अिस ढंगका रहेगा —

परचा १. हिन्दुस्तानी गद्य
" २. हिन्दुस्तानी पद्य

परचा ३. भाषा और व्याकरण
" ४. निबन्ध और अनुवाद
" ५. ज़बानी अिम्तहान

अिस परीक्षाके लिअे किताबोंका चुनाव करनेका काम श्री काका कालेलकर और श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल करेंगे, जिसमें वे नीचे लिखे सदस्योंसे मदद लेंगे:

डॉ० ताराचन्द, श्री सुदर्शन, श्री सत्यनारायण और रैहाना तैयबजी।

किताबोंका आखिरी फ़ैसला कार्य-समिति करेगी।

'हिन्दुस्तानी-प्रचारक-मदरसा' नामकी अेक संस्था वर्धामें खोली जाय। यह मदरसा जुलाअीसे अप्रैल तक चलेगा।

अिसमें सारे हिन्दुस्तानके विद्यार्थियोंमें से चुनिन्दा विद्यार्थियोंको भरती किया जायगा।

अिस मदरसेको चलानेके लिअे नीचे लिखी समिति मुकर्रर की जाती है:

श्री काका कालेलकर (अध्यक्ष), श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल (मंत्री), श्री अमृतलाल ठा० नाणावटी (सदस्य), श्री श्री० ना० बनहट्टी (सदस्य), श्री रैहाना तैयबजी (सदस्य)।

अिस मदरसेमें नीचे लिखे मज़मून पढ़ाये जायँगे:

परचा १. हिन्दुस्तानी अदब—हिन्दुस्तानीकी तारीख और हिन्दुस्तानीका अूँचा ज्ञान।
" २. हिन्दुस्तानी भाषा—भाषाका जनम और विकास, हिन्दुस्तानीकी बनावट और क़ायदे।
" ३. हिन्दी और अुर्दूका ज्ञान—ज़बान और अदब।
" ४. पढ़ानेका तरीक़ा।
" ५. हिन्दुस्तानकी सभ्यताकी तारीख।

परचा ६. हिन्दुस्तानके क़ौमी सवाल।

" ७. अनुवाद-कला।

" ८. हिन्दुस्तानकी भाषायें और अुनके साहित्यकी मामूली जानकारी।

अिन मज़मूनोंकी पढ़ाअीके लिअे किताबोंका चुनाव करनेका काम श्री काका कालेलकर और श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल करेंगे। अिस काममें वे नीचे लिखे मेम्बरोंसे मदद लेंगे:

श्री सत्यनारायण, डॉ ताराचन्द, श्री सुदर्शन और श्री रैहाना तैयबजी।

किताबोंका आखिरी फ़ैसला कार्य-समिति करेगी।

अिस मदरसेकी पढ़ाअी पूरी करके अिम्तहानमें कामयाब होनेवालोंको 'हिन्दुस्तानी-प्रचारक' की सनद (अुपाधि) दी जायगी।

श्री पेरीनबहन कैप्टन, मंत्री, हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा, बम्बअीने यह दरख्वास्त पेश की कि हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा बम्बअीके कार्यका क्षेत्र सिर्फ़ बम्बअी शहर तक ही सीमित न रखा जाय और बम्बअीके अुपनगरों और जी० आअी० पी० लाअिन पर कल्याण तक तथा बी० बी० अेण्ड सी० आअी० लाअिन पर विरार तकके लोकल ट्रेनोंके प्रदेशोंमें अुसे कार्य करनेकी अिजाज़त दी जाय।

तय हुआ कि श्री पेरीनबहनकी दरख्वास्तको फ़िलहाल मंज़ूर किया जाय।

(हरिजनसेवक, ३-३-'४६)

८

हिन्दुस्तानी

मुझे अिसमें शक नहीं कि हिन्दुस्तानी यानी हिन्दी-अुर्दूका सही मिलाप ही राष्ट्रभाषा है। लेकिन मैंने अपनी वोलीमें अुसे अव तक सावित नहीं किया। अिसलिअे 'हरिजनसेवक' की भाषा पर कोअी गुस्सा न करें। शायद यह अच्छा ही हुआ कि राष्ट्रभाषाके कामको अेक कच्चा आदमी हाथमें ले वैठा है। आखिर लाखों आदमी तो कच्चे ही होंगे। अुनके जतनसे ही दोनों भाषाके जाननेवाले हिन्दी और अुर्दूका अच्छा और आसान मेल पैदा करेंगे।

'हरिजनसेवक' के पढ़नेवाले अगर भाषाकी भूलें वताते रहेंगे, तो अुसकी भाषाको ठीक करने और ठीक रखनेमें मदद मिलेगी। यह कोशिश ज़रूर रहेगी कि 'हरिजनसेवक' की भाषा कानोंको मीठी लगे और सव हिन्दुस्तानी अुसे आसानीसे समझ सकें। जिस ज़वानको सव लोग न समझ सकें, वह निकम्मी मानी जाय। जो भाषा काम नहीं दे सकती, वह वनावटी है। अैसी ज़वान वनानेकी सव कोशिशें वेकार सावित हुअी हैं।

(हरिजनसेवक, ७-४-'४६)

९

गुजरात हिन्दुस्तानी-प्रचार-समिति

जब सब जेलमें थे तब भी गुजरातमें हिन्दुस्तानीके प्रचारका काम काकासाहब कालेलकरके पट्टशिष्य श्री अमृतलाल नाणावटी चलाते रहे, यह अुनके और गुजरातके लिअे शोभास्पद है। हिन्दुस्तानी भाषाके प्रचारका काम हिन्दी प्रचारका विरोधी नहीं, बल्कि अुसकी पूर्ति करनेवाला है। निरी हिन्दी, यानी नागरी लिपिमें लिखी जानेवाली संस्कृतमयी भाषा राष्ट्रभाषा नहीं, न अुर्दू-लिपिमें लिखी जानेवाली फ़ारसीमयी भाषा राष्ट्रभाषा है। अिसके बारेमें काफ़ी लिख चुका हूँ, अिसलिअे यहाँ दलीलें नहीं दूँगा। यहाँ तो सिर्फ़ यही कहूँगा कि हिन्दी जाननेवालेको अुर्दू सीखनी चाहिये और अुर्दू जाननेवालेको हिन्दी। तभी हम सच्ची राष्ट्रभाषा पैदा कर सकेंगे। अिसलिअे गुजरातने जो अेक क़दम आगे बढ़ाया है, अुसका ज़िक्रभर करनेको यह लिखा है। यहाँ जिस क़दमका मैंने ज़िक्र किया है, अुसकी ज़्यादा जानकारी नीचेके दो मज़मूनोंसे होगी।

मो० क० गांधी

१

वर्धा, ता० १८–२–'४६

श्री० महामात्र,

गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद।

भाअीश्री,

पूज्य महात्माजीकी प्रेरणासे हम दो जने पिछले दो सालोंसे गुजरातमें 'गुजरात-राष्ट्रभाषा-प्रचार' के नामसे राष्ट्रभाषाका प्रचार करते रहे हैं। साथ ही, अिस प्रचारके सिलसिलेमें विद्यार्थियोंकी योग्यताकी परीक्षा

लेनेके अुद्देश्यसे हमने वर्धाकी राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी परीक्षाओंकी अेजन्सी भी चलाअी थी। महात्माजीकी प्रेरणाके अनुसार अिन परीक्षाओंको चलानेमें भी हमारा हाथ था ही। आगे चलकर जब यह महसूस किया गया कि अिन परीक्षाओंकी नीति प्रयागके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी नीतिके साथ संकुचित बनती जा रही है, तो हमने अिन संस्थाओंसे 'गुजरात-राष्ट्रभाषा-प्रचार' का सम्बन्ध तोड़ लिया। जेलसे बाहर आनेके बाद पूज्य गांधीजीको भी सम्मेलनके कर्त्ता-धर्त्ता श्री टण्डनजीके साथके लम्बे पत्र-व्यवहारके बाद अुस संस्थासे और अुसकी परीक्षाओंसे अपना सम्बन्ध तोड़ लेना पड़ा।

पूज्य गांधीजीने राष्ट्रभाषाको जो नअी व्यापक दृष्टि दी है, अुसके अनुसार हिन्दुस्तानीके नामसे राष्ट्रभाषाका प्रचार करने और लाज़िमी तौरसे नागरी और अुर्दू लिपिमें अुसे चलानेके लिअे पिछले ढाअी सालसे हम अिस तरहकी परीक्षायें भी लेते हैं। परिस्थितिके अनुकूल होते ही 'गुजरात-राष्ट्रभाषा-प्रचार' संस्थाको गांधीजीकी नयी संस्था हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके साथ जोड़ दिया गया है।

अिस सब कामको चलानेमें गूजरात विद्यापीठ और नवजीवन संस्थाका सहयोग शुरूसे ही रहा है। यहाँ हम अिसका कृतज्ञतापूर्वक अुल्लेख करते हैं।

गुजरातकी जनताको राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीके प्रचारका महत्त्व अधिकाधिक ध्यानमें आता जाता है और अिस कामका विस्तार बढ़ रहा है। अैसी हालतमें हमें यह ज़रूरी मालूम होता है कि गूजरात विद्यापीठके समान राष्ट्र-निर्माणके रचनात्मक कामका बीड़ा अुठानेवाली प्रौढ़ संस्था अिस कामको अपने ही हाथोंमें ले ले। अिसलिअे हमारी प्रार्थना है कि हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके साथ सम्बद्ध रहकर चलनेवाले अिस सारे कामको गूजरात विद्यापीठ अपने हाथमें ले और अिसे विधिवत् अपनाये।

गुजरात और कच्छ-काठियावाड़में यह जो काम चल रहा है, अुसमें हमारी दिलचस्पी कम नहीं हुअी है। हम अपनी शक्तिके अनुसार समूचे

हिन्दुस्तानमें राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीके प्रचारका काम करते ही हैं। अिसलिअे गुजरातकी अपनी अिस संस्थाको विद्यापीठके सुपुर्द कर देनेके बाद भी अिस कामके सिलसिलेमें विद्यापीठ हमारी सेवाको जहाँ-जहाँ जरूरी समझेगा, वहाँ-वहाँ हम अपनी सेवा कर्तव्यभावसे अुसे देते रहेंगे।

कृपाकर हमारे अिस पत्रको गूजरात-विद्यापीठ-मण्डलके सामने पेश कीजियेगा और हमें मण्डलके निर्णयकी सूचना भेजियेगा।

सेवक,
काका कालेलकर
अमृतलाल नाणावटी

श्री महामात्रका पत्र

[विद्यापीठ-मण्डल-परिपत्र ४/४५–४६]

अिसके साथ श्री काकासाहब कालेलकर और श्री अमृतलाल नाणावटीका पत्र भेजा जा रहा है। आपको मालूम है कि मण्डलकी पिछली बैठकमें हिन्दुस्तानी-प्रचारके कामको विद्यापीठकी देखरेखमें चलानेका ठहराव मुल्तवी किया गया था। अुसके बाद जब वर्धामें हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी बैठक हुअी, तो वहाँ पूज्य गांधीजीकी सम्मतिसे यह विचार किया गया कि गुजरात-राष्ट्रभाषा-प्रचार संस्था जो काम कर रही है, अुसे वह विद्यापीठको सौंप दे। साथमें नत्थी किया गया पत्र अुसी सिलसिलेमें और अुसीके अनुसार है।

अिस कामको अपने हाथमें लेनेकी बात हमने सोची ही है। अुसके मुताबिक़ मेरी यह सिफ़ारिश है कि अूपरके पत्रके सिलसिलेमें हमें अिसके साथ नत्थी किया गया प्रस्ताव पास कर लेना चाहिये। आप अिस बारेमें अपनी राय कोअी आठ दिनके अन्दर मुझे भेज दीजियेगा।

ता० १४–३–'४६

विद्यापीठका ठहराव

१. श्री महामात्र द्वारा भेजा गया विद्यापीठ-मण्डल-परिपत्र नं० ४/४५-४६ और अुसके साथ नत्थी किया गया श्री गुजरात-राष्ट्रभाषा-प्रचार संस्थाके अध्यक्ष और संचालक (क्रमशः) श्री काकासाहब कालेलकर और श्री अमृतलाल नाणावटी द्वारा महामात्रको लिखा गया पत्र, दोनों देखे। अिस सम्बन्धमें यह तय किया जाता है कि महामात्रने अपने परिपत्रमें जो सिफ़ारिश की है, वह मंजूर की जाय और विद्यापीठ अुक्त संस्थाके काम-काजको नये सालसे (यानी जून, १९४६ से) सँभाल ले।

२. श्री महामात्रको यह अधिकार दिया जाता है कि वे अिस कामसे सम्बन्ध रखनेवाले दफ़्तरी कागज़ात और हिसाब-किताब वग़ैराको श्री अमृतलाल नाणावटीसे समझ लें और अुन्हें विद्यापीठ-कार्यालयकी देख-रेखमें ले लें।

३. पिछले छः वर्षोंसे श्री काकासाहब और श्री नाणावटीने राष्ट्रभाषाका काम करके गुजरातमें राष्ट्रीय शिक्षाकी जो सेवा की है, अुसकी नोंध ली जाती है, और अुसके लिअे यह मण्डल अुन्हें मुबारकबाद देता है। साथ ही, हर्ष और आभारके साथ यह बात नोट की जाती है कि आगे भी वे अिस कामके सिलसिलेमें विद्यापीठको अपनी मदद देते रहेंगे।

४. अिस कामके लिअे नीचे लिखी समिति नियुक्त की जाती है। यह समिति श्री गुजरात हिन्दुस्तानी-प्रचार-समिति कही जायगी।

१. कुलनायक सरदार श्री वल्लभभाअी पटेल, अध्यक्ष
२. श्री मोरारजी देसाअी
३. ,, जुगतराम दवे
४. ,, बबलभाअी महेता
५. ,, विट्ठलदास कोठारी
६. ,, अमृतलाल नाणावटी
७. ,, गिरिराजजी

८. श्री नानाभाओी भट्ट
९. ,, करीमभाओी वोरा
१०. ,, जीवणजी देसाओी
११. ,, महामात्र श्री मगनभाओी देसाओी, मंत्री

५. विद्यापीठकी दूसरी समितियोंकी तरह अिस समितिकी नियुक्ति भी वार्षिक मानी जाय।

६. अिस समितिको अधिकार होगा कि यह अपना काम चलानेके लिअे परीक्षा-समिति-जैसी अुप-समितियोंको नियुक्त करे।

७. गुजरात-काठियावाड़के ज़िलों और शहरोंमें मुक़ामी प्रचारके कामका प्रवन्ध किस तरह करना मुनासिव और माफ़िक होगा, सो भी यह समिति खुद सोच ले।

८. मण्डल यह विनती करता है कि जो भाओी-वहन आज गुजरातमें राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीका काम कर रहे हैं, वे सव अिस कामके विकास और विस्तारमें विद्यापीठकी मदद करें। साथ ही, यह आशा की जाती है कि गुजरातके राष्ट्रप्रेमी भाओी-वहन और स्कूलों व कॉलेजोंके शिक्षक-शिक्षिका और विद्यार्थी-मण्डल भी अिस कामको अपना लेंगे।

२

आभार

पूज्य गांधीजीकी सूचनाके अनुसार और नवजीवन-संस्थाकी मददसे सन् १९३९ के अक्तूवर महीनेमें हमने 'गुजरात-राष्ट्रभाषा-प्रचार' का काम शुरू किया, और अिस संस्थाके जरिये हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी वर्धा-समितिकी परीक्षायें गुजरातमें चलाओीं। सन् १९४२ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके साथ मतभेद होने पर गांधीजीने हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा, वर्धाकी स्थापना की। अिस सभाकी राष्ट्रभाषा-सम्वन्धी नीति पूरी तरह राष्ट्रीय है और अिसलिअे गुजरातमें भी अुसीके अनुसार काम चलाना चाहिये,

अैसा निर्णय करके गुजरात-राष्ट्रभाषा-प्रचार संस्थाने अपनी दो लिपिवाली तीन परीक्षायें शुरू कीं। अिसके परिणाम-स्वरूप हमें सम्मेलनवाली वर्धा-समितिकी परीक्षाओंको छोड़ देना पड़ा। पूज्य गांधीजीके जेलसे छूटने पर हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा, वर्धाका काम बाक़ायदा शुरू हुआ और सभाने गुजरातकी परीक्षाओंको और परीक्षा लेनेवाली हमारी संस्थाको अपनी मंजूरी दी। आज तकके अिस सारे अितिहासको गुजरातके राष्ट्रभाषा-प्रेमी जानते ही हैं।

शुरूसे ही हमारा आग्रह था कि राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी सभी काम गूजरात विद्यापीठके जैसी प्रौढ़ राष्ट्रीय संस्था चलावे; लेकिन किसी-न-किसी कारण परिस्थिति अनुकूल न होनेसे अैसा हो नहीं पाया।

अब जब परिस्थितियाँ अनुकूल हुअीं, तो हमने अपना आग्रह श्री गूजरात विद्यापीठ पर प्रकट किया। हमें यह लिखते हुअे सन्तोष होता है कि गूजरात विद्यापीठने हमारी बातको मंजूर करके राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीके प्रचारकी सारी व्यवस्थाको अपने हाथमें ले लेनेका निश्चय किया है।

अिन साढ़े छः बरसोंमें गुजरातमें हमने जो काम किया, अुसे चलानेके लिअे ज़रूरी पैसोंकी मदद श्री नवजीवन संस्थाने की। अिसके सिवा, तीन साल तक वर्धा-समितिकी परीक्षा चलानेके लिअे अुस समितिने नियमानुसार सहायता दी थी, और जिस वक़्त देश नाज़ुक हालतमें से गुज़र रहा था, अुस वक़्त गुजरातकी दो बहनोंने क़ीमती मदद पहुँचाअी थी।

गुजरात-राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्बन्धी अपनी ज़िम्मेदारीको सन्तोषजनक रीतिसे छोड़ते समय हम हृदयपूर्वक अुन सब संस्थाओंका, गुजरातके राष्ट्रभाषा-प्रेमी नर-नारियोंका और प्रचारक भाअी-बहनोंका आभार मानते हैं, जिन्होंने हमें पैसेकी और दूसरी मदद की और जब गांधीजीने राष्ट्र-

भाषाकी नीतिके सिलसिलेमें अेक क़दम आगे बढ़ाया, तो अुस नीतिके प्रति श्रद्धा रखकर निष्ठाके साथ हमारी सहायता करते हुअे हमारे साथ खड़े रहे।

आजकी और आगेकी परिस्थितिका खयाल रखकर स्वराज्यका वातावरण पैदा करनेकी कोशिशमें लगे हुअे गुजरातके तमाम भाअी-बहन अबसे आगे गूजरात विद्यापीठकी ओरसे चलनेवाले हिन्दुस्तानी-प्रचारके काममें दिन-दिन ज्यादा दिलचस्पी लें, यही प्रार्थना है। विद्यापीठको जब जरूरत होगी, तब हमारी तत्पर सेवा अुसके हाथमें ही रहेगी।

काका कालेलकर

(हरिजनसेवक, १४–४–'४६)

१०

'रोमन अुर्दू'

अगर रोमन अुर्दू है, तो रोमन हिन्दी क्यों नहीं? दूसरा क़दम हिन्दुस्तानकी सारी भाषाओंकी वर्णमालाओंको रोमन बना देना होगा। जूलुके लिअे, जिसकी अपनी कोअी वर्णमाला नहीं थी, अैसा किया गया है। हिन्दुस्तानमें यह कोशिश करना दुनियाभरकी जबानोंको बनावटी बना देनेकी कोशिशके बराबर होगा। अिसमें जल्दी सफलता नहीं मिल सकती। हिन्दुस्तानकी तमाम मशहूर लिपियोंकी जगह रोमन लिपिके हामियोंका अेक दल जरूर बन जायगा, लेकिन जनतामें यह आन्दोलन नहीं फैल सकता, न फैलना ही चाहिये। करोड़ों आदमियोंको अितना आलसी बनानेकी जरूरत नहीं है कि वे अपनी-अपनी लिपि भी न सीखें। हिन्दुस्तानमें चलनेवाली वर्णमालाओंको बदल देनेके लिअे नहीं, बल्कि अिस आशासे कि किसी समय करोड़ों आदमी नागरी अक्षरोंमें हिन्दुस्तानी जबानोंको सीख सकें, साथ ही साथ नागरी पढ़ानेकी भी

सराहनीय कोशिश की जा रही है। और, जैसा कि ज़ाहिर है, अुर्दू अक्षरोंकी जगह नागरी अक्षर नहीं रखे जा सकते, अिसलिअे अुन देशभक्तोंको, जो अपने देश-प्रेमके सामने अुर्दू वर्णमालाको सीखना बोझ नहीं समझते, अुसे सीख लेना चाहिये। ये सब कोशिशें मुझे अच्छी लगती हैं।

नये विचारोंको समझनेकी मेरी पूरी तैयारीके रहते भी नागरी और अुर्दू लिपियोंके बजाय रोमन वर्णमालाको फैलानेके लिअे लोगोंको अुकसानका क्या खास कारण हो सकता है, सो मैं नहीं समझ पाया हूँ। यह सही है कि हिन्दुस्तानी फ़ौजमें रोमन वर्णमाला बहुत ज़्यादा अिस्तेमाल की जाती है। मुझे अैसी आशा करनी चाहिये कि अगर हिन्दुस्तानी सिपाहीमें देश-प्रेमकी भावना भरी है, तो वह नागरी और अुर्दू दोनों वर्णमालाओंको सीखनेमें अेतराज़ न करेगा। आखिरकार हिन्दुस्तानकी जनताके अितने बड़े समुद्रमें हिन्दुस्तानी सिपाही सिर्फ़ अेक बूंद ही तो है। अुसे अंग्रेजी तरीक़ेको खत्म कर देना चाहिये। नागरी या अुर्दू अक्षरोंको सीखनेमें अंग्रेजी अफ़सरोंकी सुस्ती ही शायद अुर्दूको रोमनमें लिखनेका कारण हो।

(हरिजनसेवक, २१–४–'४६)

११

अंग्रेजी भाषाका प्रभाव

"आप हिन्दुस्तानीके प्रचारके लिअे अनथक प्रयत्न कर रहे हैं। आपको यह भी अच्छा नहीं लगता कि कोअी भारतवासी अपने प्रान्तकी भाषामें या हिन्दुस्तानी भाषाके अतिरिक्त विदेशी भाषामें बोलें या लिखें। लेकिन हमारे कहे जानेवाले क़ौमी अखबारोंका, जो अंग्रेज़ीमें निकलते हैं, और साथ ही हिन्दुस्तानी या प्रान्तीय भाषाका अखबार निकालते हैं, क़ौमी भाषाके प्रचारकी ओर जो बरताव है, अुसकी तरफ मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ और पूछना चाहता हूँ कि अिस तरह क़ौमी भाषाको कैसे प्रोत्साहन मिल सकता है? आप किसी अंग्रेज़ी भाषाके क़ौमी अखबारके खर्चका और अुसी जगहसे निकलनेवाले देशी भाषाके अखबारके खर्चका मुक़ाबला करें। आप देखेंगे कि जो वेतन अंग्रेज़ी अखबारके महकमेको दिया जाता है, अुसका १० वाँ हिस्सा भी देशी भाषाके महकमेवालोंको नहीं दिया जाता। अंग्रेज़ी अखबारका सम्पादक २,०००) माहवार पाता है, और हिन्दी अखबारका सम्पादक २००) माहवार भी नहीं पाता। अंग्रेजी भाषावालोंको सब सहूलियतें मौजूद हैं। खबरें सीधी टेलिप्रिण्टर पर आती हैं, और अुन्हें कम्पोज़ कर दिया जाता है। हिन्दीवालोंको तरजुमा करना पड़ता है। दुगुनी मेहनत करनी पड़ती है। फिर भी न अुनकी क़दर है, न अुनको कोअी प्रोत्साहन है। फिर वे क्यों अपनी भाषाके लिअे सरमारी करें, जब कि वे देखते हैं कि अंग्रेज़ीवालोंकी ही सब जगह क़दर है, और अुनको कम मेहनत करने पर भी खूब पैसे दिये ज़ाते हैं? यह भी देखनेकी बात है कि देशी भाषाके अखबारोंकी बिक्री अंग्रेज़ी अखबारोंसे कुछ कम नहीं है, बल्कि

ज़्यादा ही होगी। मगर जैसे रेलवेवाले तीसरे दर्जेके मुसाफ़िरोंसे सबसे ज़्यादा पैसा कमाते हैं, और अुनके आरामकी तरफ़ ध्यान न देकर दूसरे और पहले दर्जेके मुसाफ़िरोंकी तरफ़ ही ध्यान रखते हैं, वैसा ही बरताव ये अंग्रेज़ी अखबारवाले हिन्दुस्तानी या प्रान्तीय भाषाके जानकारोंके साथ कर रहे हैं। अपनी बहुत दिनोंकी यह शिकायत 'हरिजन'के ज़रिये जवाब पानेके लिअे मैंने आपके सामने रखी है।"

यह खत अेक मेहनती सेवकने लिखा है। अुसने जो लिखा है, अुसे वह जानता है। लेखककी यह शिकायत सारे हिन्दुस्तानको ज़ाहिर है। बात तो यह है कि अंग्रेज़ीका प्रभाव और मोह कैसे मिटे? अुसे मिटाना स्वराज्यकी लड़ाअीका बड़ा हिस्सा है। नहीं है, तो स्वराज्यके मानी बदलने होंगे। गुलामीमें गुलामको अपने सरदारकी रहन-सहनकी नक़ल करनी पड़ती है। अुसे सरदारका लिबास, सरदारकी भाषा वग़ैराकी नक़ल करनी होगी, यहाँ तक कि रफ़्ता-रफ़्ता वह और कुछ पसन्द ही नहीं करेगा। जब स्वराज्य आयेगा, जब अंग्रेज़ी हुकूमत अुठ जायगी, तब अंग्रेज़ीका प्रभाव भी अुठ जायगा। अिस बीच जिनके खयालसे अंग्रेज़ीका प्रभाव मुल्कके लिअे हानिकर सिद्ध हुआ है, वे सिर्फ़ राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीका या अपनी मातृभाषाका ही प्रयोग करेंगे।

अंग्रेज़ी जाननेवाले राष्ट्रभाषा जाननेवालोंसे १० गुना ज़्यादा कमाते हैं, सो सही है। अिसका अुपाय भी हमारे हाथोंमें है। और, अैसे लोगोंका दाम तो अंग्रेज़ी सल्तनतके जानेसे अेकदम गिरना चाहिये। असलमें तो अैसा कभी होना ही न चाहिये था, क्योंकि आज अंग्रेज़ी जाननेवाले जितना लेते हैं अुतना देने लायक़ यह मुल्क हरगिज़ नहीं है। हम ग़रीब मुल्कके हैं और जब तक ग़रीब-से-ग़रीब भी आगे नहीं बढ़ते हैं, तब तक बड़ी तनख्वाह लेनेका हमें कोअी हक़ नहीं है। सही बात तो यह है कि राष्ट्रभाषामें या मातृभाषामें जो अखबार निकलते हैं, अुन्हें पढ़नेवाले अुनकी क़ीमत घटा या बढ़ा सकते हैं। अगर हम अंग्रेज़ी अखबारोंको धर्मपुस्तक समझना छोड़ दें और जो अखबार हमारे प्रान्त या राष्ट्रकी

भाषामें निकलते हैं, अुन्हींका आदर बढ़ा दें, तो अख़बारवाले समझ जायेंगे कि अब अंग्रेज़ी अख़बारकी क़ीमत नहीं रही है। अैसा कुछ हो भी रहा है। अेक ज़माना था कि जब मातृभाषामें या राष्ट्रकी भाषामें निकलनेवाले अख़बार कम पढ़े जाते थे। अब तो अैसे अख़बारोंकी संख्या बढ़ गअी है, ग्राहकोंकी संख्या भी बढ़ रही है। लेकिन जैसे जनताका धर्म है, वैसे ही भाषाप्रेमी अख़बारवालोंका भी कुछ धर्म है। यह दुःखकी बात है कि राष्ट्रभाषामें या प्रान्तोंकी भाषामें या कहिये कि मादरी ज़बानमें जो अख़बार निकलते हैं, अुन्हें चलानेवाले भाषाका गौरव बढ़ाते नहीं। और अुनमें छपनेवाले लेखोंमें मौलिकता कम रहती है। अिन दोषोंको दूर करना अख़बारवालोंका ही काम है।

(हरिजनसेवक, २६–५–'४६)

१२

हिन्दुस्तान और अुसकी मुल्की ज़बान

गांधीजीने हिन्दुस्तानको बहुतसी चीज़ें दी हैं। मगर शायद कम लोगोंका ध्यान अिस तरफ गया होगा कि अेक बड़ी चीज़, जो हिन्दुस्तानको अुनके हाथोंसे मिली, वह अुसकी मुल्की ज़बान है। बहुतसी बोलियाँ रखने पर भी हिन्दुस्तान अपनी मुल्की बोली नहीं रखता था। गांधीजीने अुसकी यह कमी पूरी कर दी।

अंग्रेज़ी ज़बान हुकूमतके दरवाज़ेसे आयी। लेकिन आते ही सारे मुल्कपर छा गयी। और अिस तरह छा गअी कि हमारी तालीमी, अिल्मी और समाजी ज़बानकी जगह अुसीको मिल गयी। अब पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी अपनी मुल्की ज़बानमें बातचीत करना शरमकी बात समझने लगे थे। बड़ाअी और अिज़्ज़तकी बात यही समझी जाती थी कि हर मौक़े पर

अंग्रेज़ी ही ज़बानसे निकले। लोग अपनी निजकी बातचीतमें भी अंग्रेज़ीको भुलाना पसन्द नहीं करते थे।

पिछली सदीके आखिरी हिस्सेमें मुल्ककी नयी सियासी जागृति शुरू हुअी और अिण्डियन नेशनल कांग्रेसकी नींव पड़ी। अब कांग्रेसके जलसे अिसलिअे होने लगे थे कि मुल्ककी क़ौमी मांगों और क़ौमी फ़ैसलोंकी आवाज़ दुनियाको सुनाअी जाय। लेकिन यह आवाज़ भी अपनी ज़बानमें नहीं अुठती थी। अंग्रेज़ीमें अुठती थी। हिन्दुस्तान अब अिंग्लैण्डको यह बात सुनाना चाहता था कि अुसका मुल्क खुद अुसके लिअे है, दूसरोंके लिअे नहीं है। लेकिन यह बात कहनेके लिअे भी अुसे अपनी हिन्दुस्तानी ज़बान नहीं मिली थी। वह दूसरों ही की ज़बान अुधार लेकर अपना काम चलाना चाहता था।

लेकिन ज्यों ही गांधीजीने मुल्कके सियासी मैदानमें क़दम रखा, अचानक अेक नया अिन्क़िलाब अुभरना शुरू हो गया। अब मुल्ककी आवाज़ खुद अुसकी ज़बानमें अुठने लगी और मुल्ककी ज़बानमें बातचीत करना शरमकी बात नहीं रही। अुन्होंने लोगोंको याद दिलाया कि शरमकी बात यह नहीं है कि हम अपनी ज़बान बोलें, शरमकी बात यह है कि अपनी ज़बान भूल जायें। अुन्होंने १९२०–२१ में सारे मुल्कका दौरा किया और सैकड़ों तक़रीरें कीं, लेकिन हर जगह अुनकी तक़रीरोंकी ज़बान हिन्दुस्तानी ही रही।

मुझे याद है कि पहली बड़ी लड़ाअीके ज़मानेमें, जब मैं रांचीमें क़ैद था, तो मैंने अखबारोंमें अुस कान्फरेन्सकी कार्रवाअी पढ़ी थी, जो सन् १९१७ में लॉर्ड चेम्सफोर्डने दिल्लीमें बुलाअी थी। गांधीजी अुस कान्फरेन्समें शरीक हुअे थे, मगर अुन्होंने यह बात बतौर शर्तके ठहराअी थी कि वह तक़रीर हिन्दुस्तानीमें करेंगे। अुस वक़्त अखबारोंने अिस वाक़याको अेक नअी और अजीब तरहकी बात खयाल किया था। लेकिन यह नअी बात बहुत जल्द मुल्ककी सबसे ज़्यादा आम बात बननेवाली है। चुनांचे आज हम सब देख रहे हैं कि जो जगह २५

बरस पहले अंग्रेजी जबानकी समझी जाती थी, वह हिन्दुस्तानी जबानने ले ली है।

अबुल कलाम आजाद

[अूपरका लिखान मेरी तारीफ़के लिअे नहीं है। जो आदमी अपना धर्म समझकर कुछ सेवा करता है, अुसमें तारीफ़ क्या? मौलाना साहब विद्वान् हैं। फ़ारसी और अरबीका ज्ञान रखते हैं। अिसलिअे अुर्दू खूब जानते हैं। लेकिन ये जानते हैं कि न तो अरबी-फ़ारसीमयी अुर्दू हिन्दुस्तानकी आम जबान हो सकती है और न संस्कृतमयी हिन्दी ही। अिसलिअे वे अुर्दू और हिन्दीका मेल चाहते हैं और दोनोंको मिलाकर बोलते हैं। मैंने अुनसे प्रार्थना की है कि हर हफ़्ते अेक छोटा-सा हिन्दुस्तानी लेख देते रहें, जिससे हिन्दुस्तानीका अेक नमूना 'हरिजनसेवक' पढ़नेवालोंको मिलता रहे। अुस प्रयत्नका पहला नमूना अूपरका लिखान है।

—मो० क० गांधी]

(हरिजनसेवक, २६–५–'४६)

१३

अुर्दू 'हरिजन' का मजाक

भाअी जीवणजीने मुझको हिन्दी और अुर्दू अखबारोंसे कड़ी टीकाके कुछ नमूने भेजे हैं। सबमें काफ़ी मजाक अुड़ाया गया है। हिन्दीवाले कहते हैं, अुर्दू 'हरिजन' में चुन-चुनकर अुर्दू शब्द भरे जाते हैं; अुर्दूवाले कहते हैं, अैसे संस्कृत शब्द भरे हैं, जिन्हें मुसलमान नहीं समझते। मुझे तो दोनों तरहकी टीकायें अच्छी लगती हैं। 'हरिजनसेवक' क्यों, 'खिदमतगार' क्यों नहीं? 'सम्पादक' क्यों 'अेडीटर' या 'मुदीर' क्यों नहीं? अुर्दूवाले मानते हैं कि हिन्दुस्तानी और अुर्दू अेक ही हैं; हिन्दीवाले मानते हैं कि लिपि अुर्दू होने पर भी हिन्दुस्तानी हिन्दी ही है, और अैसा ही है तो

में हारकर अुर्दू लिपि छोड़ दूंगा। मैं हार जाअूं, अैसी आशा तो निराशा ही होनी चाहिये। और, न हिन्दी हिन्दुस्तानी है, न अुर्दू हिन्दुस्तानी। हिन्दुस्तानी बीचकी बोली है। यह सही है कि आज अुसका चलन नहीं है। अगर अखबारवाले और दूसरे टीका करनेवाले धीरज रखेंगे, तो दोनों देखेंगे कि वे हिन्दुस्तानी आसानीसे समझ सकते हैं। मैं कबूल करता हूं कि आज हम सब 'हरिजन' वाले तैयार नहीं हो पाये हैं, मनसूबा तैयार होनेका है। आज 'हरिजनसेवक' की हिन्दुस्तानी खिचड़ी-सी लगेगी, भद्दी लगेगी, अुसके लिअे माफ़ करें। अगर अीश्वर मुझे ज़िन्दा रखेगा, तो अिसी अखबारको पढ़नेवाले देखेंगे कि हिन्दुस्तानी बोली वैसी ही मीठी होगी, जैसी हिन्दी या अुर्दू है। आज दोनोंके बीच कुछ होड़-सी मालूम पड़ती है। कल दोनों बहनें बन जायेंगी और दोनोंका सहारा लेकर हिन्दुस्तानी अैसी बोली बनेगी, जो करोड़ोंको पूरा काम देगी, और कम-से-कम भाषाका झगड़ा मिट जायगा। अिस दरमियान टीकाकार ग़लतियाँ दिखाते रहें। अुन्हें मुहब्बतके साथ समझानेसे 'हरिजनसेवक' की भाषामें दुरुस्ती होती रहेगी।

(हरिजनसेवक, १६–६–'४६)

१४

अुर्दू, दोनोंकी भाषा?

अेक विद्वान् (आलिम) हिन्दी प्रेमी लिखते हैं—

१. "जिस प्रकार (तरह) आप अुद्योग (मेहनत) कर रहे हैं कि भारतवासी, विशेष (खास) कर हिन्दू—क्योंकि आपके दैनिक सम्पर्क (रोज़मर्राके मेलजोल) में हिन्दू ही अधिक (ज्यादा) आते हैं—अुर्दू सीख लें, अुसी प्रकार क्या कोअी सज्जन मुसलमानोंको भी हिन्दी सिखानेका अुद्योग कर रहे हैं? यदि (अगर) अैसा नहीं है, तो आप ही के अुद्योगके कारण अुर्दू हिन्दू-मुसलमान दोनोंकी भाषा हो जायगी और हिन्दी केवल हिन्दुओंकी भाषा रह जायगी। क्या अिसमें हिन्दीकी सेवा होगी?

२. "आपके यहांके लेखोंमें हिन्दी शब्दों (लफ़्ज़ों) के अुर्दू पर्याय (बराबरके लफ़्ज़) कोष्ठ (ब्रैकेट) में दिये जाते हैं, परन्तु (पर) अुर्दू शब्दोंके हिन्दी पर्याय नहीं दिये होते। क्या यह हिन्दी-भाषियों (बोलनेवालों) को जबरदस्ती अुर्दू पढ़ानेकी चेष्टा (कोशिश) नहीं है?

३. "आपके प्रकाशनोंमें फ़ारसी, अरबी शब्दोंकी भरमार रहती है। क्या आपके विचारमें ये अैसे शब्द हैं, जिन्हें भारतकी साधारण (आम) जनता समझती है? अुदाहरण (मिसाल) के लिअे—'अदब', 'आदाब', 'अेतक़ाद'।

४. "यदि हिन्दुस्तानी अेक भाषा है, तो आपको शिक्षा-योजना (तालीमकी स्कीम) की पाठ्यपुस्तकों (रीडरों) के हिन्दी-अुर्दू संस्करणों (अेडीशनों) में अितना अन्तर (फ़र्क़) क्यों रखना पड़ता है?

५. "मेरा नम्र निवेदन है (बड़ी आजिज़ीसे गुज़ारिश है) कि अभी तक जो लाखों दक्षिणी हिन्दी सीखते हैं, अुनमें से अधिकांश (ज्यादा हिस्सा) अुर्दू लिपिके डरसे दोनोंमें से अेक लिपि भी न सीखेंगे, और हिन्दी-प्रचारका आज तकका कार्य (काम) मटियामेट हो जायगा।"

१. कोशिश तो की जा रही है कि जो अुर्दू ही जानते हैं, वे हिन्दी रूप सीख लें। हिन्दी जाननेवाले अुर्दू रूप सीख लें। यह बात सच है कि मुझे हिन्दी जाननेवाले हिन्दू ही ज़्यादा मिलते हैं। अिससे मुझे कोअी कष्ट नहीं। हिन्दू हिन्दी भूलनेवाले नहीं हैं। अुर्दूके ज्ञानसे अुनकी हिन्दी बढ़ेगी ही। भारतवर्षमें जो लोग हैं, वे हिन्दू हों या मुसलमान, अुनमें ज़्यादा हिस्सा तो अपने प्रान्त (सूबे) की ही भाषा जाननेवाले हैं। वे हिन्दी रूप तो भूल ही नहीं सकते, क्योंकि हिन्दीमें और प्रान्तीय भाषाओंमें अधिक शब्द संस्कृतके ही हैं। और माना कि मेरे प्रयत्नका नतीजा यह आवे कि सब अुर्दू रूप ही सीख जायँ, तो भी मुझे अुसका न तो कोअी भय (डर) है, न वैसी कोअी आशा ही। जो स्वाभाविक होगा, वही होनेवाला है। दोनों रूपोंको मिलानेके साहसको मैं सब पहलुओंसे अच्छा ही मानता हूँ।

२. मैंने हिन्दुस्तानी-प्रचारके सब प्रकाशन पढ़े नहीं हैं। अगर अुनमें हिन्दी शब्दोंके अुर्दू शब्द भी दिये हैं, तो अुसमें फ़ायदा ही है। अुसका अर्थ (मतलब) तो यह होगा कि पुस्तकके लेखककी नज़रमें हिन्दीके अुर्दू शब्द पाठक लोग नहीं जानते होंगे। अुर्दूके हिन्दी नहीं दिये जाते हैं, तो अर्थ यह हुआ कि वे शब्द हिन्दीमें चालू हो गये हैं। समझमें नहीं आता कि अैसी सीधी बातमें भी विद्वान् लेखक शक क्यों करते हैं? अैसा शक करना विद्याका भूषण नहीं है।

३. यह बात सही नहीं है। अगर सही भी हो, तो अुसमें हानि (नुक़सान) क्या हो सकती है? भाषामें अैसे शब्द दाखिल होनेसे

भाषाका गौरव (शान) बढ़ेगा। नॉर्मन हमलेके बाद अंग्रेजीमें फ्रेन्च भाषाकी मार्फत जो शब्द दाखिल हुअे, अुनसे अंग्रेजी भाषाका जोर बढ़ा, कम नहीं हुआ। जितना आडम्बर था या अतिशयता थी, वह निकल गअी। जो अुदाहरण (नमूने) लेखकने दिये हैं, अुन्हें अुत्तर (शुमाल) के सभी हिन्दी-प्रेमी जानते हैं। अुन्होंने हिन्दी बोलीमें अपनी जगह बना ली है। दक्षिणकी हिन्दीके लिअे वे नये हैं सही। अुसके लिअे अुनके संस्कृत शब्द देनेकी जरूरत रहेगी। और अैसी मदद दी भी जाती है। बात यह है कि हिन्दुस्तानी-प्रचारमें न अेकका द्वेष (नफ़रत) है, न दूसरीका पक्षपात (तरफ़दारी)। दोनों रूप मौजूद हैं और रहेंगे। अुसमें आपत्ति न होनी चाहिये। अगर दोनों पक्षों (फरीक़ों) में द्वेष-भाव (नफ़रतका जज्बा) ही रहा, तो हिन्दुस्तानी नहीं बनेगी। अैसा हुआ, तो वह हिन्दुस्तानके लिअे बुरा होगा।

४. हिन्दुस्तानी अेक ज़मानेमें थी। अब तो बहुत देखनेमें नहीं आती। अिसीलिअे यत्न हो रहा है कि जो भाषा दोनोंके मेलरूप हिन्दुस्तानी शकलमें थी, वह अब भी बने और बढ़े। अिससे न हिन्दीवाले दुःख मानें न अुर्दूवाले। हिन्दी और अुर्दू दोनों बहनें हैं। बहनोंके मिलनेसे क्या नुक़सान होनेवाला है? अिस संधि-युगमें दोनों रूपमें हिन्दुस्तानी-प्रचारकी पुस्तकोंमें अन्तर रहता है, तो कोअी ताज्जुबकी बात नहीं है।

५. मेरा अनुभव लेखकसे अुलटा है। दोनों लिपि सीखनेके डरसे किसीने दोनोंको छोड़ दिया हो, अैसा अेक भी नमूना मेरे ध्यानमें नहीं आया है। मुझे अैसा होनेका कोअी डर भी नहीं है।

लेखकसे मेरी विनय है कि वे अपनी संकुचित दृष्टि (तंग नज़री) छोड़ दें।

(हरिजनसेवक, १६–६–'४६)

१५

हिन्दी और अुर्दूका अन्तर

भाअी रामनरेश त्रिपाठीको मैं काफ़ी जानता हूँ। अेक रोज़ वे मसूरीमें मिलने आये थे। मुझे डर था कि हिन्दुस्तानीके प्रचारके लिये वे मुझे डाँटेंगे। लेकिन बातें करनेसे मैंने अुलटा ही पाया। वे मुझसे कहने लगे कि अगर मैं हिन्दी और अुर्दूके मेलसे सच्ची हिन्दुस्तानीकी अुम्मीद रखता हूँ, तो मुझे अुर्दूसे ज़्यादा मदद मिलेगी। शर्त्त यह है कि अुर्दूको नया जामा पहनाकर बिगाड़नेकी जो कोशिश हो रही है, अुसे मैं अुसी तरह समझ लूँ, जिस तरह हिन्दीको बिगाड़नेकी कोशिशको समझता हूँ। अुस हालतमें हिन्दुस्तानी अपने-आप फिर ज़िन्दा हो जायगी। अिस पर मैंने अुनसे कहा कि वे मुझको कुछ मिसालें दें, जिससे मैं समझ सकूँ कि अुनके कहनेका मतलब क्या है। सोचने लगे, तो कुछ दिक्क़त मालूम हुअी। तब मैंने कहा कि मुझको कुछ लिखकर समझावें। अुसका नतीजा यह है कि अुन्होंने मुझे नीचेका खत भेजा —

"पूज्य बापू,

"हिन्दी और अुर्दूके ढाँचेका अन्तर आपने माँगा था। पर ढाँचा तो मुझे अनुभवगम्य-सा जान पड़ता है। अुसकी कोअी अलग रूपरेखा खींचकर नहीं दिखा सकता हूँ। हाँ, अेक सुझाव दे सकता हूँ। 'हरिजन' के किसी अेक पैरेग्राफका अनुवाद हिन्दी और अुर्दूके किन्हीं दो योग्य लेखकोंसे कराकर देख लीजिये। ढाँचेका अन्तर दिखाअी पड़ने लगेगा।

"मैंने अुस दिन कहा था कि अुर्दू हिन्दीसे अधिक परिमार्जित है। यिसका अेक अुदाहरण लिखता हूँ। हिन्दीके अेक प्रसिद्ध लेखकका यह वाक्य है—'समझमें न आनेसे घबराहट-सी लगने लगती

है। 'अुर्दूमें घबराहट 'लगती' नहीं, 'होती है' या 'पैदा होती है'। अुर्दूका कोअी प्रसिद्ध लेखक कभी ग़लत मुहावरा नहीं लिखेगा। और अगर लिख देगा, तो अुसको जबरदस्त मोरचा लेना पड़ेगा। हिन्दीमें भाषाके संशोधनका आन्दोलन ही नहीं है। कोअी आन्दोलन क़ायम करनेकी अपेक्षा अुर्दू भाषाकी पुस्तकें या लेख हिन्दी अक्षरोंमें छपने लगें, तो हिन्दी भाषाका बड़ा अुपकार होगा। अुर्दू भाषाके सुधारने और सँवारनेमें अुर्दूके शायरों और लेखकोंने पिछले कअी सौ बरसोंमें जो हाथापाअी की है, अुसका लाभ हिन्दी भाषाको सहज ही मिल जायगा, और अिस प्रयोगसे वह आप-से-आप हिन्दुस्तानी बन भी जायगी।"

यह ख़त विचार करनेके लायक़ है। मैं भाषाका प्रेमी हूँ, भाषाका शास्त्री नहीं हूँ। हिन्दीका मेरा ज्ञान अैसा ही है। मैंने कोअी पुस्तक पढ़कर हिन्दी सीखी नहीं। अिसके लिअे समय ही नहीं मिला। मेरा लड़का देवदास, जो मेरे प्रोत्साहनसे और आशीर्वादसे हिन्दी सीखनेके लिअे मद्रास चला गया था, मुझसे बहुत ज्यादा हिन्दी जानता है। अैसे दूसरे भी हैं, जिनके नाम मैं दे सकता हूँ। अुर्दूका ज्ञान मुझे हिन्दीसे भी बहुत कम है। नागरी लिपि बचपनसे जानता हूँ। फ़ारसी लिपि तो मेहनत करके सीखा हूँ। लेकिन अुसका मुहावरा न होनेसे अुसे थोड़ी मुश्किलसे पढ़ पाता हूँ। जैसे तैसे लिख भी लेता हूँ। अिस तरह अुर्दूका ज्ञान तो बहुत ही कम है। जो है, सो प्रेम है, और किसीका पक्षपात नहीं है। अिसलिअे अगर भगवानकी कृपा हुअी, और भाषा-शास्त्रियोंकी मदद मिली, तो मेरा यह साहस सफल होगा। अिसी ख़यालसे त्रिपाठीजीका यह ख़त मैंने छापा है, जिससे वे अिस काममें मदद दें और दूसरे भी हाथ बँटायें।

अेक दूसरे हिन्दी भाषा-प्रेमीने भी मुझे यह बताया है कि अुर्दूमें भाषा पर जो मेहनत हुअी है, वह हिन्दीमें शायद ही हुअी हो। अब अगर दोनों खींचातानीमें पड़ें और समझ लें कि दोनों भाषाओंकी

जड़ अेक ही है, और जिसे करोड़ों देहाती बोलते हैं, अुसीके लिअे शास्त्रियों और शायरोंको मेहनत करनी है, तो हम जल्दीसे आगे कूच कर सकते हैं।

(हरिजनसेवक, १४–७–'४६)

१६

हिन्दुस्तानी बनाम हिन्दी और अुर्दू

बम्बअी सरकारकी ता० १६-८-'३९ की गश्ती चिट्ठीमें यह लिखा गया है —

"पता चला है कि लोग 'हिन्दुस्तानी' लफ्ज़का अिस्तेमाल बिना सोचे-समझे हिन्दी या हिन्दुस्तानी ज़बानके लिअे करते हैं। मेहरबानी करके अिस बातका ख़याल रखिये कि हिन्दुस्तानी हिन्दी या अुर्दूसे अलग और निराली ज़बान है; चुनांचे जब भी आपको अिस ज़बानका ज़िक्र करना पड़ जाय, आप अिसे 'हिन्दुस्तानी' लिखिये।"

९ अक्तूबर, १९४० को अेक सरकारी बयान जारी किया गया था। अुसमें लिखा गया है —

"सन् १९३८ के सितम्बर महीनेमें बम्बअी सरकारने प्रान्तकी पाठशालाओंमें हिन्दुस्तानीकी पढ़ाअी शुरू करनेका अपना फ़ैसला ज़ाहिर किया था। चुनांचे अुस फ़ैसले पर अमल करनेके लिअे ज़रूरी कार्रवाअी की गअी थी, और तबसे प्राअिमरी स्कूलों, मिडिल स्कूलों और ट्रेनिंग स्कूलों या कॉलेजोंमें हिन्दुस्तानी सिखानेका अिन्तज़ाम किया गया है। अुसे सिखानेके सिलसिलेमें कुछ अमली दिक़्क़तें पेश आअी हैं। अिन दिक़्क़तों पर ग़ौर करना ज़रूरी है। हिन्दुस्तानीका

विकास अभी होना बाक़ी है, चुनांचे अुसमें लिखा साहित्य कम मिलता है, और स्कूलोंमें पढ़ाने लायक़ किताबें भी अुसमें नहीं मिलतीं। ये अुसकी कुछ ख़ास दिक्क़तें हैं। फ़िलहाल हिन्दुस्तानीकी जो किताबें पढ़ाअी जाती हैं, अुनमें बरती गअी ज़बान और दिये गये सबक़ पाठ्यवस्तुकी दृष्टिसे ख़ामीवाले मालूम हुअे हैं। कहा जाता है कि जिन किताबोंमें ठेठ हिन्दीके लफ़्ज़ ज्यादा तादादमें हैं, और जिनके कुछ सबक़ोंका मज़मून विद्यार्थियोंके लिअे ठीक नहीं है। दूसरे, अुर्दू और हिन्दुस्तानी ज़बानोंके शब्द-भण्डारमें दोनों ज़बानोंमें अेक-सां पाये जानेवाले शब्द जितने ज्यादा हैं कि अुर्दू मदरसोंमें हिन्दुस्तानी सिखानेका आग्रह (अिसरार) रखना ग़ैरज़रूरी है। अिस सारे मसले पर अच्छी तरह ग़ौर करनेके बाद सरकार अब यह सुझाती है कि अगरचे दूसरे मदरसोंमें हिन्दुस्तानी सिखानेके ख़िलाफ़ कोअी ख़ास अेतराज़ नहीं है, तो भी सूबेमें अुर्दू पढ़ानेवाली जो संस्थायें (अिदारे) हैं, यानी जिनमें अुर्दूके ज़रिये तालीम दी जाती है, अुन प्राअिमरी स्कूलों, मिडिल स्कूलों और ट्रेनिंग स्कूलों या कॉलेजोंको अपनी पढ़ाअीमें हिन्दुस्तानीकी तालीम दाख़िल करनेसे बरी किया जाय।"

सन् १९४१ में जारी किये गये अेक दूसरे गश्ती ख़तके ज़रिये अिसी तरह हिन्दी पढ़ानेवाली पाठशालाओंको हिन्दुस्तानी पढ़ानेसे मुक्ति दी गअी है। अिस तरह जहां पढ़ाअीका ज़रिया हिन्दी या अुर्दू न हो, वहां अुन मदरसोंमें हिन्दुस्तानी सिखानेकी बात तय हुअी। सवाल यह है कि अैसी हालतमें आम लोगोंकी रायसे बनी हुअी सूबेकी मौजूदा सरकारको क्या करना चाहिये?

अगर यह माना जा सके कि सूबेकी मौजूदा सरकार आम लोगोंकी रायसे बनी है, तो अुससे हमें अिस सवालका जवाब मिल जाता है। अगर हिन्दी पाठशालायें प्राअिमरी और मिडिल स्कूलोंमें राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी सिखाना चाहें, तो वह सिखाअी जानी चाहिये। स्वभावतः

अिस बातका फैसला अिन स्कूलोंमें पढ़नेवाले लड़कों और लड़कियोंके माँ-बापोंको करना होगा। अगर अुन्हें अिसकी ज़रूरत न मालूम होती हो और यह चीज़ अुन पर ज़बरदस्ती लादनेकी कोशिश की जाय, तो लोगोंकी सरकार होनेका अुसका दावा टिक न सके। मैं माँ-बापोंको ज़रूर यह सलाह दूंगा कि वे अपने बच्चोंको हिन्दुस्तानी सिखानेकी माँग करें। असलमें हिन्दुस्तानी हिन्दी और अुर्दूका मिलाजुला रूप है, और वह नागरी व फ़ारसी दोनों लिखावटोंमें लिखी जाती है। यह हक़ीक़त कभी भूलनी न चाहिये। अगर माँ-बाप सिर्फ़ हिन्दी या अुर्दू और कोअी अेक ही लिपि चाहते हों, तो वे अपनी यह चीज़ अुस सरकार पर लाद नहीं सकते, जो अुनकी अिस बातको मानती न हो, और वैसा करनेके लिअे नाखुश हो। दोनों दल अपनी-अपनी मरज़ीके मुताबिक़ बरतनेको आज़ाद हैं।

यहाँ यह सवाल मौजूं नहीं कि आया हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा है, या कि वह राष्ट्रभाषा यानी क़ौमी ज़बान हो सकती है या नहीं? 'हरिजनसेवक' के पिछले अंकोंमें अिस मसले पर कअी दफ़ा लिखा जा चुका है।

(हरिजनसेवक, ८-९-'४६)

१७

हिन्दुस्तानीके बारेमें

बिहारके अेक सज्जन लिखते हैं —

"आपके नेतृत्वमें हिन्दुस्तानी-प्रचारका जो बड़ा और सराहनीय काम चल रहा है, अुसके जरिये देशकी तरक्क़ी और आज़ादी हासिल करनेमें बड़ी मदद मिल रही है। जिस देशकी अपनी भाषा नहीं, अुसे जीनेका अधिकार ही क्या हो सकता है? जिस मुल्ककी भी यही बदक़िस्मती है। सब-कुछ जानते हुअे भी हमारे नेताओंका ध्यान अिस ओर पूरी तरहसे नहीं गया है। आपके अितनी कोशिश करने पर भी कांग्रेसी कार्यकर्ताओंने अिस पर पूरा-पूरा अमल नहीं किया है। यह बात भी आपसे कुछ छिपी नहीं कि अंग्रेज़ीकी बू गअी नहीं है, और आज भी अखिल भारत कांग्रेस-कमेटीके अिजलासमें और असेम्ब्लियोंमें अकसर वे लोग भी, जिनकी मातृभाषा हिन्दुस्तानी (हिन्दी या अुर्दू) है, अंग्रेज़ीमें बोलना ज़्यादा पसन्द करते हैं। क्या यह मुमकिन नहीं कि जिस तरह कांग्रेसी मेम्बरके लिअे खादी पहनना अनिवार्य (लाज़िमी) है, अुसी तरह कांग्रेस यह भी नियम बना दे कि कांग्रेसी सदस्योंको (फिर वे किसी भी असेम्ब्ली या संस्थामें हों) हिन्दुस्तानीमें ही अपने ख़यालातका अिज़हार करना होगा? हाँ, अुन लोगोंके लिअे, जो हिन्दुस्तानी बिलकुल नहीं जानते, कुछ रियायत की जा सकती है, मगर अुन्हें भी निश्चित समयके भीतर ही हिन्दुस्तानी सीख लेनी होगी। मुझे यह अनुभव हुआ है कि अुस असेम्ब्लीमें भी, जहाँ सभी लोग अच्छी तरहसे हिन्दुस्तानी जानते हैं, चाहे अुनमें अंग्रेज़ भी क्यों न हों, हमारे जिम्मेदार कांग्रेसी सदस्य अंग्रेज़ीमें ही बोलना पसन्द करते हैं।

अिसको तो बन्द ही करना होगा। बग़ैर अैसा किये देशकी कायापलट नहीं हो सकती, अैसा हमारा खयाल है। कांग्रेस आज बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी ले रही है। कांग्रेसी सदस्योंको वहाँ भी हिन्दुस्तानीमें ही काम शुरू करना चाहिये।"

अिस खतके लेखकने ठीक ही लिखा है। अंग्रेज़ी भाषाका मोह अभी तक हमारे दिलसे दूर नहीं हुआ है। जब तक वह न छूटेगा, हमारी भाषायें कंगाल रहेंगी। काश, हमारी बड़ी सरकार, जो लोगोंके प्रति ज़िम्मेदार है, अपना कार-बार हिन्दुस्तानीमें या प्रान्तोंकी भाषाओंमें करे! अिस कामके लिअे अुसके अमला-फैलामें, कर्मचारियोंमें, सब सूबोंकी भाषाके जानकार होने चाहियें। साथ ही, लोगोंको अपने सूबेकी भाषामें या राष्ट्रीय भाषामें लिखनेका बढ़ावा देना ज़रूरी है। अैसा होनेसे हम बहुत-से खर्चसे बच जायँगे, और अिसमें शक नहीं कि अिससे लोगोंको भी सुभीता होगा।

(हरिजनसेवक, १५-९-'४६)

१८

हिन्दी या हिन्दुस्तानी

श्रीमती पेरीनबहन कैप्टन लिखती हैं :

"दिल्ली रेडियो पर मुझे यह सुनकर बड़ा दर्द और शर्म मालूम हुअी कि विधान-सभाके कुछ अपने ही लोग हमारी अुस राष्ट्रभाषाको गद्दीसे अुतारना चाहते हैं, जिसके लिअे हम बरसोंसे लड़ते रहे हैं। सबसे ज़्यादा चोट लगानेवाली बात तो यह है कि कांग्रेसके कअी पुराने लोग भी आज अिस तरह अपना दिमाग़ खो बैठे हैं कि जिस चीज़को अुन्होंने मेहनतसे बनाया, जिसे प्यारसे अपनाया, अुसीको तोड़ने पर अुतारू हो गये हैं। मुझे आशा थी कि हमारे बड़े-बड़े नेता तो बुद्धिमानी और

राजनीतिसे काम लेंगे। मेहरबानी करके साफ़ साफ़ लिखिये कि आप अिस बारेमें क्या चाहते हैं : (१) हमारी हिन्दुस्तानी-कमेटी क्या करे? (२) हमारे अीमानदार और त्यागकी भावनावाले हिन्दुस्तानी-प्रचारक क्या करें? (३) हमारे देशके रहनेवाले जो हिन्दू, मुसलमान, पारसी, अीसाअी और यहूदी कांग्रेसके ठहरावमें मानी हुअी हिन्दुस्तानीको स्वीकार कर चुके हैं और अुसे प्यार करते हैं, वे क्या करें?

"मैं जानती हूँ कि आप बहुतसे कामोंमें फँसे हुअे हैं। मगर अिस कामके लिअे भी आपको चन्द मिनट तो निकालने ही होंगे। क्योंकि मैं समझती हूँ कि यह अच्छे दिनोंमें मुल्कको अेक करनेवाली मजबूत-से-मजबूत कड़ियोंमें से अेक कड़ी है। हमने तो अखण्ड हिन्दुस्तानकी तसवीर ही अपनी आँखोंके सामने हमेशा रखी है और अुसीके लिअे सारी जिन्दगी काम किया है। कल हमारी अेक क्लासके क़रीब २५ नौजवान मेरे पास आये और कहने लगे, 'हमें तो हिन्दुस्तानी प्रिय है, साहित्यके हिन्दी और अुर्दू दोनों रूप प्रिय हैं। हम हिन्दुस्तानीका राष्ट्रीय महत्त्व भी जानते हैं। कुछ तंगदिल लोग क्यों हमारा क्षेत्र संकुचित करना चाहते हैं?' कृपा करके हमारे दोस्तोंको दुश्मनी और नफ़रतके पंजेमें फँसकर दूरंदेशी खोनेसे रोकिये। नहीं तो कन्याकुमारीसे लेकर काश्मीर तक और आसामसे लेकर सिन्ध तकके सारे देशको सच्ची दोस्ती और दिली मुहब्बतकी जंजीरमें बाँधनेकी अुम्मीद खतम हो जायगी।"

श्री० पेरीनबहनकी तरह बहुतसे दूसरे देशभक्त भी, चाहे वे कांग्रेसवाले कहलाते हों या न कहलाते हों, बहुत दुःखी हैं। यह खत लिखे जानेके बाद राष्ट्रभाषाके सवालका फ़ैसला क़रीब दो माहके लिअे मुल्तवी हो गया है। जब विधान-सभा फिर मिलेगी, तब अिस चीज़का

फ़ैसला होगा। यह अच्छी बात है। अिससे लोगोंको ठण्डे दिल और साफ़ दिमाग़से सोचनेका मौक़ा मिलेगा।

हिन्दुओंको अपने प्रत्यक्ष या परोक्ष बरतावसे मुस्लिम लीगके अिस बयानको ग़लत साबित कर दिखाना है कि 'हिन्दुस्तानके हिन्दुओं और मुसलमानोंका धर्म अलग है, और अिसलिअे वे अेक नहीं बल्कि दो राष्ट्र हैं।' कांग्रेसकी पैदाअिशसे ही कांग्रेसवालोंने यह अैलान किया है कि हिन्दुस्तान अेक राष्ट्र है, जिसमें दुनियाके हर धर्म और हर फ़िरक़ेके लोग रहते हैं। कांग्रेससे कअी बार भूलें हुअी हैं। फिर भी कसौटीके समय अकसर अुसने अपने अिस दावेको साबित कर दिखाया है कि हिन्दुस्तानके रहनेवाले सारे हिन्दुस्तानी अेक राष्ट्र हैं।

पेरीनबहन दादाभाअी नौरोजीकी पोती हैं। वे हिन्दुस्तानके पितामह थे और हमेशा रहेंगे।

फ़ीरोज़शाह महेता बम्बअी सूबेके बेताजके बादशाह बने और दादाभाअी नौरोजीकी मृत्युके बाद कांग्रेसमें अुन्हींकी चलती थी। यह अधिकार अुन्हें अुनकी निःस्वार्थ सेवाकी वजहसे मिला था।

और बदरुद्दीन तैयबजी कौन थे? वे अेक समय कांग्रेसके प्रेसिडेण्ट थे। क्या वे पक्के मुसलमान न थे? मुसलमान होनेके कारण क्या अुनके हिन्दुस्तानी होनेमें कोअी कमी थी? हिन्दुस्तानमें कअी धर्म हैं, मगर राष्ट्रीयता अेक ही है। और यह बात मैं आज भी कहनेकी हिम्मत करता हूँ, जब कि हिन्दुस्तानके दो टुकड़े हो चुके हैं। ये टुकड़े शायद लम्बे अरसे तक क़ायम रहें, मगर हमें अेक मिनटके लिअे भी अेक-दूसरेके दुश्मन नहीं बनना चाहिये। लड़ाअीके लिअे दोकी ज़रूरत होती है, ताली दो हाथसे बजती है, मगर दोस्ती अेक तरफ़से भी हो सकती है। दोस्ती सौदा नहीं है। यह दोस्ती, जिसका दूसरा नाम अहिंसा या मुहब्बत है, बुज़दिलोंका काम नहीं, बल्कि बहादुरों और दूरंदेश लोगोंका काम है।

मैं पेरीनबहनकी अिस बातसे सहमत हूँ कि न तो देवनागरी लिपिमें लिखी हुआी और संस्कृत शब्दोंसे भरी हुआी हिन्दी और न फ़ारसी लिपिमें लिखी हुआी व फ़ारसी लफ़्ज़ोंसे भरी हुआी अुर्दू ही हिन्दुस्तानकी दो या ज्यादा जातियोंको अेक-दूसरीसे बाँधनेवाली ज़ंजीर बन सकती है। यह काम तो दोनोंके मेलसे बनी हुआी हिन्दुस्तानी ही कर सकती है, जो दोनोंसे ज़्यादा स्वाभाविक है और देवनागरी या फ़ारसी लिपिमें लिखी जाती है। हिन्दी और अुर्दूका मिलाप स्वाभाविक तौर पर बरसोंसे होता आया है। सब क़ुदरती बातोंकी तरह यह भी धीमे-धीमे हो रहा है, मगर हो रहा है, यह बात पक्की है। जिस तरह मैं अुर्दू भाषा और लिपि सीख रहा हूँ, अुसी तरह मेरा मुसलमान भाअी भी मेरी भाषा और लिपि सीखने-समझनेकी कोशिश करता है या नहीं, अिसकी मुझे कोअी परवाह नहीं। अगर वह अैसा नहीं करता, तो नुक़सान अुसीका है। मैं तो अुसकी भाषा सीखकर फ़ायदा ही अुठाता हूँ। मैंने कअी मौलवियोंसे बातें की हैं। हिन्दुस्तानीमें अुन्हें अपनी बात समझानेमें मुझे कभी दिक्क़त नहीं मालूम हुआी, अगरचे मैंने अुनकी फ़ारसी शब्दोंसे भरी अूँची अुर्दू बोलनेका ढोंग करनेकी कभी कोशिश नहीं की। क़रीब क़रीब सब मौलवी हिन्दी या हिन्दुस्तानी नहीं जानते। अुसमें नुक़सान अुनका है। मैंने तो हमेशा फ़ायदा ही अुठाया है। मुझे विश्वास है कि जो बात मेरे लिअे सच है, वह दूसरे बहुतोंके लिअे भी सच है।

अब पेरीनबहनके ख़ास सवालोंको लूँ :

१. हिन्दुस्तानी-कमेटीके हरअेक मेम्बरको अपने अक़ीदे पर अमल करना है, यानी अुसे दोनों लिपियाँ सीखनी हैं और हिन्दी और अुर्दूकी मिलावटसे बनी हुआी भाषा हिन्दुस्तानी पर क़ाबू पाना है। यह तभी होगा जब सादी हिन्दी और सादी अुर्दूका मेहनतके साथ अभ्यास किया जायगा। और यह पहली ज़रूरत पूरी करनेके बाद, यानी ख़ुद

हिन्दुस्तानी सीख लेनेके बाद अुसे (मेम्बरको) चाहिये कि वह दूसरोंको हिन्दुस्तानी सीखनेके लिअे कहे।

२. अगर हिन्दुस्तानी-प्रचारक अीमानदार और त्यागी हैं, तो अुनके आसपासके वातावरण पर अुनकी बातका असर पड़े बिना न रहेगा।

३. जो लोग हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषा मानते हैं और अुसे प्यार करते हैं, अुन्हें अिसका सबूत देनेके लिअे अुन लोगोंसे हमेशा सिर्फ़ हिन्दुस्तानीमें ही बोलना चाहिये या खत लिखना चाहिये, जो अुनकी मादरी ज़बान नहीं जानते। अिस तरह तामिलनाड़का आदमी अपने यहांके आदमीसे तामिलमें ही बोलेगा, मगर दूसरे प्रान्तोंके लोगोंके साथ हिन्दुस्तानीमें बात करेगा; आजकी तरह अंग्रेज़ीमें नहीं।

(हरिजनसेवक, ३-८-'४७)

१९

गरबीला गुजरात भी?

श्री मगनभाअी देसाअीने श्री रतनलाल परीखके साथ हुअे अपने पत्र-व्यवहारकी नक़ल मेरे पास भेजी है। श्री रतनलालके खतमें यह लिखा है:

> "अखबारोंमें कांग्रेस पार्टीका हिन्दी भाषाके बारेमें जो निर्णय छपा है, अुसका लोगों पर बहुत असर पड़ा है। अुर्दू लिपिसे अुन्हें अितनी चिढ़ हो गअी है कि वह ज़िन्दा चीज नहीं, यही खैरियत है। कट्टर कांग्रेसी भी अब तो अुर्दूका विरोध करने लगे हैं। अिसलिअे अगली फरवरीमें होनेवाली हिन्दुस्तानी परीक्षाओंमें विद्यार्थियोंकी तादाद शायद बहुत घट जायगी।"

मैं आशा करता हूं कि यह बात सच नहीं है। गुजरात अैसी नादानी नहीं कर सकता। मुझे अुर्दू लिपि लिखनेवालेसे की जानेवाली

नफ़रत पसन्द नहीं, फिर भी मैं अुसे समझ सकता हूँ। मगर लिपिसे नफ़रत कैसी ? अैसा करनेमें मुझे गुजरातियोंकी व्यापारी-बुद्धिकी कमी दिखाअी देती है। अिसमें विचारका अभाव मालूम होता है। गुजराती लोग व्यापारमें दुश्मन और दोस्तमें कोअी फर्क नहीं करते। दोनोंका पैसा अुन्हें प्यारा लगता है। अैसी व्यवहार-बुद्धि वे राजनीतिमें क्यों नहीं दिखाते ?

मुझे तो दिल्लीमें रोज हिन्दू और मुसलमान मिलते रहते हैं। अिनमें से ज़्यादातर हिन्दुओंकी भाषामें संस्कृतके शब्द कम-से-कम रहते हैं, फ़ारसीके हमेशा ज़्यादा। नागरी लिपि तो वे जानते ही नहीं। अुनके ख़त या तो अुर्दूमें या टूटी-फूटी अंग्रेज़ीमें होते हैं। अंग्रेज़ीमें लिखनेके लिअे मैं अुन्हें डाँटता हूँ, तो वे अुर्दू लिपिमें लिखते हैं। अगर राष्ट्रभाषा हिन्दी हो और लिपि नागरी, तो अिन सबका क्या हाल होगा ?

लेकिन मैं यह क़बूल करता हूँ कि हिन्दुस्तानी पर मेरा ज़ोर मुसलमान भाअियोंके ख़ातिर है। यहाँ मैं गुजरातके मुसलमानोंकी बात नहीं करता। वे तो अुर्दू जानते ही नहीं। वे बहुत मुश्किलसे अुर्दू सीखते हैं। अुनकी मातृभाषा गुजराती है। लेकिन अुत्तरके मुसलमानोंकी भाषा हिन्दुस्तानी है, अुर्दू नहीं। यानी अुनकी भाषा आसान अुर्दू है। गाँवोंके करोड़ों हिन्दू-मुसलमानोंका किताबोंसे बहुत कम लेना-देना होता है। अुनकी बोली हिन्दुस्तानी है। अिस बोलीको मुसलमान अुर्दू लिपिमें लिखेंगे, और कअी हिन्दू नागरीमें और कअी अुर्दू लिपिमें लिखेंगे। अिसलिअे मेरा और आपका यह धर्म है कि हम दोनों लिपियोंमें लिखें। अिस धर्मको गुजरातके भाअी-बहनोंने समझ-बूझकर अब तक पाला है। अुन्होंने अैसा करनेमें आनन्द माना है, कड़वा घूंट नहीं पिया है। अब क्या अुर्दू लिपि अुनके लिअे कड़वी हो गअी है ? मेरे लिअे तो वह आजके ज़हरीले वातावरणमें ज़्यादा मीठी बन गअी है। मुझे आज पाकिस्तानके बाहरके मुसलमान ज़्यादा प्रिय लगते हैं। अुन्हें अपनी रक्षाके

लिअे पाकिस्तानकी तरफ़ नहीं देखना है। अगर अैसा हुआ, तो यह मेरे और आपके हिन्दू धर्मके लिअे शर्मकी बात होगी। सनातन हिन्दू धर्म ओछा नहीं है। वह बड़ा अुदार धर्म है। वह कुअेंके मेंढककी तरह कुअेंको ही अपना देश नहीं मानता। वह अिन्सानका धर्म है। महाभारतके अेक मलयाली टीकाकारने कहा है कि महाभारत अिन्सानका अितिहास है। यही ठीक है। मगर अैसा हो या न हो, हिन्दू शब्द संस्कृतका नहीं है। सिन्धुके अिस पार रहनेवालोंको परदेशियोंने हिन्दू कहा और हमने वह शब्द पचा लिया। मनु किसी अेक आदमीका नाम नहीं है। अुनका बनाया हुआ शास्त्र मानव-धर्म-शास्त्र कहा जाता है। यह शास्त्र अिन्सानका है। अिसमें असल श्लोक कौनसे हैं और बादमें कौनसे जोड़े गये हैं, यह कहना मुश्किल है।

बाबू भगवानदास कुछ श्लोकोंको क्षेपक मानते हैं। आर्यसमाजने दूसरे कुछको क्षेपक माना है। श्लोकोंके अर्थ बैठानेमें भी कुछ बहस हुअी है। मैं तो यह मानता हूँ कि अुसमें से अक्लमन्दके दिल और दिमाग़को जो जँचे, वही मानव-धर्म-शास्त्र है। अुसमें सुधारनेकी व बढ़ानेकी हमेशा गुंजाअिश रही है। क्षेपक श्लोक भी अलग-अलग युगोंके अपने आपको सुधारक माननेवाले लोगोंके सफल या असफल प्रयत्न हैं।

अैसा मानव-धर्म-शास्त्र सब अिन्सानों पर लागू होना चाहिये। अुसमें जात-पाँतका भेद नहीं हो सकता। अुसके लिअे कोअी हिन्दू नहीं, मुसलमान नहीं, पारसी नहीं, अीसाअी नहीं, बल्कि सब अिन्सान हैं। अैसे शास्त्रको माननेवाले किसी तरहका भेद-भाव कैसे रख सकते हैं?

'अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्' अिस सनातन श्लोकके आधार पर मेरे और आपके लिअे तो, यह हिन्दुस्तान है और यह पाकिस्तान है, अैसा भेद ही नहीं रहना चाहिये। आज भले अैसा माननेवाले आप और मैं दो ही हों, मगर हम सच्चे होंगे, सच्चे रहेंगे, तो कल सब हमारे जैसे ही बन जायेंगे।

कांग्रेसकी हमेशा अैसी ही विशाल दृष्टि रही है। आज अिस दृष्टिकी और भी ज्यादा जरूरत है। हिन्दुस्तानके टूकड़े बंदूकके जोरसे हुअे हैं। बंदूकके जोरसे अुन्हें जोड़ा नहीं जा सकता। दोनोंके दिल अेक होंगे, तभी वे टुकड़े जुड़ेंगे।'

आजकी तैयारी अिससे अुलटी है। अिस हालतमें कांग्रेस-जनोंको मजबूत रहना चाहिये। राष्ट्रभाषा दो नहीं, अेक ही हो सकती है। वह संस्कृतसे भरी हिन्दी या फ़ारसीसे भरी अुर्दू नहीं हो सकती। वह तो दोनोंके सुंदर संगमसे ही बन सकती है, और अुर्दू या नागरी किसी भी लिपिमें लिखी जा सकती है। गरवीले गुजरात, तू अिस तूफ़ानके सामने झुक न जाना! जिन दांतोंने धान चबाया है, वे क्या कोयला चबावेंगे? मेरी चले, तो अैसा कभी न होने दूं।

'प्रेम-पंथ पावकनी ज्वाळा, भाळी पाछा भागे जोने।'

यह प्रीतम (कवि) ने हम सबके लिअे गाया है। हम अुस पर अमल करें। अुर्दू लिपिसे भागकर कायरोंकी तरह पीछे न हटें।

(हरिजनसेवक, १०-८-'४७)

२०

हिन्दुस्तानी

काकासाहब कालेलकर अेक खतमें लिखते हैं :

> " यूनियनके मुसलमान यूनियनके वफ़ादार रहेंगे, तो क्या वे हिन्दुस्तानी भाषाको राष्ट्रभाषा मानेंगे और हिन्दी-अुर्दू दोनों लिपियाँ सीखेंगे ? अिस बारेमें अगर आप अपनी राय नहीं बतावेंगे, तो हिन्दुस्तानी प्रचारका काम बहुत मुश्किल हो जायगा। मौलाना आज़ाद क्या अपने खयालात नहीं बता सकते ? "

काकासाहब जो कहना चाहते हैं, वह नअी बात नहीं है । लेकिन आज़ाद हिन्दमें यह बात यूनियनको ज्यादा जोरोंसे लागू होती है। अगर यूनियनके मुसलमान हिन्दुस्तानकी तरफ़ वफ़ादारी रखते हैं और हिन्दुस्तानमें खुशीसे रहना चाहते हैं, तो अुनको दोनों लिपियाँ सीखनी चाहियें।

हिन्दुओंकी तरफ़से कहा जाता है कि अुनके लिअे पाकिस्तानमें जगह नहीं, सिर्फ़ हिन्दुस्तानमें है । अगर कहीं अैसा मौक़ा आवे कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तानके बीच लड़ाअी छिड़ जाय, तो हिन्दुस्तानके मुसलमानोंको पाकिस्तानसे लड़ना होगा। यह ठीक है कि लड़ाअीका मौक़ा आना ही नहीं चाहिये । आखिरमें दोनों हुकूमतोंको अेक-दूसरीसे मिल-जुलकर काम करना होगा। अेक-दूसरीके प्रति दोस्ती होनी चाहिये। दो हुकूमतें होते हुअे भी काफी चीज़ें दोनोंके बीच अेक ही हैं। अगर वे दुश्मन बन जायें, तब तो कोअी भी चीज़ अेक नहीं हो सकती। दोनोंमें दिलकी दोस्ती रहे, तब तो प्रजा दोनोंकी तरफ़ वफ़ादार रह सकती है । यों तो दोनों राज अेक ही संस्थाके मेम्बर हैं। अुनमें दुश्मनी हो ही कैसे सकती है ? लेकिन अिस चर्चामें पड़नेकी यहाँ कोअी ज़रूरत नहीं।

हिन्दुस्तानमें सबकी बोली अेक ही हो सकती है। मैं तो अेक क़दम आगे बढ़कर कहता हूँ कि अगर दोनों राज अेक-दूसरेके दुश्मन नहीं, बल्कि दिलसे दोस्त बनते हैं, तो दोनों तरफ़ सब नागरी और अुर्दू लिपिमें लिखेंगे। अिसका मतलब यह नहीं कि अुर्दू ज़बान या हिन्दी ज़बान रह ही नहीं सकती। लेकिन अगर दोनोंको या सब धर्मियोंको दोस्त बनना है, तो सबको हिन्दी और अुर्दूके संगमसे जो आम बोली बन सकती है, अुसमें ही बोलना है। और, अुसी बोलीको अुर्दू या नागरी लिपिमें लिखना है। कम-से-कम हिन्दुस्तानमें रहनेवाले मुसलमानोंका अिम्तहान तो अिसमें हो जाता है, और यही बात हिन्दू, सिक्ख वग़ैराको भी लागू होती है। लेकिन मैं अैसा नहीं कहूँगा कि मुसलमान अगर दोनों लिपियाँ नहीं सीखते, तो अुर्दू और हिन्दीके मेलसे बननेवाली सबकी बोली राष्ट्रभाषा हो ही नहीं सकती। मुसलमान दोनों लिपियाँ सीखें या न सीखें, तो भी हिन्दू तथा हिन्दुस्तानके दूसरे धर्मियोंको दोनों लिपियाँ सीखनी चाहियें। आजकी ज़हरीली हवामें यह सादीसी-बात भी शायद लोग नहीं समझ सकेंगे। अुर्दू लिपिका और अुर्दू लफ्ज़ोंका हिन्दू जान-बूझकर बहिष्कार करना चाहें तो कर तो सकते हैं, लेकिन अुससे हम बहुत कुछ खोयेंगे। अिसलिअे जिन लोगोंने हिन्दुस्तानी-प्रचारका काम हाथमें लिया है, फिर वे दो-चार हों या करोड़ों, वे अिस सीधी-सादी बातको छोड़ नहीं सकते।

मैं अिसमें भी सहमत हूँ कि मौलाना अबुलकलाम आज़ाद साहब और हिन्दुस्तानके दूसरे अैसे मुसलमानोंको अैसी चीज़ोंमें नमूना बनना चाहिये। अगर वे न बनें, तो कौन बनेगा? हमारे सामने बहुत मुश्किल वक़्त आया है। अीश्वर हमको सन्मति दे!

(हरिजनसेवक, ५-१०-'४७)

२१

राष्ट्रभाषा — हिन्दी या हिन्दुस्तानी?

१

स० — हमारी राष्ट्रभाषा क्या होगी? हिन्दी या हिन्दुस्तानी?

ज० — अगर हम साम्प्रदायिक दृष्टिकोण छोड़ दें और साअिन्सकी नज़रसे अिस सवाल पर विचार करें, तो हम खुद ही अिस नतीजे पर पहुँचेंगे कि हिन्दुस्तानीको ही राष्ट्रभाषा बनानेमें हमारा हित है। वह न तो संस्कृत शब्दोंसे लदी हुअी हिन्दी हो, न फ़ारसी शब्दोंसे लदी हुअी अुर्दू, बल्कि अिन दोनों ज़बानोंका सुन्दर मेल हो। अुसमें अलग-अलग प्रान्तीय भाषाओं और विदेशी भाषाके शब्द भी, अुनके अर्थ, मिठास या सम्बन्धकी दृष्टिसे आज़ादीके साथ शामिल किये जायँ, बशर्त्ते वे हमारी राष्ट्रभाषामें पूरी तरहसे घुल-मिल सकते हों। अिस तरह हमारी राष्ट्रभाषा अेक अैसा ताक़तवर साधन बने, जिसके ज़रिये अिन्सानके सारे विचार और भाव प्रकट किये जा सकें। सिर्फ़ हिन्दी या अुर्दू तक अपनेको सीमित रखना समझदारी और राष्ट्रीयताके खिलाफ़ गुनाह करना होगा। अंग्रेज़ी भाषा दुनियाकी सारी भाषाओंसे सिर्फ़ अिसलिअे धनवान है कि अुसने सभी भाषाओंसे शब्द अुधार लिये हैं। अगर अंग्रेज़ीमें अिटली, ग्रीस, जर्मनी वग़ैराकी भाषाओंके शब्द लिये जा सकते हैं, तो व्याकरणकी दृष्टिसे कोअी फेरफार किये वग़ैर हम अपनी भाषामें अरबी-फ़ारसीके शब्द लेनेमें क्यों हिचकिचायें? साथ ही हमें दो लिपियाँ सीखनेसे क्यों घबराना चाहिये?

(हरिजनसेवक, १२-१०-'४७)

२

मैंने अखबारोंमें पढ़ा कि आगेसे यू० पी० की सरकारी भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। अिससे मुझे दुःख हुआ। हिन्दुस्तानी संघके सारे मुसलमानोंमें से अेक चौथाओ यू० पी० में रहते हैं। सर तेजबहादुर सप्रू जैसे कअी हिन्दू अैसे हैं, जो अुर्दूके विद्वान् हैं। क्या अुनको अुर्दू लिपि भूल जानी होगी ? अुचित बात यह है कि दोनों लिपियाँ रखी जायें और सारे सरकारी कामोंमें अुनमें से किसीका भी अुपयोग करनेकी मंजूरी दी जाय। अिसका नतीजा यह होगा कि लोग लाज़िमी तौर पर दोनों लिपियाँ सीखेंगे। तब भाषा अपनी परवाह आप कर लेगी और हिन्दुस्तानी सूबेकी भाषा बन जायगी। अिन दो लिपियोंकी जानकारी फिजूल नहीं जायगी। अुससे आप और आपकी भाषाकी तरक्की होगी। और अैसा क़दम अुठाने पर कोअी नुक्ताचीनी नहीं करेगा।

(हरिजनसेवक, २६-१०-'४७)

३

मैंने हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषाके तौर पर अपनानेके लिअे जो विचार बताये थे, अुसके सम्बन्धमें मेरे पास कअी खत आते रहते हैं। मुझे अिसमें जरा भी शक नहीं कि हिन्दुस्तानी सारे हिन्दुस्तानियोंके अन्त-र्प्रान्तीय व्यवहारके लिअे सबसे अच्छी भाषा होगी। आम लोग न तो फ़ारसीसे लदी अुर्दू समझ सकते और न संस्कृतसे भरी हिन्दी। ब्रिटिश राजके खतम हो जाने पर अंग्रेजी अदालतोंकी भाषा या आपसके व्यवहारका सामान्य माध्यम या ज़रिया नहीं रह सकती। अंग्रेजीने हमारी राष्ट्रभाषाकी जगह बरबस छीन ली थी, लेकिन अब अुसे जाना होगा।

में अंग्रेज़ीकी अपनी जगहमें अुसकी अिज्ज़त करता हूँ। लेकिन वह हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती। अेक आदरणीय दोस्तने यह सुझाया है कि अंग्रेज़ी भाषा जल्दी ही अुस पदसे हटा दी जायगी, जिस पर रहनेका अुसे हक़ नहीं है। लिखनेवाले दोस्तने यह डर ज़ाहिर किया है कि 'आपके बार-बार अिस बातको दोहरानेसे लोग अंग्रेज़ीके साथ-साथ अंग्रेज़ोंसे भी नफ़रत करने लगेंगे, जो अुसे बोलते हैं। मैं यह जानता हूँ कि बदक़िस्मतीसे अैसा हुआ, तो संभव है कि आप अचानक होनेवाली अिस दुःखभरी बातसे अितने दुःखी हों कि पागल बन जायें।' यह चेतावनी समयकी है। सभामें आकर मेरी बातें सुननेवालोंको यह जानना चाहिये कि मैं किसी काम और अुसके करनेवालेमें हमेशा भेद समझता हूँ। किसी कामसे नफ़रत की जा सकती है, लेकिन अुसके करनेवालेसे कभी नहीं। मैं यह जानता हूँ कि काम और कामके करने-वालेके भेदका विरले ही लोग ध्यान रखते हैं। लोग आम तौर पर अिन दोनोंमें कोअी भेद नहीं देखते और अुनकी निन्दाके दायरेमें काम और कामका करनेवाला दोनों आ जाते हैं। खत लिखनेवाले भाअीने मुझे अिस बातकी चेतावनी दी है कि 'राष्ट्रभाषाका विचार करते समय आपको अेंग्लो-अिण्डियन, गोआनी और दूसरे लोगोंका भी खयाल करना होगा, क्योंकि अंग्रेज़ी अुनकी मातृभाषा बन गअी है। क्या आपने कभी यह भी सोचा है कि हिन्दी या हिन्दुस्तानी — जो भी आखिरमें अन्तर्प्रान्तीय भाषा बने — भाषाका ज्ञान न होनेके कारण वे अेकदम नौकरियोंसे हटा दिये जायँगे? मैं जानता हूँ कि आप अैसा विचार कभी मनमें नहीं लायेंगे।' खत लिखनेवाले दोस्तका यह डर सच्चा है। फिर भी, मैं आशा करता हूँ कि दिये हुअे समयमें वे लोग काम चलाने लायक़ हिन्दुस्तानी सीख लेंगे। अल्पमतवालोंको, फिर वे कितनी ही कम तादादमें क्यों न हों, किसी तरहका दबाव महसूस नहीं करना

चाहिये। अैसे सब सवालोंको हल करनेमें ज़्यादा-से-ज़्यादा नरमीसे काम लेनेकी ज़रूरत है।

अुन्हीं अुत्साही दोस्तने मुझे यह भी याद दिलाया है कि मेरे दो लिपियाँ सीखने पर ज़ोर देनेसे संभव है दोनों लिपियाँ अपनी जगहसे हट जायें और अुनकी जगह रोमन लिपि ले ले। वे दोस्त रोमन लिपिके हिमायती हैं। लेकिन मैं अुनकी अिस बातको नहीं मानता। न मुझे यह डर है कि रोमन लिपि कभी देवनागरी और फ़ारसी लिपिकी जगह ले लेगी। मैं यहाँ अिस सवालकी दलीलोंमें नहीं जाना चाहता। मने सिर्फ़ यह दिखानेके लिअे अिस विषयका ज़िक्र किया कि अगर हम दो लिपियाँ सीखनेसे जी चुराते हैं, तो हमारी राष्ट्रीयता बिलकुल थोथी और दिखावटी है। अगर हममें देश-प्रेमकी भावना है, तो हमें खुशी-खुशी दोनों लिपियाँ सीख लेनी चाहियें। मैं आपको शेख अब्दुल्ला साहबकी मिसाल देता हूँ। आज दोपहरमें ही अुन्होंने मुझे बताया कि काश्मीरके जेलमें रहकर अुन्होंने आसानीसे हिन्दी और नागरी लिपि सीख ली है। शेख अब्दुल्ला अगर हिन्दी और नागरी लिपि सीख सके, तो दूसरे राष्ट्रवादी लोग भी ज़रूर आसानीसे अुन्हें सीख सकते हैं।

(हरिजनसेवक, २६-१०-'४७)

२२

दोनों लिपियाँ क्यों?

रैहाना बहन तैयबजी लिखती हैं:

"१५ अगस्तके बाद दो लिपिके बारेमें मेरे खयाल बिलकुल बदल गये और अब पक्के हो गये हैं। मेरे खयालसे अब वक़्त आ गया है कि अिस दो लिपिके सवाल पर खुल्लमखुल्ला और आम तौरसे साफ़ साफ़ चर्चा हो। अिसलिअे अगर आप ठीक समझें, तो अिस खतको 'हरिजन' में छापकर अुस पर चर्चा करें।

जब तक हिन्दुस्तान अखण्ड था और अुसे अखण्ड रखनेकी अुम्मीद थी, तब तक नागरी लिपिके साथ अुर्दू लिपिको चलाना मैं अुचित, बल्कि ज़रूरी मानती थी। आज हिन्दुस्तान, पाकिस्तान दो जुदे राज्य बन गये हैं (मुसलमानोंकी निगाहमें तो दो जुदे राष्ट्र)। हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा: नागरी हिन्दुस्तानकी खास और मान्य लिपि — फिर नागरीके साथ अुर्दूके गँठबंधनकी क्या ज़रूरत है? अिस सवाल पर मैं बराबर विचार करती रही हूँ और अब मेरा दृढ़ विश्वास हो गया है कि हिन्दुस्तान पर अुर्दू लिपि लादनेमें अितना ही नहीं कि कोअी फ़ायदा नहीं, बल्कि सख्त नुक़सान है। मैं मानती हूँ कि —

१. हिन्दू-मुस्लिम अैक्य और मैत्री भाषा या लिपिसे नहीं हो सकती — सिर्फ़ सामाजिक मेलजोलसे हो सकती है। यह

चीज़ में जीवनभर देखती आओी हूँ। मुसलमान खुद यही कहते आये हैं और अब भी कहते हैं। साथ मिलने-जुलने, रहने-सहने, खाने-पीने, खेलने-कूदने और कामकाज करनेसे ही अैक्य बढ़ सकता है। अुर्दू लिपि सामाजिक मेलजोलकी जगह कभी नहीं ले सकती।

२. मुसलमानोंको अगर आप वफ़ादार हिन्दुस्तानी बनाना चाहते हैं, तो अुनमें और बाक़ीके हिन्दुस्तानियोंमें अब कोओी फर्क़ नहीं करना चाहिये। अगर वे हिन्दुस्तानमें रहना चाहते हैं, तो और हिन्दुस्तानियोंकी तरह रहें, हिन्दुस्तानी सीखें, नागरी सीखें। अगर अुर्दूका आग्रह हो, तो बेशक अुन्हें अुर्दू सीखनेकी सहूलियतें दी जायें। मगर अुन्हें खुश करनेके खातिर हिन्दुस्तानकी सारी जनता पर अुर्दू लिपि क्यों लादी जाय? अिसमें मुझे सख्त अन्याय नज़र आता है और मैं अिसके बिलकुल खिलाफ़ हूँ। ग़ैर-मुसलमानों पर यह अन्याय कि अुन्हें फिजूल अेक अितनी मुश्किल, दोषपूर्ण और हिन्दुस्तानीके लिअे निकम्मी (अुर्दू लिपिमें साहित्यिक हिन्दुस्तानी लिखना महा कठिन है; क्योंकि संस्कृत शब्दोंकी बड़ी तोड़-मरोड़ करनी पड़ती है।) लिपि सीखनेमें अपनी शक्ति खर्च करनी पड़ती है; और मुसलमानों पर यह अन्याय कि अुन्हें अपना दुराग्रह छोड़नेका आप कोओी मौक़ा ही नहीं देते! अुनकी बेजा माँग पूरी करके आप अुनमें और अन्य अल्पसंख्यकोंमें अेक कृत्रिम फ़र्क़ पैदा कर देते हैं। अिससे ग़ैर-मुसलमानोंको चिढ़नेका हक़ मिलता है, और मुसलमानोंको अपनी अलग-थलग जमात बनाकर बैठ जानेका मौक़ा मिलता है। (अिस चीज़का सबूत मेरा अपना खानदान देता है।) अगर आपने अुर्दू लिपि भी चलाओी, तो मुसलमान सदा हिन्दमें परदेशी बनकर रहेंगे और कामचलाअू नागरीसे सन्तोष मानकर अपना सारा ही व्यवहार अुर्दूमें

चलायेंगे। यह मेरा अनुभवजन्य, अिसलिअे, दृढ़ विश्वास है। बापूजी! गुस्ताखी माफ़ — आप लोग मुसलमानोंसे अितने अलग रहे हैं कि आपको अुनके मानसकी बिलकुल खबर नहीं है। यही वजह है कि पाकिस्तान हो गया। और मुझे यक़ीन है कि अगर आपने नागरीके साथ अुर्दूको भी राष्ट्रलिपि बना ली, तो आप हिन्दुस्तानके भीतर अेक दूसरा पाकिस्तान खड़ा कर देंगे।

३. मैं मानती हूँ कि जो शक्ति आपको अुर्दू लिपिके प्रचारमें, हर किताबकी द्विलिपि बनानेकी तजवीज़ोंमें, कातिब, ब्लॉक्स और छपाअीकी हजामतोंमें खर्च करनी पड़ती है, सो अब खरे महत्त्वके कामोंमें लगानी चाहिये। हमें हिन्दुस्तानी भाषा बनानी है, कोष तैयार करने हैं, साहित्य खड़ा-करना है। अुर्दू लिपिके आग्रहसे हमारा बोझ चौगुना हो जाता है, काममें रुकावटें पैदा होती हैं और वक़्त फिजूल बिगड़ता है। अिसमें शक नहीं कि अुर्दू-हिन्दी दोनों जाने बिना हिन्दुस्तानी बनाना अशक्य है। लिहाज़ा, प्रचारकोंको, लेखकोंको, हमारे प्रचारक-मदरसाओंमें नागरी-अुर्दूका ज्ञान होना ज़रूरी है। लेकिन आम जनताको अुर्दू लिपिसे क्या गरज? अुसकी ज़बान हिन्दुस्तानी हो, तो बिलकुल काफ़ी है। पूज्य प्यारे बापूजी, मैंने आप लोगोंकी सारी दलीलें बड़े ध्यानसे सुनी हैं — और अेक भी गले नहीं अुतरती। अिसलिअे आज यह चर्चा कर रही हूँ। हम हिन्दुस्तानियोंका यही सूत्र रहे — हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, हमारी राष्ट्रलिपि नागरी। बस!

४. अब अेक मुस्लिम हिन्दुस्तानीकी हैसियतसे मेरी विनती है — खुदाके लिअे मुसलमान हिन्दुस्तानियोंको अपने ही मुल्कमें परदेशियोंकी तरह रहनेका प्रोत्साहन न दीजिये! वे तो यही चाहते हैं। आप ब्रिटेन और पाकिस्तानका खेल खेलते रहें, और

मुसलमान हर जगह बाजियाँ जीतते रहें। बापू, मैं बहुत घबराअी हुअी हूँ। मैं मुसलमान समाजसे वाकिफ़ हूँ। अुनकी महत्त्वाकांक्षायें मैं जानती हूँ—भले आप जानने या माननेसे अिनकार करें। ख़ुदाके लिअे मेरी बात पर ध्यान दीजिये।

आम तौरसे हिन्दवासी मुसलमानोंकी 'हिन्दुस्तानी' यानी 'अुर्दू'। वे कोअी और 'हिन्दुस्तानी' न जानते हैं, न मानते हैं। आकाशवाणी (रेडियो) की भाषा पर मुसलमानोंकी कड़ुअी टीका यह है कि, "भअी, अिस ज़बानको तो हम नहीं समझ सकते। कितने संस्कृत अल्फ़ाज़ हैं ?" 'समाज', 'भाषा', 'निर्णय', 'निश्चय', जैसे प्रचलित शब्द भी हमारे वफ़ादार मुसलमान हिन्दुस्तानियोंके लिअे हराम हैं। अगर सारी जनता अुर्दू सीख गअी, तो क्या आप मानते हैं कि मुसलमान अुर्दूके सिवा कुछ भी लिखे-पढ़ेंगे ? मैं नहीं मानती। और, मेरे अविश्वासके पीछे हिन्दवासी मुसलमानोंका सारा अितिहास पड़ा हुआ है।

बापू ! हाथ जोड़कर अर्ज़ है—सज्जनताके साथ क्या सत्यदर्शन (Realism) नहीं रह सकता ?"

यह ख़त सोचनेके क़ाबिल है। रैहानाबहनके दिलमें हिन्दू-मुस्लिमका भेद नहीं है। दोनों अेक हैं अैसा वह मानती हैं और वैसे ही बरतती हैं। मैं भी दोनोंमें भेद नहीं करता। हम दोनों मानते हैं कि हिन्दू और मुसलमानमें आचार-भेद है। पर वह भेद दोनोंको अलग नहीं रखता। धर्म दो हैं, फिर भी दोनोंकी जड़ अेक है।

तब भी रैहानाबहनकी बातमें मैं मूल देखता हूँ। हम दो लोग (नेशन) नहीं हैं। दो लोग माननेमें हम हिन्दुस्तानको बड़ा नुक़सान पहुँचावेंगे। क़ायदे आज़म भले दो लोग मानें और अैसे माननेवाले भले हिन्दू भी हों। लेकिन सारी दुनिया ग़लतीमें फँसे, तो क्या हम भी फँसें ? अैसा कभी नहीं हो सकता।

अगर राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी है, तो अुसे दोनों लिपियोंमें लिखनेकी छूट होनी चाहिये। अगर हम हिन्दूको या मुसलमानको अेक ही लिपिमें लिखनेके लिअे मजबूर करें, तो हम अुसके साथ ग़ैर-अिन्साफी करेंगे; और जब यह ग़ैर-अिन्साफी अल्पमत पर अुतरती है, तब बहुमतका गुनाह दुगुना माना जाय।

मैं नहीं कहता कि हिन्दुस्तानके चालीस करोड़को दोनों लिपियाँ सीखना है। अैसा अवश्य है कि जो सारे मुल्कमें फिरता है, जिसको अपने सूबेकी ही नहीं, बल्कि सारे मुल्ककी सेवा करनी है, अुसे दो लिपियाँ सीखनी ही चाहियें, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान।

अगर हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनना है, तो लिपि नागरी ही होगी; अगर अुर्दूको बनना है, तो लिपि अुर्दू ही होगी। अगर हिन्दी-अुर्दूके संगमके ज़रिये हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषा बनना है, तो दोनों लिपियाँ जरूरी हैं। याद रखना चाहिये कि आज सचमुच अुर्दू लिपि या अुर्दू भाषा सिर्फ़ मुसलमानोंकी नहीं है। अैसे असंख्य हिन्दू हैं, जिनकी मादरी जबान अुर्दू है और वे अुसे अुर्दू लिपिमें ही लिखते हैं। यह भी याद रखना चाहिये कि दो लिपियोंकी बात आजकी नहीं है। मैं जब हिन्दुस्तानमें आया, तबसे यह बात चली है। यही विचार मैंने अिन्दौरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सामने रखे थे। अुस वक़्त अगर कोअी विरोध हुआ था, तो नहींके बराबर था। अुसका मुझे स्मरण भी नहीं है। हाँ, नाम मैंने हिन्दी ही क़ायम रखा था; व्याख्या वही की थी, जो आज करता हूँ। मेरे खयालसे आज जब विचारोंकी अुथल-पुथल हो रही है, तब हमारी पतवार सिर्फ़ अेक और मजबूत होनी चाहिये।

जब तक अुर्दू लिपिका सम्बन्ध मुसलमानोंसे माना जाता है, तब तक हमारा फ़र्ज़ है कि हम हिन्दुस्तानीके नाम पर और दोनों लिपियों पर क़ायम रहें। यह बात सबको साफ़ समझमें आने जैसी है। किसी

भी कारणसे हो, हमने कओी जगह यूनियनमें मुसलमानों पर ज्यादतियां की हैं। पाकिस्तानमें हिन्दुओं और सिक्खों पर ज्यादतियां शुरू हुओीं, अिसलिअे यूनियनमें हिन्दुओं और सिक्खोंने मुसलमानों पर कीं, अैसा जवाब हमारी तरफसे ज्यादतियोंके समर्थनमें हो नहीं सकता। अिसे मैं मुस्लिम भाअियों पर नागरीको 'लादना' कहूँगा। हां, अगर मुसलमान अुर्दू लिपिमें ही लिखें और अुर्दू व हिन्दुस्तानीमें कोओी फर्क़ ही न समझें, तो मैं अुसे मुस्लिम भाअियोंकी हठ कहूँगा। शायद अैसा भी माना जायगा कि अुनका दिल हिन्दुस्तानमें नहीं है।

रैहानाबहनका यह कहना कि अुर्दू लिपिको नागरीके साथ रखनेमें मुसलमानोंको राज़ी रखनेकी या अुनकी खुशामद करनेकी बात होगी, ग़ैर-समझकी बात है। राज़ी रखना कभी फर्ज़ होता है और किसी वक़्त गुनाह भी होता है। भाअीका अपने भाअीको राज़ी रखनेके लिअे अुत्तरमें जानेके बदले कभी दक्खिनमें जाना फर्ज़ हो सकता है, लेकिन शराब पीना गुनाह होगा। अिस तरह तो वह अपना और अपने भाअीका बुरा करेगा। मुसलमान भाअीको राज़ी रखनेके लिअे मैं कलमा नहीं पढ़ सकता, न वह मुझे राज़ी रखनेके लिअे गायत्री पढ़ सकता है। कलमा और गायत्री दोनों अेक ही चीज़ें हैं, अैसा मानकर ही दोनों अेक-दूसरेको समझ सकते हैं। लेकिन यह दूसरी बात है, और अैसा होना भी चाहिये। अिसीलिअे तो अेकादश व्रतमें सर्वधर्म-समानताको जगह दी गअी है।

निचोड़ यह आया कि सबको राज़ी रखनेमें दोष ही है, अैसा नहीं कह सकते। बल्कि बाज दफा वही फर्ज़ होता है।

बहन फिर लिखती हैं कि नागरी लिपि प्रमाणमें पूर्ण है, अुर्दू प्रमाणमें अपूर्ण। अुर्दू पढ़नेमें मुश्किल है और संस्कृतके शब्द अुर्दूमें लिखे ही नहीं जाते। अिस कथनमें थोड़ा वजूद है सही। अिसका अर्थ यह हुआ कि नागरी लिपि पूर्ण होते हुअे भी सुधार मांगती है; वैसे ही

अुर्दू लिपि अपूर्ण होनेके कारण सुधार माँगती है। संस्कृत शब्द अुर्दूमें लिखे ही नहीं जाते, अैसा कहना ठीक नहीं है। मेरे पास सारी गीता अुर्दू लिपिमें लिखी पड़ी है। लिपियोंमें सुधार तब हो सकता है, जब वे गिरोहबन्दी और जनूनका कारण नहीं रहतीं। 'सिंधी लिपि अुर्दूका सुधार ही है न?

अन्तमें रैहानाबहनसे मैं प्रार्थना करूँगा कि अुनका खत हिन्दुस्तानीका अेक नमूना है। अुसमें अरबी शब्द हैं, तो संस्कृत शब्द भी हैं। हिन्दुस्तानीकी खूबी ही यह है कि अुसे न संस्कृतसे वैर है, न अरबी-फ़ारसीसे। हिन्दुस्तानी तो ताक़तवर तब बनेगी, जब वह अपनी मिठासको क़ायम रखकर दुनियाकी सब भाषाओंका सहारा लेगी। लेकिन अुसका व्याकरण तो हमेशा हिन्दी ही रहेगा। 'हिन्दू' का बहुवचन 'हिन्दुओं' है, 'हनूद' नहीं। रैहानाबहन अुर्दू अच्छी जानती हैं और हिन्दी भी। दोनों लिपियोंमें लिख भी सकती हैं। जब मैं यरवदा जेलमें था, तब वह और जोहराबहन अन्सारी मुझे अुर्दूके पाठ खतोंकी मारफ़त सिखाती थीं। मेरी सलाह है कि वह अपना वक़्त हिन्दुस्तानीको बढ़ानेमें और दोनों लिपियाँ आसानीसे सिखानेमें दें। यह काम वह तभी कर सकती हैं, जब अुनका अपना अज्ञान दूर हो। अगर वह जो मानने लगी हैं सो ठीक है, तो मुझे कुछ कहनेको नहीं रह जाता। तब तो मुझे अेक नया पाठ सीखना होगा और अुर्दू लिपिको जो जगह मैं देता हूँ, अुसे भूलना होगा।

(हरिजनसेवक, ९-११-'४७)

२३

अुर्दू 'हरिजन'

१

पाठक जानते हैं कि नागरी लिपिमें और अुर्दू लिपिमें भी अिसी नामसे अलग-अलग साप्ताहिक 'हरिजन' निकलता है। अुर्दू लिपिमें जो निकलता है, वह अुर्दू 'हरिजन' है। अुसकी गिरती हुअी हालतके बारेमें श्री जीवणजी लिखते हैं —

"आज आपको अुर्दू 'हरिजनसेवक' के बारेमें लिखनेकी ज़रूरत आ पड़ी है। अिस वक़्त अिस पत्रकी मुश्किलसे ढाअी सौ कापियाँ खपती हैं। हम लोगोंने जब अिसे शुरू किया था, तब अिसकी लगभग अठारह सौ कापियाँ खपती थीं। धीरे-धीरे बिक्री कम हो गअी; खास करके लाहोरके दंगेके बाद। पहले अकेले लाहोर शहरमें पाँच सौसे सात सौ कापियाँ जाती थीं। मौजूदा हिसाबसे अिसे चालू रखें, तो दर माह डेढ़ हजार रुपयोंका नुक़सान सहना पड़े; यानी साल भरमें बीसेक हज़ारका नुक़सान हो। आप कभी नहीं चाहेंगे कि अखबारको अिस तरह चालू रखा जाय। सच पूछा जाय तो सितम्बरमें मैं आपसे बिड़ला भवनमें मिला था, तब अिस बारेमें आपने मुझसे बात की ही थी। मगर मुझे अुम्मीद थी कि देशका वातावरण सुधरने पर अिस हालतमें फेर पड़ेगा। अिसके सिवा, मेरे मनमें अेक ख़याल यह था कि लोकसभामें कोअी निश्चित ठहराव पास न हो जाय, तब तक नुक़सान अुठाकर भी अिसे चालू रखा जाय, जिससे किसी तरहकी ग़लतफ़हमी न हो। अभी लोकसभाकी बैठक अप्रेलमें होगी। अिसके बाद भी ठहरावका काम कब होगा, यह दूसरा सवाल है। अिस तरह अिस अखबारको अभी चार महीने और चालू रखें, तो कोअी खास हर्ज नहीं है; पाँच

छः हज़ारका ज़्यादा नुकसान सहना पड़ेगा। अिस तरह पूरी परिस्थितिका ख़याल करके आप अपना जो निर्णय देंगे, अुसके मुताबिक़ में काम करूँगा। मौजूदा कलुषित वातावरणमें हमारा अख़बार बन्द होनेसे ग़लतफ़हमी न बढ़े, अिसका ख़ास विचार रखना होगा।"

मेरी हमेशा यह राय रही है कि नुक़सान अुठाकर कोअी अख़बार न निकाला जाय। लोगोंको जिस अख़बारकी ज़रूरत हो, अुसे वे क़ीमत देकर लें। जो अख़बार विज्ञापन या अिश्तहार छापकर अपना ख़र्च निकाले, अुसे मैं स्वावलम्बी अख़बार नहीं मानता। अुर्दू 'हरिजन' को नुक़सान अुठाकर अितना भी चलने दिया, अिसका कारण यह था कि 'हरिजन' की अलग-अलग भाषाकी प्रतियोंमें कुल मिलाकर नुक़सान नहीं हो रहा था। मगर अिस तरह अख़बार निकालनेकी भी कोअी हद होती है। हिन्दुस्तानी और दो लिपियोंके बारेमें मेरे विचार पहले जैसे ही हैं। अिसलिअे अभी थोड़े समय तक जैसे चलता है वैसे ही अुर्दू अख़बार निकलता रहेगा। अिस अरसेमें गुजराती 'हरिजन' पढ़नेवाले और दूसरे लोग सोच लें कि वे अुर्दू 'हरिजन' निकलवाना चाहते हैं या नहीं। अगर चाहते हैं, तो अुन्हें अुसके ग्राहक बढ़ानेमें तब तक मदद करनी चाहिये, जब तक अुनकी तादाद दो हज़ार तक न पहुँच जाय। अिसके साथ ही वे दूसरी बात भी सोच लें। अगर अुर्दू लिपि पसन्द न पड़ती हो, और अुर्दू लिपिमें 'हरिजन' बन्द करना पड़े, तो नागरी लिपिमें 'हरिजन' न निकालनेका धर्म पैदा होगा। नागरी लिपिमें 'हरिजन' निकालनेका स्वतंत्र धर्म मैं नहीं समझता। सुधारकके नाते मेरा धर्म है कि या तो मैं दोनों लिपियोंमें अख़बार निकालूँ या फिर अेकमें भी नहीं।

'हिन्दी' नाम न रखकर 'हिन्दुस्तानी' क्यों रखा और नागरी-अुर्दू दोनों लिपियोंका आग्रह क्यों है, अिसके बारेमें पहले अच्छी तरहसे

लिखा जा चुका है। अब मुझे कोअी नअी दलील नहीं सूझती। यह लेख सिर्फ़ अितना बतलानेके लिअे लिखा है कि अुर्दू लिपिमें निकलनेवाले 'हरिजन' को किस तरह चालू रखा जा सकता है। मैं यह माननेकी हिम्मत रखता हूँ कि मेरी आशा सफल होगी।

(हरिजनसेवक, ४-१-'४८)

२

क़रीब दो हफ़्ते हुअे, मैंने गुजराती 'हरिजन' में अिशारा किया था कि बिक्री कम हो रही है, अिसलिअे अुर्दू 'हरिजन' शायद बन्द करना पड़ेगा। घाटेका सवाल छोड़ दें, तो भी जब माँग नहीं, तब अुसे छापनेमें कोअी अर्थ नहीं। बिक्रीका गिरना मेरे लिअे तो अिस बातकी निशानी है कि लोगोंको यह चीज़ पसन्द नहीं है। लोग अिससे नाराज़ हैं। अगर मैं अिस चीज़की तरफ़ ध्यान न दूँ, तो मेरी मूर्खता होगी।

मेरे विचार बदल नहीं सकते; खासकर हमारे अितिहासके अिस अनोखे मौक़े पर। मैं मानता हूँ कि खास सिद्धान्तका सवाल न हो, तो मुसलमानों या किसी दूसरेको दुःख देनेवाली कोअी बात करना ग़लती है। जो नागरी लिपिके अलावा अुर्दू लिपि सीखनेकी तकलीफ़ अुठावेंगे, अुन्हें कोअी नुक़सान पहुँचनेवाला नहीं। अुन्हें यह फ़ायदा होगा कि वे अुर्दू भी सीख जावेंगे। हमारे देशमें बहुतसे लोग अुर्दू जानते हैं। अगर आज हमारी विचारधारा टेढ़ी न चलती, तो यह सीधी-सादी बात समझनेके लिअे किसी दलीलकी ज़रूरत ही न थी। अुर्दू लिपिमें कअी कमियाँ हैं। मगर खूबसूरती और शानमें वह दुनियाकी किसी भी लिपिका मुक़ाबला कर सकती है। जब तक अरबी-फ़ारसी ज़िन्दा हैं, अुर्दू लिपि मर नहीं सकती, अगरचे अुर्दूकी आज अपनी स्वतंत्र हैसियत है, और अुसे बाहरकी मददकी ज़रूरत ही नहीं। थोड़ीसी तबदीली करनेसे अुर्दू लिपि शार्ट हैण्डका काम दे सकती है। नेशनल लिपिके तौर पर अगर पुराने बन्धन निकाल दिये जावें, तो अुर्दू लिपिमें अैसा फेरफार किया जा

सकता है कि विना किसी तकलीफ़के अुसमें संस्कृतके श्लोक लिखे जा सकें।

आखिरमें मुझे यह कहना है कि जो लोग ग़ुस्सेमें आकर अुर्दू लिपिका वहिष्कार करते हैं, वे यूनियनके मुसलमानोंकी खामखाह वेअदवी करते हैं। अुनकी आँखोंमें ये मुसलमान आज अपने देशमें परदेशी हो गये हैं। यह तो पाकिस्तानके वुरे तरीक़ोंकी नक़ल करना हुआ, और वह भी वढ़ाचढ़ाकर। मेरी हरअेक हिन्दुस्तानीसे यह माँग है कि वह पाकिस्तानकी वुराअीकी नक़ल करनेसे अिनकार करे। अगर मैंने जो लिखा है, अुसे वे पूरी तरह समझेंगे, तो हिन्दी और अुर्दू 'हरिजन' को वन्द होनेसे वचा लेंगे। क्या मुसलमान भाअी अिस मौक़े पर पूरे अुतरेंगे? अुन्हें दो चीज़ें करना है। अुर्दू 'हरिजन' खरीदना और मेहनतसे नागरी लिपि सीखकर अपने दिल और दिमाग़को फ़ायदा पहुँचाना।

(हरिजनसेवक, १८-१-'४८)

२४

कुछ सवाल

शिलांगसे श्री रमेशचंद्रजी पूछते हैं:

१. "राष्ट्रभाषाको 'हिन्दी' कहिये या 'हिन्दुस्तानी', यह कोअी खास विवादका सवाल नहीं है। रोजमर्राकी वातचीतमें तो चालू हिन्दुस्तानी काममें आयेगी ही। अूँचे साहित्य, विज्ञान व अैसे दूसरे विषयोंके लिअे नये शब्दोंका कोश संस्कृत भाषासे ही वनेगा, अिससे भी शायद ही कोअी अिनकार करेगा। यह वात साफ़ साफ़ सवको वतलाअी जाय, तो क्या हर्ज है?"

अिस सवालका पहला हिस्सा तो ठीक है। अगर अेक नामके सव अेक ही मानी करें, तो झंझट रहती ही नहीं। झगड़ा नामका नहीं

है, कामका है। काम अेक हो, तो अनेक नामका विरोध वितंडावाद होगा।

अूँचे साहित्य और विज्ञानके शब्द संस्कृतसे ही क्यों हों? अिस बारेमें कोअी आग्रह होना ही नहीं चाहिये। अेक छोटी-सी समिति अैसे शब्दोंका कोश बना सकती है। अिसमें बात होगी चालू शब्दोंको अिकट्ठा करनेकी। मान लीजिये कि अेक अंग्रेजी शब्द हिन्दुस्तानीमें चल पड़ा है। अुसे निकालकर हम क्यों खास संस्कृत शब्द बनावें? अैसे ही अगर अंग्रेजीका चलता शब्द ले लें, तो अुर्दू क्यों नहीं? 'कुरसी' शब्दके लिअे 'चतुष्पाद-पीठिका' लें कि बिना रोक-टोकके 'कुरसी' लें? अैसी मिसालें और भी निकल सकती हैं।

२. "जो मसला है, सो लिपिका है। दो लिपि चालू होते हुअे भी यह सवाल (और ठीक सवाल) सभी करते हैं कि दो लिपिका चलन राष्ट्रके कामको चलानेमें बेकार बोझ साबित होगा। तब दो लिपिके बदले अेक लिपि, जो सभी प्रान्तोंके लिअे सहज और आसान है, क्यों न मानी जाय?

"दो लिपि माननेके मानी भी मैं समझना चाहता हूँ। क्या अुसका यह मतलब होगा कि केन्द्रीय सरकारकी सब जाहिरात दोनों लिपियोंमें छापी जायगी?

"फिर, तार-घर वग़ैरासे जो तार आदि निकलेंगे, वे तो किसी अेक ही लिपिमें लिखे जायेंगे। दूसरी लिपिका अुपयोग अिन जगहोंमें किस तरह हो सकेगा, यह भी मैं जानना चाहता हूँ।

"मैं यह माननेको तैयार नहीं हूँ (हालांकि बहुतेरे लोग अैसा कहते हैं) कि दूसरी लिपि मुसलमान भाअियोंको खुश करनेके लिअे रखी गअी है। हमें तो यह देखना चाहिये कि किसी पर भी अन्याय किये बिना राष्ट्रका भला किस लिपिके चलनेमें होगा।

नागरीके चलनसे मुसलमान भाअियोंको नुक़सान होगा, अैसा मानना तो ठीक नहीं है।

"जहाँ तक मैं समझता हूँ, दोनों लिपिका चलन थोड़े अरसेके लिअे ही ज़रूरी है; जिससे कि वे लोग, जो अिन लिपियोंके जानकार नहीं हैं, धीरे-धीरे जान जायँ। आखिरमें सभी अेक लिपिको अपनायेंगे, अिसमें कैसे सन्देह हो सकता है?"

दो लिपिको रखते हुअे आखिरमें जो आसान होगी वही चलेगी। यहाँ बात अितनी ही है कि अुर्दूका बहिष्कार न हो। अिस बहिष्कारमें द्वेष है। अिस झगड़ेकी जड़में द्वेष था, आज वह बढ़ गया है। अैसे मौक़े पर हम, जो अेक हिन्दुस्तान चाहते हैं, और वह हथियारोंकी लड़ाअीसे नहीं, अुनका फ़र्ज़ होता है कि दोनों लिपिको जगह दें। हम यह भी न भूलें कि बहुतेरे हिन्दू व सिक्ख पड़े हैं, जो नागरी लिपि जानते ही नहीं। मुझे अिसका तजरबा हमेशा होता है।

करोड़ोंको दोनों लिपि सिखानेकी बात नहीं है। जिनको अपने सूबेसे बाहर काम करना है, अुन्हें वे सीखनी चाहियें। केन्द्रके दफ्तरमें सब कुछ दोनों लिपियोंमें छापनेकी बात भी नहीं है। जो अिश्तहार सबके लिअे हों, अुन्हें दोनों लिपियोंमें छापना ज़रूरी है। जब दोनों क़ौमोंके बीच ज़हर फैल गया है, तब अुर्दू लिपिका बहिष्कार लोक-वाद (जमहूरियत)का विरोध ही बताता है।

तार आदि जब रोमन लिपिमें नहीं लिखे जायेंगे, तब शायद अुर्दू या नागरी लिपिमें लिखे जायेंगे। अिसे मैं छोटा सवाल मानता हूँ। जब हम अंग्रेज़ीका और रोमन लिपिका मोह छोड़ेंगे, तब हमारा दिल और दिमाग़ अैसा साफ़ हो जायगा कि हम अिस झगड़ेके लिअे शरमायेंगे।

किसीको राज़ी रखनेके लिअे कोअी बेजा काम हम कभी न करें। पर राज़ी रखना हर हालतमें गुनाह नहीं है।

अेक ही लिपिको सब खुशीसे अपनावें, तो अच्छा ही है। अैसा होनेके लिअे भी दो लिपियोंका चलना आज जरूरी है।

(हरिजनसेवक, ११-१-'४८)

२५

क्रोध नहीं, मोह नहीं

अेक भाअी लिखते हैं:

"अुर्दू 'हरिजन' के बारेमें आपका लेख देखा। यदि वह आपका लिखा न होता, तो मैं यही समझता कि किसीने बहुत ही क्रोधमें लिखा है। जीवणजीभाअीने जो कुछ लिखा है, अुससे सिर्फ़ यही साबित होता है कि लोगोंको अुर्दू लिपिमें 'हरिजन' की ज़रूरत नहीं है। पर आप अुसके कारण नागरी 'हरिजनसेवक' को क्यों बन्द करें? क्या आप समझते हैं कि पहले हिन्दी 'नवजीवन' निकालते थे (अुर्दू नहीं), तब कोअी गुनाह करते थे? अुसके बाद भी नागरी 'हरिजनसेवक' निकलता रहा, पर आपने अुर्दू 'हरिजन' अुस समय नहीं निकाला।

"अगर आपने अुर्दू और नागरी 'हरिजन' केवल हिन्दुस्तानीका प्रचार करनेके लिअे निकाले होते, तो बात ठीक थी। पर नागरी 'हरिजनसेवक' पहलेसे ही निकल रहा है। अुसमें घाटा हो तो आप भले ही बन्द करें। आपने जो चेतावनी नागरी 'हरिजन-सेवक' बन्द करनेकी दी है, अुसमें मुझे अेक प्रकारका बलात्कार लगता है।

"क्या अंग्रेजी 'हरिजन' से भी ज्यादा नागरी 'हरिजनसेवक' ने गुनाह किया है? सच बात तो यह है कि पहले अंग्रेजीका 'हरिजन'

वन्द हो जाना चाहिये। पर होता यह है कि अंग्रेज़ी 'हरिजन' को जितना महत्त्व मिलता है, अुतना दूसरे संस्करणोंको नहीं।

"यह कितने वड़े दुःखकी वात है कि आप अपने प्रार्थना-प्रवचन हिन्दुस्तानीमें देते हैं। अुनका सारांश आपके दफ़्तरमें अंग्रेज़ीमें होता रहा है और फिर अुसका अुल्था नागरी और अुर्दू 'हरिजन' में छपता था, यह कहकर कि 'अंग्रेज़ीसे'। अव तो यह नहीं लिखा रहता। शायद अव सीवा हिन्दुस्तानीमें ही लिखा जाता हो।

"आपने कअी वर्ष पहले लिखा था कि जहाँ तक सम्भव होगा आप केवल गुजराती या हिन्दुस्तानीमें ही लिखेंगे और अुसका अुल्था अंग्रेज़ीमें आवेगा। पहले अैसा चला भी, लेकिन वादमें यह सिलसिला शिथिल हो गया।

"मैं फिर आपसे अनुरोव करता हूँ कि आप अंग्रेज़ी 'हरिजन' वन्द कर दें और दूसरे संस्करण जारी रखें।"

जो वात वाक़अी सही है, वह अगर कही जाय, तो अुसे क्रोध मानना शव्दका सही प्रयोग नहीं होगा। क्रोधमें आदमी वेतुका काम कर लेता है। अगर अुर्दू 'हरिजन' वन्द करना पड़ा, तो साथ-साथ नागरी भी वन्द करना लाज़िमी यानी आवश्यक हो जाता है। लाज़िमी वात करनेमें क्रोध कैसा? जिसे मैं लाज़िमी समझूँ, अुसे दूसरे न भी समझें, जैसे कि अिस पत्रके लेखक। अुससे मुझे क्या? हम जिसे लाज़िमी मानें, वही सारा जगत भी माने अैसा हो तो अच्छा है, लेकिन अैसा होता नहीं है। हर चीज़के कम-से-कम दो पहलू होते ही हैं।

अव यह वतानेका रहा कि अेकको छोड़ूँ या दोनोंको। यह ठीक है कि जव मैंने नागरीमें 'नवजीवन' निकाला और 'हरिजन' निकालना

शुरू किया, तब दोनों लिपिकी चर्चा नहीं थी। अगर थी, तो मुझे अुसका पता नहीं था।

बीचमें स्व० भाअी जमनालालजीकी अिच्छासे हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा क़ायम हुअी। अिससे अुर्दू रिसाला निकालना लाज़िमी हो गया। अब माना कि अुर्दू रिसाला बन्द हो और नागरी निकलता रहे, तो यह मेरी निगाहमें बड़ा ही अनुचित होगा। क्योंकि हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके हिन्दुस्तानीके मानी यह हैं कि वह जैसे नागरी लिपिमें लिखी जाती है, वैसे ही अुर्दू लिपिमें भी लिखी जा सकती है।

अिसलिअे जो अखबार दोनों लिपियोंमें निकलता था, अुसे अैसे ही निकलना चाहिये। वह भी अेक अैसे मौक़े पर जब कि हिन्दके लोग चारों ओरसे कह रहे हैं कि राष्ट्रभाषा हिन्दी ही है और वह नागरी लिपिमें ही लिखी जाय। यह विचार ठीक नहीं है, यह बताना मेरा काम हो जाता है। यह दलील अगर ठीक है, तो मेरा कर्तव्य हो जाता है कि मैं नागरी लिपिके साथ अुर्दू लिपिको भी रखूं; और न रख सकूं तो मुझे अुर्दू 'हरिजनसेवक' के साथ नागरी 'हरिजनसेवक' का भी त्याग करना चाहिये।

लिपियोंमें मैं सबसे आला दरजेकी लिपि नागरीको ही मानता हूं। यह कोअी छिपी बात नहीं है। यहां तक कि मैंने दक्षिण अफ्रीकासे गुजराती लिपिके बदलेमें नागरी लिपिमें गुजराती खत लिखना शुरू किया था। अिसे मैं समय न मिलनेके कारण आज तक पूरा न कर सका। नागरी लिपिमें भी सुधारके लिअे गुंजाअिश है, जैसे कि क़रीब-क़रीब सब लिपियोंमें है। लेकिन यह दूसरा विषय हो जाता है। यह अिशारा जो मैंने किया है, सो यह बतानेके लिअे कि नागरी लिपिका विरोध मेरे मनमें ज़रा भी नहीं है। लेकिन जब नागरीके पक्षपाती अुर्दू लिपिका विरोध करते हैं, तब अुसमें मुझे द्वेषकी और असहिष्णुता यानी तअस्सुबकी बू आती है। विरोधियोंमें अितना भी आत्म-विश्वास नहीं है कि नागरी लिपि यदि सम्पूर्ण है — दूसरी लिपियोंके मुक़ाबलेमें

पूर्ण है, तो अुसीका साम्राज्य अन्तमें होगा। अिस निगाहसे देखा जाय, तो मेरा फैसला निर्दोष लगना चाहिये और ज़रूरी भी।

हिन्दुस्तानीके बारेमें मेरा पक्षपात है सही। मैं मानता हूँ कि नागरी और अुर्दू लिपिके बीच अन्तमें जीत नागरी लिपिकी ही होगी। अिसी तरह लिपिका खयाल छोड़कर भाषाका ही खयाल करें, तो जीत हिन्दुस्तानीकी ही होगी। क्योंकि संस्कृतमयी हिन्दी बिलकुल बनावटी है और हिन्दुस्तानी बिलकुल स्वाभाविक। अुसी तरह फ़ारसीमयी अुर्दू अस्वाभाविक और बनावटी है। मेरी हिन्दुस्तानीमें फ़ारसी लफ़्ज़ बहुत कम आते हैं, तो भी मेरे मुसलमान दोस्तों और पंजाबी तथा अुत्तरके हिन्दुओंने मुझे सुनाया है कि मेरी हिन्दुस्तानी समझनेमें अुन्हें दिक्क़त नहीं होती। हिन्दीके पक्षमें मैं तो बहुत कम दलील पाता हूँ। खूबी यह है कि पहले पहल जब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें मैंने हिन्दीकी व्याख्या की, तब अुसका विरोध नहींके बराबर था। विरोध कैसे शुरू हुआ अिसका अितिहास बड़ा करुणाजनक है। मैं अुसे याद भी नहीं रखना चाहता। मैंने यहाँ तक बताया था कि 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' नाम ही राष्ट्रभाषाके प्रचारके लिअे सूचक नहीं था, न आज भी है।

लेकिन मैं साहित्यके प्रचारकी दृष्टिसे सदर नहीं बना था। स्व० भाअी जमनालालजी और दूसरे अनेक मित्रोंने मुझे बताया था कि नाम चाहे कुछ भी हो, अुन लोगोंका मन साहित्यमें नहीं था; अुनका दिल राष्ट्रभाषामें ही था। और अिसीलिअे मैंने दक्षिणमें राष्ट्रभाषाका प्रचार बड़े ज़ोरोंसे किया।

अुपवासके छठे दिन प्रातःकालमें प्रार्थनाके बाद लेटे-लेटे मैं यह लिख रहा हूँ। कितने ही दुःखदायी स्मरण ताज़ा होते हैं, पर अुन्हें और बढ़ाना मुझे अच्छा नहीं लगता है।

नामका झगड़ा मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है। नाम कुछ भी हो, लेकिन काम अैसा हो कि जिससे सारे राष्ट्रका — मुल्कका — देशका कल्याण हो। अुसमें किसी भी नामका द्वेष होना ही नहीं चाहिये।

"सारे जहाँसे अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा", अिक़वालके अिस वचनको सुनकर किस हिन्दुस्तानीका दिल नहीं अुछलेगा? अगर न अुछले, तो मैं अुसे कमनसीव समझूँगा। अिक़वालके अिस वचनको मैं हिन्दी कहूँ, हिन्दुस्तानी कहूँ, या अुर्दू? कौन कह सकता है कि अिसमें राष्ट्र-भाषा नहीं भरी है, अिसमें मिठास नहीं है, विचारकी वुजुर्गी नहीं है? भले ही अिस विचारके साथ आज मैं अकेला होअूँ, यह साफ़ है कि जीत कभी संस्कृतमयी हिन्दीकी होनेवाली नहीं है, न फ़ारसीमयी अुर्दूकी। जीत तो हिन्दुस्तानीकी ही हो सकती है। जव हम अन्दरूनी द्वेप-भावको भूलेंगे, तव ही अिस वनावटी झगड़ेको भूल जायँगे, अुससे शरमिन्दा होंगे।

अव रही अंग्रेज़ी 'हरिजन' की वात। अिसे मैं छोटी वात मानता हूँ। अंग्रेज़ी 'हरिजन' को मैं छोड़ नहीं सकता। क्योंकि अंग्रेज़ लोग और अंग्रेज़ीके विद्वान् हिन्दुस्तानी लोग मानते हैं कि मेरी अंग्रेज़ीमें कुछ ख़ूवी है। पश्चिमके साथका मेरा सम्वन्ध भी वढ़ रहा है। मुझमें अंग्रेज़ोंका या दूसरे पश्चिमी लोगोंका द्वेप न कभी था, न आज है। अुनका कल्याण मुझे अुतना ही प्रिय है जितना कि हमारे देशका। अिसलिअे मेरे छोटेसे ज्ञान-भण्डारमें से अंग्रेज़ी भापाका वहिष्कार कभी नहीं होगा। मैं अुस भापाको भूलना नहीं चाहता, न यह चाहता हूँ कि सारे हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ी भापाको छोड़ें या भूलें। मेरा आग्रह हमेशा अंग्रेज़ीको अुसकी योग्य जगहसे वाहर न ले जानेका रहा है। वह कभी राष्ट्रभापा नहीं वन सकती और न हमारी तालीमका ज़रिया। अैसा करके हमने अपनी भापाओंको कंगाल वना रखा है। विद्यार्थियों पर हमने वड़ा वोझ डाला है। यह करुण दृश्य, जहाँ तक मुझे अिल्म है, सिर्फ़ हिन्दुस्तानमें ही देखा जाता है। अिस भापाकी गुलामीने हमारे करोड़ों लोगोंको वहुतेरे ज्ञानसे वरसों तक वंचित रखा है। अिसकी हमें न समझ है, न शरम, न पछतावा! यह कैसी वात? यह सव साफ़-साफ़ जानते हुअे भी मैं अंग्रेज़ी भापाका वहिष्कार नहीं सह

सकता। जैसे तामिल आदि सूबाओ भाषायें हैं और हिन्दुस्तानी राष्ट्र-भाषा, ठीक अिसी तरह अंग्रेज़ी विश्वभाषा है——जगतकी भाषा है, अिससे कौन अिनकार कर सकता है? अंग्रेज़ोंका साम्राज्य जायगा, क्योंकि वह दूषित था और है; लेकिन अंग्रेज़ी भाषाका साम्राज्य कभी नहीं जा सकता।

मुझे अैसा लगता है कि गुजराती भाषामें या अंग्रेज़ी भाषामें मैं कुछ भी लिखूं, तो भी अंग्रेज़ी 'हरिजन' और गुजराती 'हरिजनबन्धु' अपने पैरों पर खड़े रहेंगे।

(हरिजनसेवक, २५-१-'४८)

सूची